श्रीः

हमारा संगृहीत रामायणान्वसंग्रह नामक पोथी को पढ़कर, हमारे अनेक मित्रों ने हमें यह परामर्श दिया था कि वाल्मीकीय रामायण के आधार पर यदि श्रीराम का दिव्य पवित्र एवं उपदेश पूर्ण चरित्र, सरल भाषा में संगृहीत कर प्रकाशित किया जाय—तो हिन्दी पढ़ने वालों का बड़ा उपकार होगा। अपने मित्रों की उपरोक्त सम्मति हमें अच्छी जान पड़ी और उन्हीं के परामर्शानुसार हमने इस कार्य को अपने हाथ में लिया।

आज भगवान् के अनुग्रह से यह पुस्तक हम अपने हिन्दी पाठकों के सामने उपस्थित कर आशा करते हैं कि वे हमारी अन्य संगृहीत पुस्तकों की तरह, इस पुस्तक को भी उपादेय पावेंगे।

यद्यपि इसे हमने वाल्मीकीय रामायण के आधार ही पर लिखा है, तथापि इसका पद्यभाग हमने अनन्य रामभक्त तुलसीदास जी की रामायण से संगृहीत किया है। साथ ही कहीं कहीं पर पादटिप्पणियों में तुलसीदास और वाल्मीकि रचित रामचरित्रों के वर्णन में जो अन्तर प्रतीत होते हैं उनको लिख दिया है।

कलकत्ता।
ता० २८ अक्टूबर सन् १९१४।

चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्म्मा।
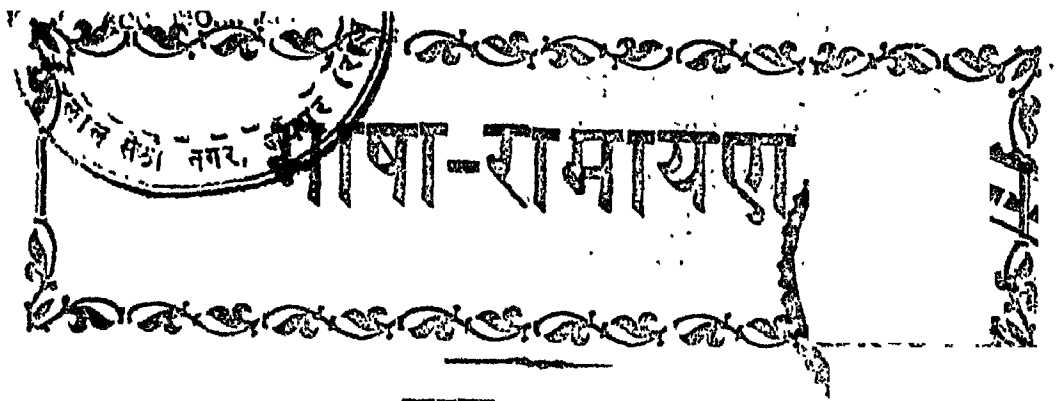
बाल काण्ड

सरयू नदी के तट पर कोशल देश है, जिसकी राजधानी अयोध्या है, इसको महाराज मनु ने बसाया था, इस नगरी के राजमार्ग अच्छे विभागों से बनाये गये थे, उन पर और वीथियों में छिड़काव होता था और फूल बिछाये जाते थे, उस पुरी के चारों ओर नगर-रक्षक थे और खाईं थी। यह नगरी सम्पूर्ण शोभाओं और गुणी पुरुषों से युक्त रहती थी, काम्बोज, वाल्हीक, वनायु और सरिता-तटस्थ देशों में उत्पन्न अश्वों तथा विन्ध्य एवं हिमालय पर्वतों पर उत्पन्न ऐरावत कुलवाले; वामन कुलवाले, भद्र, मन्द्र, भद्रमृग एवं मृगमन्द्र जातियों से मिश्रित, मतवाले और पर्वताकार हाथियों से यह नगरी सदा परिपूर्ण रहती थी।

राजा दशरथ यहाँ के राजाओं में से एक थे। राजा दशरथ की राजसभा में महर्षि सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय तथा कात्यायन के अतिरिक्त—जो परम्परा से कुल-मंत्री होते चले आते थे—धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्द्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमंत्र नामक आठ मंत्री और थे, ये सब निज कर्त्तव्य पालन में बड़े सुदक्ष और निपुण थे। महर्षि वशिष्ठ और वामदेव—दोनों ही ऋत्विक थे। इस प्रतापशाली राजा दशरथ के पुत्र एक भी न था। एक दिन राजा ने ऋषियों को आमंत्रित करके उनसे प्रार्थना करके कहा:—

दशरथ—पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से मेरा विचार अश्वमेध यज्ञ करने का है।

इस पर समागत ऋषियों ने कहा:—

ऋषिगण—बड़ी ही अच्छी बात है, आपका विचार सराहने योग्य है।

श्रद्धेय ऋषियों का यह उत्तर सुन राजा ने अपने मंत्रियों को यज्ञ का प्रबन्ध करने की आज्ञा दी और वह स्वयं अन्तःपुर में चले गये।

तब राजा को एकान्त में पाकर सुमंत्र ने उनसे कहा:—

सुमंत्र—महाराज! आपकी पुत्रप्राप्ति के विषय में भगवान् सनत्कुमार ने कहा है कि काश्यप के पुत्र विभाण्ड नामक ऋषि के ऋष्यशृङ्ग नामक पुत्र होंगे, उसी समय रोमपादक नाम का एक राजा होगा, उसके अत्याचार से अवर्षण होगा, तब वह राजा ब्राह्मणों से वर्षा होने का उपाय पूँछेगा। वे लोग कहेंगे कि ऋष्यशृङ्ग को बुला कर उनके साथ यदि तुम अपनी कन्या शान्ता का विवाह कर दो, तो वर्षा हो। यह सुन राजा पुरोहित और मंत्रियों से कहेगा कि मुनि को बुलाओ। वे उत्तम उत्तम भोज्य पदार्थ देकर, मुनि को लाने के अर्थ वेश्याओं को भेजेंगे, तब वे वेश्याएं मुनि को लुभाकर राजधानी में लावेंगी। राजधानी में ऋषिपुत्र के पदार्पण करते ही वर्षा होगी, तब रोमपाद आदर पूर्वक ऋषिपुत्र के साथ अपनी राजकुमारी शान्ता का विवाह कर देगा और उनको अपने यहाँ रखेगा।

इतना कह कर सुमंत्र ने फिर यह भी कहा:—

सुमंत्र—महाराज! भगवान् सनत्कुमार ने यह भविष्यद्वाणी भी कह रखी है कि इक्ष्वाकु के वंश में दशरथ नामक एक राजा होंगे, उनकी मैत्री अङ्गदेशाधिपति रोमपाद के साथ होगी। दशरथ, रोमपाद के यहाँ से ऋष्यशृङ्ग को जाकर लिवा लावेंगे और उनसे यज्ञ करावेंगे। तब उनके चार पुत्र उत्पन्न होंगे। अतएव आप जाकर मुनिप्रवर को लिवा लाइये।

सुमंत्र के कथनानुसार दशरथ अङ्ग देश में गये और मुनिप्रवर को अपने साथ लिवा लाये।

अयोध्या में लौट कर दशरथ ने ऋष्यशृङ्ग, सुयज्ञ, वामदेव जावालि, काश्यप और वसिष्ठ की अनुमति से उक्त यज्ञ आरम्भ किया। पवित्र-तोया सरयू के तट पर यज्ञमंडप एवं समागत भद्र-जनों के रहने के अर्थ घर बनवाये गये। साथ ही सारी आवश्यक सामग्री वहाँ सञ्चित की गयी। इस यज्ञ में, राजा दशरथ का निमंत्रण पाकर अनेक नरपति गण पधारे थे। उनमें से मुख्य मुख्य ये थे। मिथिलापति, काशिराज, अङ्गाधिप रोमपाद, कोशल देश के राजा भानुमान, मगध देश के राजा, पूर्व देश के राजा, सिन्धु, सौवीर, सुराष्ट्र तथा दक्षिण आदि सम्पूर्ण देशों के नरेश। ये नृपति गण रिक्त हस्तयज्ञ में उपस्थित नहीं हुए थे, किन्तु अपनी मान मर्य्यादा के अनु-सार भेंटें लेकर आये थे।

यज्ञ समाप्त होने पर राजा ने ब्राह्मणों को दान में पृथिवी देनी चाही। इस पर ब्राह्मणों ने कहा हम पृथिवी का दान लेकर झञ्झट में पड़ना नहीं चाहते। क्योंकि हम पृथिवी का शासन करने में असमर्थ हैं। इसके बदले आप हम लोगों को मणि, रत्न, सुवर्ण या गौ दीजिये। तब राजा ने उस प्रदत्त भूमि के बदले, दस लक्ष गौ, दस करोड़ सुवर्ण और चालीस करोड़ तत्कालीन चाँदी की मुद्रा दीं। ऋष्यशृङ्ग और वसिष्ठ ने इस सारे धन को यथायोग्य ब्राह्मणों को बाँट दिया। इसके अतिरिक्त श्री दशरथ ने और भी बहुत सा धन बाँटा। अश्वमेध समाप्त होने पर दशरथ की प्रार्थना के अनुसार ऋष्य-शृङ्ग ने सन्तानोत्पत्ति के निमित्त पुत्रेष्टि प्रारम्भ किया। उस समय देव, यक्ष, गन्धर्व आदि जो जो यज्ञ का भाग लेने आये, उन सब ने ब्रह्मा जी से रावण द्वारा प्राप्त दुःखों का वृत्तान्त कहा। तब ब्रह्मा ने कहा—"रावण, मनुष्य को छोड़ अन्य सब प्राणियों से अवध्य है।" इतने में भगवान् विष्णु भी वहाँ पधारे। उन्हें देख कर देवताओं ने उनकी स्तुति की और अपनी दुःख भरी कथा उनको भी सुनाई। तब भगवान् विष्णु ने कहा—"हम दशरथ के घर में जन्म ग्रहण कर, रावण का वध करेंगे।" यह कह कर विष्णु तो चले गये। तदनन्तर अग्निकुण्ड से एक पुरुष प्रादुर्भूत हुआ जिसके हाथ में सोने का एक सुवर्णपात्र था, जिसमें क्षीरान्न था और वह चाँदी के ढकने से ढका था। उसने राजा के हाथ में उस पात्र को देकर कहा—"आप इस क्षीरान्न को अपनी रानियों को खिलाइये, इससे उनके पुत्र होंगे।" राजा ने प्रणाम-पूर्वक उसे लेलिया। तत्क्षण वह पुरुष अन्तर्द्धान होगया। राजा ने उस क्षीरान्न को लेजाकर अन्तःपुर-वासिनी राजमहिषियों को बाँट दिया। बाँट इस प्रकार किया गया। आधा पटरानी कौशल्या को, अष्टमांश सुमित्रा को, चतुर्थांश कैकेयी को और शेष अष्टमांश भी सुमित्रा को। कुछ दिनों बाद तीनों रानियाँ गर्भवती हुईं।

दशरथ के अन्तःपुर में विष्णु को गर्भ में जानकर, ब्रह्मा ने देवताओं से कहा कि विष्णु की सहायता के लिये बली, कामरूपी, मायावी, दिव्य शरीर धारी, सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ता, देव सदृश वानरों को नाना योनिधारिणी स्त्रियों के संयोग से उत्पन्न करो। मैं जाम्बवान नामक ऋक्ष को उत्पन्न कर चुका हूँ।

जब देवताओं ने ऐसी आज्ञा पाई तब उन्होंने वानर रूपी पुत्र उत्पन्न किये। इन्द्र ने बालि को, सूर्य ने सुग्रीव को, बृहस्पति ने तार को, कुबेर ने गन्धमादन को, विश्वकर्मा ने नल को, अग्नि ने नील को, अश्विनीकुमारों ने मैन्द और द्विविद को, वरुण ने सुषेण को, मेघ ने शरभ को और वायु

श्रीराम का जन्म

ने हनुमान को उत्पन्न किया। इनमें से अनेक तो ऋक्षवान नामक पर्वत पर निवास करने लगे और शेष सब भिन्न भिन्न पर्वतों और वनों में रहने लगे। बहुतों ने वालि और सुग्रीव का अनुगामी बनना स्वीकार किया और बहुत से नल नील जैसे यूथपतियों के अधीन हो रहने लगे।

यज्ञान्त स्नान कर राजा दशरथ ने राजधानी में पदार्पण किया। फिर समागत राजाओं तथा ऋषियों को आदर पूर्वक विदा कर, वे ऋष्यशृङ्ग को उनकी पत्नी शान्ता सहित कुछ दूर तक स्वयं पहुँचा आये।

इतने में महाराज दशरथ की अन्तःपुरवासिनी रानियों का प्रसवकाल उपस्थित हुआ। जिस दिन विष्णु भगवान् का आधा अंश इस धराधाम पर कौशल्या के गर्भ से प्रादुर्भूत हुआ, उस समय चैत्र का सुहावना मास था। शुक्ल पक्ष की नवमी थी। उस समय सभी नक्षत्र और ग्रह अपने अपने उच्चातिउच्च स्थानों पर अवस्थित थे। महाराज दशरथ के यह ज्येष्ठ-कुमार थे और इनका नाम राम रखा गया। तदनन्तर कैकेयी के गर्भ से महात्मा भरत और सुमित्रा के गर्भ से लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। भरत, भगवान् विष्णु का चतुर्थांश और लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न प्रत्येक विष्णु के अष्टमांश से उत्पन्न हुए। इधर तो इस लोक की अयोध्या नगरी में राजकुमारों के जन्मोत्सव की अभूत पूर्व धूमधाम थी ही—उधर आकाश में देवयोनि यक्ष गन्धर्व किन्नर भगवान् विष्णु के प्रादुर्भाव को जान फूले अङ्ग नहीं समाते थे। उस समय का वर्णन गोस्वामी तुलसी दास जी ने यों किया है।

छन्द

भये प्रगट कृपाला परम दयाला, कौसिल्या-हितकारी।
हरषित महतारी-मुनि-मन-हारी, अद्भुत रूप निहारी।
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा, निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला, सोभा सिन्धुखरारी।
कह दुइ करजोरी अस्तुति तोरी, केहि विधि करऊँ अनन्ता।
माया-गुन-ज्ञानातीत अमाना, वेद पुरान भनन्ता।
करुना-सुखसागर सब-गुन-आगर, जेहि गावहिं श्रुति सन्ता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी, भयउ प्रगट श्रीकन्ता।
ब्रह्माण्ड निकाया निर्मितमाया, रोम रोम प्रति वेद कहैं।
सो मम उर बासी यह उपहासी, सुनत धीर-मति थिर न रहै।
उपजा जब ज्ञाना प्रभु मुसकाना, चरित बहुत विधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई, जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै।
माता पुनि बोली सो मति डोली, तजहु तात यह रूपा।
कीजे शिशुलीला अतिप्रियशीला यह सुख परमअनूपा।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना, होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं, ते न परहिं भवकूपा।

जन्म के तेरहवें दिन चारों राजकुमारों का नामकरण संस्कार किया गया। कुल-पुरोहित वशिष्ठ ने चारों बालकों के वे ही नाम रखे, जिनका उल्लेख हम ऊपर के वर्णन में कर चुके हैं।

राजकुमार जब बड़े हुए; तब एक दिन विश्वामित्र, दशरथ से भेंट करने के लिये उनकी ड्योढ़ी पर उपस्थित हुए और अपने आगमन की सूचना दिलवाई। मुनिप्रवर का आगमन सुनते ही राजा ने पुरोहित समेत जाकर उनका स्वागत किया और अर्घ्य पाद्य आदि से यथाविधि उनका पूजन किया। पूजन ग्रहण कर विश्वामित्र ने राजा से उनके पुर, कोष, देश, कुटुम्ब, मंत्रिवर्ग सामन्त राजाओं की विनम्रता, शत्रुदमन, दैव और मानुषिक कर्म निर्वाह सम्बन्धी कुशल क्षेम पूँछी। तदनन्तर राजा ने मुनिप्रवर को भीतर लेजाकर और आसन पर बिठाकर, मुनि के आगमन का कारण पूँछा। तब विश्वामित्र ने कहा :—

विश्वामित्र—"मारीच और सुबाहु दोनों दुष्ट राक्षस मेरी यज्ञवेदी पर माँस रख कर, उसे अशुद्ध कर देते हैं। जिससे मेरी यज्ञ-समाप्ति सुसम्पन्न नहीं होने पाती। अतएव आप अपने ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र को मुझे दीजिये। वे मेरे यज्ञ की रक्षा करेंगे।

इतना कह अपने द्वारा रामचन्द्र की भविष्योन्नति का लोभ दिखाते हुए विश्वामित्र ने दशरथ को सम्बोधन कर यह भी कहा:—

विश्वामित्र—मैं इनको सम्पूर्ण विद्या पढ़ाऊँगा और अनेक मङ्गल वस्तु दूँगा, जिनसे इनका बड़ा कल्याण होगा और यश बढ़ेगा।

राजा, ऋषिप्रवर के मुख से उन दुर्दान्त राक्षसों का परिचय पाकर कुछ समय तक चुपचाप रहे। अनन्तर बोले :—

दशरथ—महर्षिप्रवर; मेरे राम अभी पूरे सोलह वर्ष के भी नहीं हो पाये, वे भला राक्षसों को क्योंकर जीत सकेंगे। यह मेरी एक अक्षौहिणी सेना है, जिसका मैं स्वामी हूँ—इसे लेकर अनायास मैं उन राक्षसों को जीत लूँगा। मेरे ये बड़े बड़े शूर जो शस्त्रविद्या में बड़े निपुण हैं, उन राक्षसों से भिड़ सकते हैं—न कि दुधमुँहा राम। मैं स्वयं अस्त्रधारण कर, जब तक शरीर में प्राण रहेंगे, राक्षसों का नाश करता रहूँगा। आपका यज्ञ निर्विघ्न समाप्त करवा दूँगा। पर राम को मैं नहीं भेज सकता।

इस पर विश्वामित्र ने कहा :—

विश्वामित्र—राजन्! तुमने रावण का नाम तो सुना ही होगा। उसी की प्रेरणा से और उसी के बल पर ये राक्षस आकर उत्पात करते हैं।

रावण का नाम सुनते ही महाराज दशरथ और भयभीत हो बोले :—

दशरथ—रावण से देवता भी डरते हैं उसके साथ युद्ध करने की मुझमें सामर्थ्य नहीं है।

यह उत्तर सुन विश्वामित्र क्रुद्ध हुए। तब वृद्ध कुलपुरोहित वशिष्ठ जी ने अपने यजमान को समझा कर कहा—महाराज! विश्वामित्र के साथ राम के रहने में कुछ भी डर की बात नहीं है। मुनिवेषधारी ये विश्वामित्र वीर्यवानों में श्रेष्ठ हैं और इनसे बढ़ कर विद्वान् और अस्त्र-सञ्चालन-विद्या में निपुण और दूसरा नहीं है। क्या देवता, क्या ऋषि, क्या राक्षस, कोई भी इन्हें नहीं जानता। जिस समय ये राज्य करते थे, उस समय शिव जी ने प्रसन्न होकर इनको वे सम्पूर्ण अस्त्र प्रदान किये थे, जो परम धार्मिक कृशाश्व के पुत्र हैं। ये अस्त्र रूपी कृशाश्व के पुत्र असुर के वधार्थ, दक्ष प्रजापति की जया और प्रभा नाम्नी दो कन्याओं से उत्पन्न हुए हैं। इन सब को ये जानते हैं और इनके अतिरिक्त इनसे भी बढ़कर और भी अपूर्व अस्त्र बना भी सकते हैं।

इस प्रकार वृद्ध वशिष्ठ के समझाने पर दशरथ ने अपने दो पुत्र राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र जी के साथ कर दिया। दोनों राज-

कुमारों को साथ लिये हुए अयोध्या से छः कोस के अन्तर पर और सरयू के दक्षिण तट पर वे जा पहुँचे। वहाँ पर राम को जलस्पर्श करा कर ब्रह्मा की पुत्री बला और अतिबला नाम्नी दोनों विद्याओं को पढ़ा दिया। इन विद्याओं को जानने वाले को श्रम, भूख, प्यास की पीड़ा नहीं व्यापती। निद्रित और अशुद्धावस्था में राक्षस इन विद्याओं के जानने वाले का अनिष्ट नहीं कर सकते और उसके बाहुबल, सौभाग्य, चातुर्य, ज्ञान, लौकिक विवेक और वाद प्रतिवाद के सामने कोई ठहर ही नहीं सकता। अस्तु, तीनों जन रात भर उसी स्थान पर रहे।

प्रातः काल होते ही तीनों वहाँ से चलकर गङ्गा के सङ्गम पर पहुँचे। वहाँ एक पवित्र आश्रम देखकर दोनों भ्राताओं ने मुनिवर से पूँछा—"महाराज यह किस का आश्रम है।" मुनि ने उत्तर दिया—"यहाँ किसी समय कामदेव तप करता था। दैवात् उसी समय शिव जी महाराज व्याह कर देवताओं के साथ चले जाते थे। उस समय कामदेव ने रुद्र को धर्षित कर, क्रुद्ध किया। रोष में भर शिव जी ने कामदेव को भस्म कर डाला, तब से यह देश अनङ्ग कहलाता है। क्योंकि कामदेव ने यहीं पर अङ्ग त्याग किया था। यह आश्रम रुद्र भगवान् का है। उनके शिष्य मुनिगण यहाँ निवास करते हैं। आज हम भी यहीं निवास करेंगे।

महर्षि विश्वामित्र के आगमन का समाचार पाकर, वहाँ के निवासी ऋषियों ने उनके निकट जाकर उनका आतिथ्य किया। अगले दिन प्रातः काल होते ही महर्षि विश्वामित्र दोनों राजकुमारों सहित नाव पर सवार होकर दक्षिण तट पर पहुँचे और वहाँ का अति गम्भीर वन देख कर राम ने उसका वृत्तान्त पूँछा। तब विश्वामित्र ने कहा कि जब वृत्रासुर के वध से इन्द्र को मल और क्षुधा रूपी ब्रह्महत्या लगी; तब देवता और महर्षियों ने उनको स्नान कराकर शुद्ध किया। तदनन्तर मल और क्षुधा को उनके शरीर से निकाल कर, इसी भूमि पर डाल दिया। तब इन्द्र ने प्रसन्न होकर वर दिया कि यहाँ मलद और करूष नाम के दो प्रसिद्ध नगर होंगे तथा वे दोनों ही नगर धन धान्य से परिपूर्ण होंगे।

तदनन्तर सुकेतु नामक यक्ष के ताड़का नाम्नी एक कन्या उत्पन्न हुई। उसने जम्भ के पुत्र सुन्द नामक दैत्य से विवाह किया। उससे मारीच नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके दुष्ट आचरणों को देख; अगस्त्य मुनि ने, जिनका यह आश्रम है, सुन्द को शाप देकर भस्म कर डाला। इस पर ताड़का और मारीच ने मिलकर महर्षि अगस्त्य का वध करना चाहा। तब महर्षि अगस्त्य उन दोनों को शाप देकर अन्यत्र चले गये। अब वे ही दोनों, राक्षस होकर उन महामुनि के आश्रम को नष्ट भ्रष्ट करे डालते हैं। वे ही धनधान्य परिपूर्ण सुप्रसिद्ध मलद और करूष नगर उन दोनों दुष्टों के अत्याचार से इस शोच्य दशा को प्राप्त हुए हैं। अतः आप उन दोनों दुष्टों का वध कर के इस वन के निवासियों का उपकार कीजिये। आप इससे न डरिये कि स्त्रीवध का पाप आपको लगेगा क्योंकि प्राचीन काल के अनेक ऐसे उदाहरण हैं। पूर्व काल में इन्द्र ने विरोचन की दुहिता मन्थरा को और भगवान् विष्णु ने शुक्र की माता और भृगु की पत्नी का वध किया था।

मुनि की आज्ञा पाते ही श्री राम ने अपने धनुष पर रोदा चढ़ाया और रोदे को टङ्कार की। उस टङ्कार से सम्पूर्ण वन प्रतिध्वनित हुआ ताड़का राक्षसी भी सतर्क हुई तथा जहाँ राम थे उस ओर गयी। ताड़का का रङ्ग कोयले जैसा काला था। उसके कर्णभूषण मनुष्य की अस्थियों के बने हुए थे। उसे देखने से ऐसा जान पड़ता था कि मानों काली घटा वायु से बिताड़ित हो दौड़ी चली आरही है। उसे आते देख श्री रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण से कहा—"भाई! देखते हो इसका रूप कैसा भयङ्कर है। यह अपने इस विकराल रूप से भय के मन में भी भय उत्पन्न करती है।" इतने में वह राक्षसी हाथ उठा और मुँह फाड़ दोनों भाइयों को निगल जाने के अर्थ,

उनकी ओर झपटी तब राम ने एक तीक्ष्ण बाण धनुष पर रख, उस राक्षसी पर छोड़ा। वह बाण उस राक्षसी के हृदय को विदीर्ण करता आरपार हो गया। उस तीक्ष्ण बाण के आघात से विकल ताड़का राक्षसी निःसत्त्व हो पृथिवी पर गिर पड़ी। उस राक्षसी को मरी देख देवतागण बहुत प्रसन्न हुए और विश्वामित्र से कहा कि कृशाश्व के पुत्र को इन्हें देकर इन्हें सन्तुष्ट कीजिये। वे हम लोगों के बड़े काम आवेंगे। यह कह देवगण तो जहाँ से आये थे वहीं को लौट गये और मुनिवर ने दोनों राजकुमारों सहित उसी वन में वास किया।

दूसरे दिन विश्वामित्र ने प्रातः काल होते ही श्रीरामचन्द्र को नीचे लिखे अस्त्र दिये। दण्ड, चक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, ऐन्द्रचक्र, वज्रास्त्र, शैव, शूलवर, ब्रह्मशिर, ऐषीक, ब्रह्मास्त्र, मोदकी और शिखरी नाम की दो गदाएं। धर्मपाश, कालपाश, वरुणपाश, शुष्क और आर्द्र नाम के दो वज्र, तैनाकास्त्र, नारायणास्त्र आग्नेयास्त्र, शिखर नामक वायव्यास्त्र; हयशिरोस्त्र तथा क्रौञ्चास्त्र नाम की दो शक्तियाँ, भयङ्कर और कंकाल नाम के दो मूसल, (राक्षसों को मारने के अर्थ) कपाल और किङ्किणी; वैद्याधरास्त्र, नन्दन, उत्तम, खड्ग, गान्धर्वास्त्र, मोहन नामक प्रस्वापन, प्रशमन, सौम्य, वर्षण, सन्तापन, विलापन, मदनास्त्र, मानव नामक पैशाचास्त्र, मोहन नामक तामस, सोमन, संवर्त, मौषल, सत्यास्त्र, मायामय, तेजःप्रभ नामक सौरास्त्र (यह शत्रु के तेज को खींच लेता है) शिशिर नामक सोमास्त्र, त्वाष्ट्रास्त्र, भगास्त्र, शीतेषु, मानव। इन अस्त्रों के अतिरिक्त विश्वामित्र जी ने रामचन्द्र को शकुन, नैराश, विमल, लक्ष्य, अलक्ष्य प्रभृति कृशाश्व के पुत्रों को समर्पण किया, जिन्हें राम ने सादर ग्रहण किया।

जब श्री रामचन्द्र ताड़का का वन परित्याग कर आगे बढ़े; तब उनको एक दूसरा वन दीख पड़ा। उस वन की रमणीयता देख राम ने महर्षि से पूँछा कि यह किसका आश्रम है?

विश्वामित्र ने कहा कि यह सिद्धाश्रम के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर भगवान् विष्णु ने अनेक वर्षों तक तप किया था। किसी समय विरोचन पुत्र बलि बड़ा प्रतापी दैत्य था। इसने सब देवताओं को पराजित कर, तीनों लोकों पर अपना अधिकार कर लिया था। तदनन्तर उसने यज्ञ प्रारम्भ किया। उसी अवसर में देवतागण इसी आश्रम में आये और तप में निरत भगवान् विष्णु से प्रार्थना कर कहने लगे कि बलि से राज्य छीन कर देवताओं की रक्षा कीजिये। इसी समय भगवान् मरीचि के पुत्र कश्यप ऋषि भी अपनी स्त्री अदिति सहित विष्णु भगवान् के इस आश्रम में उपस्थित हुए और प्रार्थना करके बोले—"आप मेरे पुत्र हो, देवताओं का कार्य कीजिये। विष्णु भगवान् ने दोनों की प्रार्थना स्वीकार कर वामन रूप धारण किया और बलि से त्रैलोक्य का राज्य लेकर इन्द्र को सौंपा तथा बलि को बाँध कर पाताल भेजा। यह स्थान उन्हीं विष्णु भगवान् का है और अब मैं यहाँ रहता हूँ।

दोनों राजकुमारों सहित विश्वामित्र के आगमन का संवाद सुन, उस आश्रमवासी ऋषियों ने बड़ी उत्कण्ठा पूर्वक तीनों का आतिथ्य किया। तदनन्तर विश्वामित्र ने यज्ञ करना आरम्भ किया और दोनों भाई उनके यज्ञ की रखवाली करने लगे। छठवें दिन मारीच और सुबाहु अपनी राक्षसी सेना सहित यज्ञ में विघ्न डालने के लिये उपस्थित हुए। राम ने मारीच पर मानवास्त्र चलाकर उसे चार सौ कोस समुद्र में पटक दिया। सुबाहु को आग्नेयास्त्र से मार डाला। जो राक्षस बचे उन्हें वायव्यास्त्र से मार भगाया। महर्षि का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर दोनों भाइयों को शुभाशीर्वाद दिये। अगले दिन विश्वामित्र तथा उस आश्रम के अन्य ऋषियों ने कहा कि मिथिला देश के अधीश्वर के यहाँ धनुपयज्ञ है, हम वहाँ चलते हैं, आप भी चलिये और उस अनुपम धनुप को देखिये, जिसको राजा जनक ने यज्ञ करके देवताओं से प्राप्त किया था उसका नाम

सुनाम है। वह बड़ा भारी और तेजयुक्त है। क्या देवता, क्या गन्धर्व और क्या राक्षस कोई भी ऐसा नहीं जो उसे हिला तक सके-उठाना तो बात ही दूसरी है। यह कह और राम लक्ष्मण को साथ ले विश्वामित्र उत्तर दिशा को चले और शोण के तट पर पहुँचकर वह रात्रि वहीं व्यतीत की। राम ने पूँछा महाराज यह कौनसा देश है।

इसके उत्तर में महर्षि विश्वामित्र ने कहा—"ब्रह्मा के पुत्र राजा कुश का विवाह विदर्भ-नरेश की राजकुमारी के साथ हुआ था। उस राजकुमारी के गर्भ से कुश के चार पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम कुशाम्ब, कुशनाभ, असूर्तरजा और वसु थे। कुशाम्ब ने कौशाम्बी, कुशनाभ ने महोदय, असूर्तरजा ने धर्मारण्य, और वसु ने गिरिव्रज नाम के नगर बसाये। गिरिव्रज का दूसरा नाम वसुमती भी है। यह मागधी नदी जो शोण के नाम से प्रसिद्ध है, मगध देश से आयी है। यही देश महाराज वसु का है। कुशनाभ ने घृताची नामक अप्सरा के गर्भ से सौ कन्याएँ उत्पन्न कीं। वे एक दिन उपवन में घूमने फिरने गयी थीं। वहाँ इनकी सुन्दर छवि देख वायु देव उन पर मोहित हो गये और उनकी प्राप्ति की इच्छा की। यह कथा यहीं तक हो पाई थी कि सब लोगों ने विश्राम किया।

पर्वतों के राजा हिमालय ने सुमेरु की पुत्री मेना के साथ विवाह किया। उसके गङ्गा और उमा दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं। गङ्गा को तो देवताओं ने अपने काम के लिये माँग लिया और उमा का विवाह उस पर्वतराज ने शिव के साथ कर दिया। भगवान् शिव ने उमा देवी के साथ सौ वर्ष तक क्रीड़ा की; पर पुत्र एक भी उत्पन्न न हुआ। तब तो देवता डरे कि अब जो उमा के पुत्र होगा, उसका तेज कोई भी न सम्हाल सकेगा; इस धारणा के अनुसार उन्होंने शिव से प्रार्थना की और कहा—"महाराज आप उमा सहित तप करिये और अपने तेज को धारण कर लोकक्षय को रोकिये।" शिव जी ने देवताओं की इस प्रार्थना को मान लिया और स्थान से च्युत तेज को पृथिवी पर गिराया। उसमें अग्नि और वायु ने प्रवेश किया। उस तेज से शरवण (सरहरी) का वन होगया, जिससे स्वामि-कार्तिक उत्पन्न हुए। उमा ने देवताओं को शाप दिया कि तुम मेरी सन्तति को नहीं देख सके; अतएव तुम भी सन्ततिहीन होगे" और पृथिवी को यह शाप दिया कि—"तू एक रूप में न रहेगी; अनेकों की स्त्री होगी; तिस पर भी तुझे पुत्र सुख प्राप्त न होगा।" तदनन्तर शिव और उमा दोनों पश्चिम ओर जाकर, तप करने लगे और देवताओं ने ब्रह्मा के पास जाकर सेनापति के लिये प्रार्थना की। ब्रह्मा जी ने कहा—"तुम्हारी देवियाँ तो बाँझ हैं, क्योंकि उमा ने उन्हें शाप दे रखा है। परन्तु अग्नि और गङ्गा से जो पुत्र होगा, वह तुम लोगों का सेनापति होगा और उमा भी उसको सम्मान की दृष्टि से देखेगी।" यह सुन देवताओं ने अग्नि से कहा कि—"आपशिव के तेज को गङ्गा में छोड़िये; जिसको अग्निदेव ने छोड़ दिया। गङ्गा भी उसको सम्हालने में असमर्थ हुई। अतएव वह पृथिवी पर गिरा जिससे सोना, ताँबा, लोहा, जस्ता, सीसा और नाना प्रकार की अन्य धातुएँ उत्पन्न हुईं और उसी तेज से कुमार का जन्म हुआ। उस कुमार को कृत्तिकाओं ने दूध पिलाया, अतएव उस कुमार का नाम कार्तिकेय पड़ा और वह गर्भ के स्राव से उत्पन्न होने के कारण स्कन्द भी कहलाया। उस कुमार के छः मुख थे, अतएव उसने छःओं कृत्तिकाओं का दूध पियो, इससे वह षडानन भी कहलाता है और एक ही दिन में उसने दैत्यों की सेना को परास्त किया था, अतः वह कुमार देवताओं का सेनापति हुआ।

विश्वामित्र ने कहा कि अयोध्या में एक सागर नामक राजा हुए। उनके दो स्त्रियाँ थीं। इनमें जो ज्येष्ठा थी उसका नाम केशनी था, और वह विदर्भ देश के राजा की कन्या थी। छोटी का नाम सुमति था, जो अरिष्टनेमि की

लड़की और सुपर्ण की बहिन थी। सन्तति के लिये राजा दोनों स्त्रियों को साथ लेकर हिमालय के भृगुप्रस्रवण नामक प्रदेश में तप करने के लिये गये। जब तप करते करते उन्हें सौ वर्ष व्यतीत हो गये, तब मुनि ने प्रसन्न होकर कहा कि एक स्त्री से वंशकारक एक पुत्र और दूसरी से अति बलिष्ट साठ हज़ार पुत्र होंगे। काल पाकर केशनी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम असमञ्जस पड़ा। सुमति के गर्भ से एक तूम्बा हुआ जिसके फूटने पर साठ सहस्र बालक निकले जो घृत के कुण्डों में पाले गये। बड़ा राजकुमार असमञ्जस प्रजा के लड़कों को सरयू में फेंक दिया करता था और जब वे डूबने लगते तब प्रसन्न होता था। उसके ऐसे आचरणों से विरक्त हो राजा ने उसे घर से निकाल दिया। असमञ्जस के एक लड़का था, जिसका नाम अंशुमान था, जो लोगों को बड़ा प्रिय था। कुछ दिनों बाद राजा ने अश्वमेध प्रारम्भ किया। राजा का यह उत्कर्ष देवराज इन्द्र न सह सके और अश्वमेध का घोड़ा चुरा कर, उसे कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया। तब राजा ने क्रुद्ध होकर अपने पुत्रों को उस घोड़े के अनुसन्धान के लिये भेजा। अतएव वे सब पृथिवी को खनन करने लगे और पूर्व दिशा में विरूपाक्ष नामक हाथी को देख कर और उसकी प्रदक्षिणा कर, दक्षिण की ओर मुड़े। वहाँ उन्हें पद्मनाभ नामक हाथी मिला। इसी प्रकार पश्चिम में सौमनस और उत्तर में भद्रनाम हाथी को पाया। तब ईशान कोण की ओर चले। वहाँ भगवान् कपिल को देख, और उन्हें घोड़े का चोर समझ, उनकी अवमानना की। इस पर भगवान् कपिल ने हुँकार कर के उन सब को भस्म कर डाला।

जब उन साठों सहस्र पुत्रों को गये बहुत दिन बीत गये और उनकी कुछ भी सुध न मिली; तब राजा ने अपने पौत्र अंशुमान को भेजा। अंशुमान घूमते घामते कपिलाश्रम में पहुँचे, जहाँ उनके पितृव्यों के शरीरों की भस्म पड़ी थी और उनके निकट ही घोड़ा चर रहा था। अंशुमान को अपने पितृव्यों की दशा देख कर अत्यन्त शोक हुआ और वह उनको तिलाञ्जलि देने के लिये जल खोजने लगा। इतने में भस्म हुए कुमारों के मातुल गरुड़ दीख पड़े और कहा इनकी तिलाञ्जलि गङ्गाजल से होगी। तुम घोड़ा तो लेजाओ और अपने पितामह का यज्ञ पूरा कराओ अंशुमान घोड़ा लेकर लौट गये और पितामह से सारा हाल कह सुनाया। राजा यज्ञ समाप्त कर गङ्गा के लाने का उपाय विचारने लगे। पर उनके किये कुछ भी न हो पाया। वे तीस सहस्र वर्ष राज्य करके स्वर्ग को सिधारे।

सगर के मरने पर अंशुमान राजा हुए और जब उनका पुत्र दिलीप राज्य सम्हालने योग्य हो गया, तब उसे राजपाट सौंप वे तप करने हिमालय पर्वत पर चले गये। वहाँ उन्होंने बत्तीस सहस्र वर्ष तप किया, अनन्तर परमधाम सिधारे। पितरों का वृत्तान्त अवगत होने पर दिलीप भी चिन्तित हुए और गङ्गा को लाने का उपाय सोचा, पर उनसे भी कुछ बन न पड़ा। अन्त में तीस सहस्र वर्ष राज्य कर और अपने पुत्र भगीरथ को राजपाट सौंप वे स्वर्ग सिधारे। भगीरथ निस्सन्तान थे। अतः वे राज्य भार मंत्रियों के हाथ में न्यस्त कर, तप करने के अर्थ गोकरण क्षेत्र में गये। उनको तप करते करते जब एक सहस्र वर्ष हो गये; तब ब्रह्मा जी प्रसन्न हुए और भगीरथ को वर देना चाहा। राजा ने गङ्गा और सन्तान माँगी। ब्रह्मा ने कहा अच्छा तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। पर गङ्गा का वेग सम्भालने के लिये तुम शिवजी को भी प्रसन्न करो। राजा ने तप द्वारा शिवजी को भी प्रसन्न किया। गङ्गा का वेग रोकने के लिये शिव जी कटिबद्ध हुए। गङ्गा आकाश से गिरी और शिवजी के जटाजूट में समा गयीं। तब राजा ने शिवजी को फिर प्रसन्न कर, गङ्गा को प्राप्त किया। शिव ने हिमालय के पास विन्दु नामक सरोवर में गङ्गा को छोड़ दिया। वहाँ गङ्गा की सात धाराएँ हो गयी। ह्लादिनी, पावनी, और नलिनी नाम्नी तीन धाराएँ पूर्व की ओर, सुचक्षु, सीता एवं महानदी नाम्नी तीन धाराएँ पश्चिम की ओर

गयीं और सातवीं धार भगीरथ के रथ के पीछे हो ली। जन्हु के आश्रम के समीप पहुँच गङ्गा ने उनके यज्ञ की सारी सामग्री बहा दी। यह देख मुनि क्रुद्ध हुए और गङ्गा को पान कर गये। तब भगीरथ ने महर्षि की स्तुति की। महर्षि स्तुति सुन कर प्रसन्न हुए और अपने दोनों कानों से गङ्गा को निकाल दिया। यह देख देवताओं ने कहा गङ्गा आपकी पुत्री हुई और आज से यह जान्हवी कहलावेंगी। तदनन्तर गङ्गा भगीरथ के रथ के पीछे बहती हुई सागर में जा गिरी तथा सगर के साठों सहस्र पुत्रों की भस्म को बहा कर, उनका उद्धार किया। राजा भगीरथ ने अपने पितरों की जलक्रिया गङ्गाजल से की। ब्रह्मा ने कहा यह आपकी पुत्री भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध होगी और गङ्गा एवं त्रिपथगामिनी कहलावेगी। क्योंकि यह तीन पथों से चली है। इसके अनन्तर भगीरथ अपनी राजधानी को लौट गये और वहाँ पूर्ववत् फिर राज्य करने लगे। इतनी कथा कह कर विश्वामित्र ने रात्रि को विश्राम किया और वे प्रातःकाल नाव पर चढ़ कर, नदी के पार हुए। उस पार पहुँच और कुछ काल तक वहाँ विश्राम कर वे आगे बढ़े। विशाला नामक नगर को देख रामचन्द्र जी ने उसका वृत्तान्त पूँछा।

तब विश्वामित्र जी ने कहा—पूर्व काल में अमृत प्राप्ति की इच्छा से देवता और दैत्यों ने वासुकी नाग की डोरी और मन्द्राचल को मथानी बना कर, समुद्र का मन्थन आरम्भ किया। वासुकी ने अपने मुख से, जिससे विष की ज्वाला निकालती थी, शिला को काटा। इससे वह शिला हलाहल विष बन गयी। वह हलाहल विष सम्पूर्ण लोकों को भस्म करने लगा। तब सब देवताओं ने मिल कर भगवान् शिव की स्तुति की। इतने में भगवान् विष्णु भी वहाँ पहुँच गये और महादेव से कहा—आप सब देवताओं से प्रथम हुए हैं, इसीसे आप आदि देव कहलाते हैं। अतः प्रथम पूजा आप ग्रहण कीजिये[१]। यह सुन और संसार का हित विचार महादेवजी उस हलाहल को पी गये और कैलास को चल दिये। जब मन्थन कार्य फिर आरम्भ हुआ, तब मन्द्राचल नीचे की ओर धसने लगा। यह देख देवताओं ने भगवान् विष्णु की स्तुति की। तब देवताओं को भयातुर देख विष्णु भगवान् ने कच्छप रूप धारण कर अपने पृष्ठ पर मन्द्राचल को आश्रय प्रदान किया और एक रूप से सब देवों के मध्य में खड़े हो कर वे स्वयं मन्थन करने लगे। उस समय हाथ में कमण्डल और दण्ड लिये धन्वन्तरि वैद्य निकले। उनके पीछे असंख्य दासियों सहित साठ कोटि अप्सराएँ निकलीं। इनको न तो देवताओं ने अङ्गीकार किया और न दैत्यों ने। उनके पीछे वरुण की कन्या वारुणी निकली। इसका दूसरा प्रसिद्ध नाम सुरा भी है। इसको ग्रहण न करने से दैत्य असुर और ग्रहण करने से देवता सुर कहलाये। अन्त में उच्चैःश्रवा घोड़ा, कौस्तुभ मणि और अमृत निकला। इसी अमृत के लिये देवासुर संग्राम हुआ, जिसमें अनेक देवता और दैत्य हत आहत हुए। अन्त में देवराज इन्द्र विजयी हुए और तीनों लोकों का अधिकार प्राप्त कर वे प्रसन्न हुए। पुत्रों के वध किये जाने पर दिति ने कश्यप से वर माँगा कि मुझे ऐसा एक पुत्र दीजिये जो इन्द्र का वध करे। कश्यप ने कहा—"ऐसा ही होगा; पर एक सहस्र वर्ष तक तुम्हें संयम पूर्वक रहना पड़ेगा।" यह कह और गर्भ स्थापित कर कश्यप तप करने के अर्थ चल दिये और दिति भी कुशप्लव नामक पूर्व देश के विशालाख्य नाम तपोवन में जाकर संयम पूर्वक तप करने लगी। इन्द्र उनकी सेवा करने लगे।

---

१ उवाचेनं स्मितं कृत्वा रुद्रं शूलधरं हरिः।
दैवतैर्मथ्यमानेतु यत्पूर्वं समुपस्थितम्॥
तत्त्वदीयं सुरश्रेष्ठ सुराणामग्रतो स्थित्।
अग्रपूजामिह स्थित्वा गृहाणेदं विषं प्रभो॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

बालकाण्ड अ० ४५ श्लोक २३—२४

अब अवधि में केवल दस वर्ष शेष रह गये तब दिति ने इन्द्र से कहा—"हे पुत्र! दस वर्ष बाद तुम्हारा भाई होगा, जिसको मैंने तुम्हारे नाश के लिये चाहा था, पर अब तो वह तुम्हारा सहायक होगा। यह कह दिति पैताने सिर कर सो गयी। इन्द्र उसे ऐसी अपावन दशा में देख उसके शरीर के भीतर प्रविष्ट हुए और उन्होंने गर्भ के सात खण्डों में से प्रत्येक के सात सात खण्ड किये। काटते समय गर्भ चीत्कार करने लगा। तब दिति जाग उठी और इन्द्र को निषेध किया। इन्द्र माता की आज्ञा पा कर बाहर निकल आये और क्षमा माँगते हुए कहा कि—तुमको अपवित्र देख, मैंने अपने शत्रु के खण्ड खण्ड कर डाले। दिति ने कहा कि यह सारा काण्ड मेरे दोष से हुआ, पर अब ऐसा करो कि ये सात खण्ड उनचास पवन के स्थानापन्न हों और वातस्कन्द मारुत के नाम से प्रसिद्ध हो कर आकाश में विचरा करें। एक ब्रह्मलोक में, दूसरा इन्द्रलोक में, तीसरा दिव्य वायु और शेष चार तुम्हारी आज्ञा से दिशाओं में विचरें और तुम्हारे रखे हुए नाम से प्रसिद्ध हों। यह सुन इन्द्र ने हाथ जोड़ कर कहा—"माता ऐसा ही होगा? देवरूप तुम्हारे पुत्र आकाश में गमन करेंगे।" हे राम! यह विशालापुरी उसी दिति के तप का स्थान है। इसको इक्ष्वाकु के पुत्र विशाल ने बसाया था, जिसका जन्म अलम्बुषा के गर्भ से हुआ था। विशाल के पुत्र हेमचन्द्र, हेमचन्द्र के सुचन्द्र, सुचन्द्र के धूम्राश्व, धूम्राश्व के सृञ्जय, सृञ्जय के सहदेव, सहदेव के कुशाश्व, कुशाश्व के सोमदत्त, सोमदत्त के काकुत्स्थ और काकुत्स्थ के सुमति हुए—जो इस समय इस पुरी का नृपति है। हे राम! आज की रात हम यहीं रह कर व्यतीत करेंगे। कल प्रातःकाल यहाँ से प्रस्थानित हो कल ही जनक से भेंट करेंगे।

मुनिप्रवर के आगमन का वृत्तान्त सुन राजा उनसे मिलने गया। उनके साथ दोनों राजकुमारों को देख, उन दोनों का वृत्तान्त पूँछा। विश्वामित्र जी ने उसके प्रश्नों का यथोचित उत्तर दिया तथा रात वहीं व्यतीत कर अगले दिन प्रातः काल वहाँ से चल कर वे मिथिला में पहुँचे। वहाँ एक उपवन में एक प्राचीन रमणीय निर्जन स्थान देख कर, श्रीरामचन्द्र ने मुनि से पूँछा:— "महाराज यह किस महात्मा का स्थान है?" विश्वामित्र जी ने उत्तर दिया यह महर्षि गौतम का आश्रम था। उनकी कथा भी मैं कहता हूं। उसे सुनिये:—

इस आश्रम में महात्मा गौतम अपनी धर्मपत्नी अहल्या सहित बहुत दिनों से तप करते थे। एक दिन इन्द्र ने मुनि की अनुपस्थिति में उन्हीं का रूप धारण कर और अहल्या के पास जा कर, उस के साथ प्रसङ्ग करना चाहा। अहल्या ने मुनि-वेषधारी इन्द्र को जान कर भी उनका मनोरथ पूरा किया और पीछे से कहा कि अब चले जाओ। ज्योंहीं इन्द्र आश्रम से निकले त्योंहीं उधर से मुनि आ गये और अपना वेष धारण किये हुए इन्द्र को पहचान बोले:— "तू निष्फल अर्थात् नपुंसक हो जा।" बस फिर क्या था इन्द्र वैसे ही हो गये। तदनन्तर गौतम अपने आश्रम के भीतर गये और वहाँ अपनी स्त्री से बोले—" तू सहस्रों वर्ष यहाँ वास करेगी, तेरा भोजन केवल वायु होगा और कोई भी प्राणी तुझे न देख सकेगा। जब दशरथ-नन्दन रामचन्द्र इस वन में आवेंगे, तब तू लोभ और मोह से मुक्त हो कर, उनका सत्कार करेगी, तब इस दुष्ट कर्म के पाप से पवित्र हो कर और अपने पूर्व शरीर को धारण कर मेरे पास आ सकेगी।" महात्मा गौतम यह कह वहाँ से चल दिये और हिमालय के शिखर पर बैठ तप करने लगे।

नपुंसक होकर इन्द्र ने देवताओं से कहा— " तुम लोगों के कार्य के पीछे मेरी यह दशा हुई अब ऐसा कोई यत्न करो, जिससे मेरा निष्फलत्व नष्ट हो और मैं सफल हो जाऊँ।" तब देवताओं ने अग्नि को आगे कर पितृदेव से कहा कि इन्द्र को बकरे का अण्डकोष लगाकर, उनको सफल कीजिये और बकरे को अण्डकोष रहित

कर, बकरे का यज्ञ करने वाले को अक्षय्य और अनन्त फल दीजिये। उन्होंने ऐसा ही किया। तभी से पितृदेवों के यज्ञ में बिना अण्डकोष का बकरा दिया जाता है और इन्द्र मेषाण्डकोशी कहे जाते हैं।

हे रामचन्द्र! इस आश्रम में चल कर अहल्या को पाप से निर्मुक्त कीजिये। यह सुन श्री राम उस आश्रम के भीतर गये और उसकी पूजा की और पाप से निर्मुक्त होकर वह अपने पति गौतम के पास गयी। उन्होंने भी आकर राम का पूजन किया और अपनी स्त्री को पाकर सुख पूर्वक तप करने लगे। तुलसी दास जी ने अहल्या के मुख से श्री रामचन्द्र जी की जो स्तुति करवाई है—उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं।[1]

छन्द

मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जनसुख-दाई।
राजीव-बिलोचन भव-भय-मोचन पाहि पाहि सरनहि आई॥
मुनि साप[2] जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भव-मोचन इहहि लाभ संकर[3] जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न माँगउँ बर आना।
पद-कमल-परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करहि पाना॥
जेहि पद सुर-सरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव[4] सीस धरी।
सोई पद-पङ्कज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरिचरन परी।
जो अति मन भावा सो बर पावा गइ पति-लोक अनन्द भरी॥

तदनन्तर तीनों जन मिथिला नगरी की ओर चले। वहाँ पहुँच कर, जनक की यज्ञशाला में ऐसे स्थान पर डेरा डाला जहाँ पर जल का सुबीता था। राजा जनक महर्षि विश्वामित्र के आगमन का संवाद पाकर अपने पुरोहित शतानन्द और ऋत्विजों को लेकर उनका दर्शन करने और उनका यथोचित पूजन करने गये। राजा द्वारा पूजन और कुशल प्रश्न हो चुकने पर विश्वामित्र जीने भी राजा और उनके सहवर्ती ब्राह्मणों का कुशल प्रश्न पूँछा। जब शिष्टाचार के अनन्तर सब लोग अपने अपने आसनों पर बैठ चुके; तब राजा जनक ने विश्वामित्र जी से पूँछा—"महाराज ये दोनों कुमार किसके हैं?" मुनिने कहा—"राजन्, ये दोनों कुमार महाराज दशरथ के पुत्र हैं। और सिद्धाश्रम में राक्षसों को मार मेरे यज्ञ की रक्षाकर, विशाल पुरी को देखते हुए, अहल्या को शुद्ध कर और महात्मा गौतम द्वारा पूजे जाकर, धनुष यज्ञ देखने के लिये यहाँ आये हैं। गौतमपुत्र शतानन्द श्रीरामचन्द्र के कर्म और अपनी माता के उद्धार का वृत्तान्त सुन बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि हे राम! आप धन्य हैं, जिनके रक्षक विश्वामित्र जी हैं। इनकी कथा सुनिये :—

प्रजापति के पुत्र कुश हुए, कुश के कुशनाभ, कुशनाभ के गाधि, गाधि के विश्वामित्र हुए।

---

१ यद्यपि वालमीकीय रामायण में यह कथा नहीं है कि अहल्या पत्थर हो गयी थी। तथापि तुलसीदास जी ने यह बात अपनी रामायण में दिखलाई है।

२ संस्कृत शब्द 'शाप' है।

३ ,, ,, 'शङ्कर' है।

४ ,, ,, 'शिव' है।

विश्वामित्र जी बहुत वर्षों तक प्रजा पालन कर एक दिन वशिष्ठ जी के आश्रम में अपनी वाहिनी सहित गये। भगवान् वशिष्ठ ने विश्वामित्र को आसन दे कर फलफूल भेंट किये। राजा ने उन्हें ग्रहण किया और परस्पर कुशल प्रश्न के अनन्तर वशिष्ठ जी ने राजा की पहुनाई करने की इच्छा प्रकट की। इस विचार से महर्षि वशिष्ठ ने अपनी शबला नाम्नी गौ से कहा कि रस, अन्न, पान, लेह्य, चोष्य, पेय, चर्व्य आदि से राजा का यथोचित सत्कार करो। उसने वैसा ही किया। यह देख कर विश्वामित्र ने वशिष्ठ जी से वह गाय माँगी, पर ऋषिवर ने उसे किसी प्रकार देना स्वीकृत न किया। इस पर राजा बलात्कार से उस गौ को लेकर चले। तब वह भटक कर मुनि के पास चली आयी। ऋषि ने उससे कहा तू शत्रु विनाशिनी सेना की सृष्टि कर। यह सुन शबला ने पलहव, शक, यवन, काम्बोज, वर्वर, हारीत, किरात आदि म्लेच्छों को सिरजा। इस सृष्टि से विश्वामित्र की सारी सेना नष्ट हो गयी। तदनन्तर विश्वामित्र जी के सौ लड़के एक साथ ही वशिष्ठ जी पर दौड़े, किन्तु भगवान् वशिष्ठ के तेज से नष्ट हो गये। यह दशा देख और लज्जित होकर विश्वामित्र ने अपना सारा राजपाट पुत्र को सौंपा और स्वयं तप द्वारा शिव को प्रसन्न करने के अर्थ ये हिमालय पर चले गये। कुछ काल बीतने पर शिव ने विश्वामित्र जी को दर्शन दिये। विश्वामित्र ने देव, दानव, महर्षि, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसों के अस्त्रों को माँगा। शिव उनको वे सब अस्त्र दे, अपने लोक को चले गये। उन अस्त्रों को पाकर विश्वामित्र जी वशिष्ठ के आश्रम में जाकर फिर उपद्रव करने लगे। तब वशिष्ठ जी ने ब्रह्मदण्ड से विश्वामित्र के सम्पूर्ण अस्त्रों को ग्रस लिया। वारुण, रौद्र, ऐन्द्र, पाशुपत, ऐषीक, मानव, मोहन, गान्धर्व, स्वापन, जृम्भण, सन्तापन, विलापन, शोषण, दारण, वज्र, ब्रह्मशाप, वरुणपाश, पिनाकास्त्र आदि अनेक अचूक अस्त्रों को विफल होते देख, विश्वामित्र ने ब्रह्मास्त्र उठाया; पर वशिष्ठ जी के तेज के सामने ब्रह्मास्त्र भी कुछ न कर सका; वशिष्ठ जी ने उसे भी शान्त कर दिया। ऋषियों ने वशिष्ठ की स्तुति की। तब तो विश्वामित्र बहुत लज्जित हुए और अपने को धिक्कारते हुए बोले :—

"धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्।
एकेन ब्रह्मदंडेन सर्वास्त्राणि हतानि मे॥

फिर विश्वामित्र जी अपनी स्त्री को लेकर दक्षिण दिशा में जाकर तप करने लगे। कुछ काल बीतने पर विश्वामित्र के हविष्यन्द, मधुष्यन्द, दृढ़नेत्र और महारथ नाम के चार पुत्र हुए। विश्वामित्र का कठोर तप देख कर, ब्रह्मा ने आकर उनसे कहा—"विश्वामित्र! तुमने राजर्षि के लोकों को जीत लिया।" यह कह वे अपने लोक को चले गये; किन्तु विश्वामित्र को ऐसे वर से सन्तोष न हुआ और वे तपस्या से विरत न हुए।

उसी समय अयोध्यानरेश त्रिशङ्कु ने वशिष्ठ से कहा कि महाराज कोई ऐसा यज्ञ मुझसे करवाइये, जिससे मैं इसी शरीर से स्वर्ग जा सकूँ। यह सुन उन्होंने कहा—"ऐसा होना सम्भव नहीं।" तब राजा दक्षिण दिशा में गये जहाँ वशिष्ठ के सौ पुत्र तपस्या कर रहे थे। वहाँ राजा ने उनसे सारा वृत्तान्त कहा। पुत्रों ने कहा, जब हमारे पिता इस काम को असम्भव बतलाते हैं; तब हमारे किये कुछ भी नहीं हो सकता। आप अपने घर लौट जाइये। यह सुन त्रिशङ्कु विरक्त हुए और बोले—"आपके पिता और आप लोग जब मुझे कोरा जवाब देते हैं; तब विवश हो मुझे तीसरे के पास जाना पड़ेगा।" इस पर उन तपस्वियों ने क्रुद्ध होकर राजा को शाप दिया और कहा—"तू चाण्डाल होजा।" बस फिर क्या था, राजा चाण्डाल हो गया। चाण्डाल होने पर वह बहुत दुःखी हुआ और विश्वामित्र के पास जाकर अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। विश्वामित्र ने कहा—ठहर, मैं तुझसे यज्ञ करवाऊँगा।" साथ ही साथ विश्वामित्र ने अपने पुत्रों को यज्ञ की तैयारी करने की आज्ञा दी। शिष्यों को अन्य ऋषियों को निमंत्रण देने के

अर्थ भेजा और उनसे यह भी कह दिया कि जो ऋषि तुम्हारी अवमानना करें उसका वृत्तान्त मुझसे आकर कहना। वशिष्ठ के पुत्रों को भी निमंत्रण देना। गुरु के आज्ञानुसार शिष्य निमंत्रण दे आये और लौट कर गुरु से निवेदन किया कि "महाराज! सब ऋषि आते हैं, किन्तु महोदय नामक ऋषि और वशिष्ठ के पुत्रों ने निमंत्रण स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा है कि जिस यज्ञ में याजक क्षत्रिय और यजमान चाण्डाल है, उसमें देवर्षि किस प्रकार हवि ग्रहण कर सकते हैं? वे ब्राह्मण जो विश्वामित्र के वशीभूत हैं, चाण्डाल का भोजन कर किस प्रकार स्वर्ग में जायँगे।"

यह सुन विश्वामित्र ने कहा—"यदि वे लोग मेरा निरस्कार करते हैं तो वे सब भस्म हो जायँगे और सात सौ जन्म तक मृतपा नामक चाण्डाल योनि में जन्म लेंगे। केवल कुत्ता उनका भोजन होगा, मुष्टिक नाम से पुकारे जायँगे, और बड़े कुरूप होंगे। रहे महोदय ऋषि सो वे निषाद योनि में उत्पन्न होंगे।" यह कह समागत ऋषियों से उन्होंने यज्ञ कराने के लिये कहा। उन लोगों ने मारे डर के यज्ञ कराना आरम्भ किया। विश्वामित्र जी याजक बने और देवताओं को यज्ञ भाग लेने के लिये बुलाया। किन्तु वे न आये। तब क्रुद्ध हो उन्होंने कहा—"हे राजन्! तुम मेरे तपःप्रभाव से सदेह स्वर्ग को जाओ।" राजा स्वर्ग की ओर चले और जब उसके निकट पहुँचे, तब इन्द्र ने कहा "हे राजन्! तू शापित है, अतः भूमि की ओर मस्तक कर नीचे गिर"। जब त्रिशङ्कु नीचे गिरने लगे; तब फिर विश्वामित्र को उन्होंने पुकारा। तब विश्वामित्र ने चिल्लाकर कहा—"वहीं ठहरो।" राजा अन्तरिक्ष में रुक गये। तब तो विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर दक्षिण दिशा में दूसरे सप्तर्षि मण्डल, देवता और नक्षत्र माला की सृष्टि आरम्भ की। इस पर देवता दैत्य और ऋषियों ने उनसे जाकर कहा—"हे महाभाग! त्रिशङ्कु शापित है अतः स्वर्ग जाने योग्य नहीं है।" इस पर विश्वामित्र ने कहा—"मैं तो राजा को स्वर्ग में सदेह भेजने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अतएव ऐसा करिये कि इस राजा के लिये सदैव स्वर्ग बना रहे और मेरे बनाये ध्रुव सहित नक्षत्र भी विद्यमान रहें।" देवताओं ने कहा—"आपके रचे हुए तारा गण के मार्ग से बाहर और उन्हीं में प्रकाशमान होकर वे स्थिर रहेंगे तथा राजा भी अधोमुख होकर, अमर के तुल्य भोग करता हुआ स्थिर रहेगा। ये तारागण राजा के अनुगामी होंगे।" ये बातें विश्वामित्र जी ने अङ्गीकार कीं, तब यज्ञ समाप्त हुआ और लोग अपने अपने घर गये।

ऋषियों को जाते देख विश्वामित्र भी दक्षिण दिशा को छोड़, पश्चिम की ओर पुष्कर के तट पर तप करने लगे। उसी समय अयोध्या के राजा अम्बरीष ने यज्ञ आरम्भ किया। इन्द्र यज्ञपशु चुरा ले गये। तब पुरोहित ने कहा यज्ञ करने के पहिले चाहे यज्ञ पशु ढूंढ़िये अथवा नरपशु लाइये; यह सुन राजा सहस्रों गौ साथ लेकर पशु ढूंढने निकले। और घूमते घूमते भृगुतुङ्ग नामक पर्वत के शृङ्ग पर ऋचीक नामक महर्षि के आश्रम में गये। कुशल पूँछ कर राजा ने मुनि से कहा—"महाराज! लक्ष गौ लेकर अपने पुत्रों में से एक पुत्र यज्ञपशु बनाने के लिये मुझे दीजिये। मुनि बोले—"ज्येष्ठ पुत्र तो मैं न दूँगा" —उनकी स्त्री ने कहा—"शुनक नामक छोटे पुत्र को मैं न दूँगी।" यह सुन कर मध्यम पुत्र शुनःशेफ बोल उठा—"राजन्, मुझको ले चलिये। यह सुन राजा ने एक कोटि सुवर्ण मुद्रा, कई ढेरी रत्नों की, और लक्ष गौ मुनि को देकर, अपनी राजधानी की ओर यात्रा की। मार्ग में दोपहर के समय पुष्कर मिला। राजा अपने अनुचर वर्ग सहित वहीं ठहर गये। वहाँ शुनःशेफ ने अपने मामा विश्वामित्र को देखा। देखते ही वह उनकी गोद में गिर पड़ा और रोते हुए सब वृत्तान्त कहा। तब मुनि ने उसे धीरज देकर कहा ठहर और अपने पुत्रों से कहा अपने इस भाई की रक्षा करो। यह सुन मधुच्छन्द आदि विश्वामित्र

के पुत्र पिता का उपहास करते हुए हँसे और बोले—"अपने पुत्रों को त्याग कर दूसरे के पुत्रों को बचाना कैसा विलक्षण न्याय है?" इस पर विश्वामित्र ने बिगड़ कर कहा—"वशिष्ठ पुत्रों जैसी दशा तुम्हारी भी होगी।" अपने पुत्रों को यह शाप दे ऋषि ने शुनःशेफ से कहा—"जब तू यज्ञमण्डप में यज्ञस्तम्भ से बाँधा जाय तब अग्नि के मंत्रों से अग्नि की स्तुति करना, और इन दो स्तुति वाक्यों को जो मैं अभी तुझे बतलाता हूँ—गाना, ऐसा करनेसे तू अवश्यरक्षा पावेगा।" उन स्तुतियों को सीख कर, शुनःशेफ ने राजा के निकट जा कर कहा तुरन्त चलिये और यज्ञ आरम्भ कीजिये। राजा ने घर जाकर यज्ञआरम्भ किया। जब शुनःशेफ यज्ञस्तम्भ में बाँधा गया तब वह इन्द्र और वामन की स्तुति गाने लगा। इन्द्र ने प्रसन्न हो कर शुनःशेफ को दीर्घायु किया। राजा का यज्ञ पूरा हुआ।

पुष्कर के तट पर तप करते करते जब विश्वामित्र जी को एक सहस्र वर्ष हो गये, तब ब्रह्मा ने जा कर कहा—"हे विश्वामित्र! अब तुम अपने कर्मों से ऋषि हुए।" यह कह ब्रह्मा अपने धाम को चले गये। विश्वामित्र फिर अपने तप में लगे। तदनन्तर मेनका नामक एक अप्सरा वहाँ स्नान करने गयी। ऋषि उस पर मोहित हो गये और उसे अपने निकट रख लिया तथा दस वर्ष तक उसके साथ विहार किया। फिर इस कर्म को निन्दित समझ उसे छोड़ दिया और उत्तर दिशा में कौशिकी नदी के तट पर बैठ कर काम को जीतने के लिये वे तप करने लगे। जब तप करते करते उनको एक सहस्र वर्ष हो गये, तब देवताओं ने ब्रह्मा से कहा—"विश्वामित्र को अब महर्षि की पदवी दीजिये।" पितामह ब्रह्मा ने ऐसा ही किया और विश्वामित्र महर्षि हुए। पर विश्वामित्र ने ब्रह्मा से कहा—"प्रभो! मुझे जितेन्द्रिय भी कर दीजिये।" इस पर ब्रह्मा ने कहा—"अभी और तप करो।" यह कह कर ब्रह्मा जी अपने लोक को चल दिये। महर्षि ने फिर तप करना आरम्भ किया। जब तप करते करते उन्हें एक सहस्र वर्ष होगये; तब उनका तप नष्ट करने के लिये देवताओं ने रम्भा को भेजा और इन्द्र स्वयं कोयल बन और कामदेव को साथ ले कर रम्भा के पीछे गये। विश्वामित्र रम्भा का दूषित उद्देश्य समझ गये और उसे यह शाप दिया "तू दस सहस्र वर्ष तक शिला बन कर रह, फिर कोई ब्राह्मण तेरा उद्धार करेगा।" यह सुन इन्द्र और कामदेव दोनों वहाँ से भाग गये। मुनि को जब क्रोध की बात याद आयी तब वे विस्मित हुए और उत्तर दिशा छोड़, पूर्व दिशा में जा कर तप करने लगे। एक सहस्र वर्ष तक निराहार तप करने के पीछे भोजन बनाया। उस समय ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र ने भोजन माँगा। विश्वामित्र ने सारी रसोई उठा कर, इन्द्र को दे दी और स्वयं भूखे हो रहे तथा बिन अन्न स्पर्श किये फिर एक सहस्र वर्ष की दीक्षा लेकर तप करना आरम्भ किया। तथा साँस का लेना भी बन्द कर दिया। उस समय उनके ललाट से धूम निकलने लगा; जिससे देवर्षि, गन्धर्व, सर्प, नाग और राक्षस विकल हो उठे और ब्रह्मा के निकट जाकर अपना दुःख कह सुनाया। तब ब्रह्मा सब को साथ ले कर विश्वामित्र के पास गये और उनसे कहा—

"हमने तुम्हें ब्राह्मण की पदवी दी और तुम दीर्घायु भी हुए। अब जाओ।" तब विश्वामित्र ने कहा—"यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मुझे 'ओंकार' 'वषट्कार' भी दीजिये और ऐसा कीजिये कि वशिष्ठ जी मुझे ब्रह्मर्षि कहें।" यह सुन देवताओं ने जाकर वशिष्ठ जी को प्रसन्न किया। तब वशिष्ठजी ने उनको ब्रह्मर्षि कह कर सम्बोधन किया और उनके साथ मैत्री की। देवता गण अपने अपने स्थान को चले गये। शतानन्द ने कहा—" महाराज! ये वे ही विश्वामित्र हैं"। यह सुन राजा ने मुनिवर्य की स्तुति कर के कहा—"महाराज आप और इन दोनों देवतुल्य राजकुमारों के आने से मैं कृतार्थ हुआ। अब सन्ध्या हो गयी, मुझे आज्ञा दीजिये।" मुनि ने उनको विदा किया और स्वयं भी वे अपने आवास स्थान को गये।

अगले दिन महाराज जनक ने दोनों राजकुमारों सहित मुनि को बुलवा लिया और मुनि से पूँछा—"क्या आज्ञा है?" मुनि ने कहा—"इन राजकुमारों को धनुष दिखला दीजिये।" जनक ने कहा—"महाराज सुनिये, पूर्वकाल में जब शिव ने दक्षयज्ञ विध्वंस किया और इस धनुष को चढ़ा कर देवताओं को भस्म करना चाहा, तब डरे हुए देवताओं ने शिव की स्तुति की उनकी स्तुति सुन शिव जी प्रसन्न हो गये और वह धनुष देवताओं को दे डाला। देवताओं ने उसे राजा निमि के ज्येष्ठ पुत्र देवराज को सौंप दिया। हे महाराज! यह वही धनुष है।

जनक फिर बोले—"महाराज मैं एक बार यज्ञकाल में क्षेत्र शोधन के लिये हल से पृथिवी को खोद रहा था। उस समय खोदी हुई पृथिवी से एक कन्या निकली, जिसका नाम सीता रखा। क्योंकि खोदी हुई भूमि का नाम सीता है और वीर्यशुल्का प्रतिज्ञा करके रखा। जब वह बड़ी होने लगी; तब अनेक राजा उसके प्रार्थी हुए; तब मैंने उन सब को यही उत्तर दिया कि यह वीर्यशुल्का है। इस पर सब राजा एकत्र होकर आये, पर इस धनुष को कोई भी न उठा सका, इससे मैंने किसी को कन्या न दी। इस पर सब ने मिल कर मेरे नगर को घेर लिया और वर्ष भर वे सब घेरे रहे। इससे मेरा सारा द्रव्य नष्ट हो गया। तब देवताओं को प्रसन्न कर मैंने चतुरङ्गिणी सेना प्राप्त की और उन राजाओं को मार कर हटा दिया। महाराज! यदि राम उस धनुष को उठा सकें तो मैं उस कन्या को इनके अर्पण कर दूँगा।"

यह सुन विश्वामित्र ने राजा से कहा कि "आप उस धनुष को राम को दिखलाइये तो।" तब राजा ने अपने मंत्रियों को उस धनुष के लाने को भेजा। वह धनुष लोहे की मञ्जूषा में बन्द था और उस मञ्जूषा में नीचे आठ पहिये लगे थे। वह धनुष सहित मञ्जूषा इतनी गरु थी कि उसे वहाँ तक खींचकर लाने के लिये पाँच सहस्र मनुष्य लगे। तब राजा ने मुनि से कहा—"धनुष आगया, यह वह धनुष है जिसे देवता, दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, कोई भी नहीं उठा सकते, मनुष्य किस गिनती में है। राघव इसको देखें।" विश्वामित्र की आज्ञा पाकर, राम ने उस मञ्जूषा का ढकन खोला और कहा—"मैं इसे अकेले उठा सकता हूँ।" यह सुनते ही मुनि और राजा एक साथ बोल उठे—"हाँ, हाँ-इसे उठाओ।" राम ने गुरु की आज्ञानुसार झट उसे उठा लिया और उसको झुका कर उस पर रोदा चढ़ाया और उसके दो टुकड़े कर डाले। उस धनुष के टूटने का इतना जोर का शब्द हुआ कि मुनि, राजा और दोनों राजकुमारों को छोड़ और सब मूर्छित हो गये। जब सब चैतन्य हुए तब राजा ने कहा—"सीता, राम की भार्य्या हुई। मुनिवर! यदि आज्ञा पाऊँ तो महाराज दशरथ को बुलवा लूँ।" इस पर मुनि ने कहा—"बहुत अच्छी बात है।"

महाराज दशरथ को बुलाने के लिये दूत भेजे गये। चौथे दिन अयोध्या में पहुँच कर दूतों ने महाराज दशरथ से राजा जनक का सन्देसा कहा। महाराज ने कुलगुरु वशिष्ठ और वामदेव के आज्ञानुसार तैयारियाँ कीं। वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, मार्कण्डेय और कात्यायन को साथ लेकर वे जनकपुर को गये। चौथे दिन वहाँ पहुँचे। राजा जनक ने उनकी पूजा की। तदनन्तर रात को सब जनों ने विश्राम किया। राजा जनक के एक भाई थे। उनका नाम था कुशध्वज और वे इक्षुमती नदी के तीरवर्त्ती सांकाश्य नामकी नगरी के राजा थे। उन्हें बुलाने के लिये जनक की ओर से दूत गया। कुशध्वज आये और उन्होंने शतानन्द और अपने ज्येष्ठ भ्राता जनक को प्रणाम किया। जब सब लोग बैठ चुके; तब दोनों भाइयों ने सुदामा नामक मंत्री को सपुत्र दशरथ को बुलाने के लिये भेजा। महाराज दशरथ अपने चारों पुत्रों और मंत्रियों तथा हितू नातेदारों सहित वहाँ जा पहुँचे।

जब सब बैठ गये; तब वशिष्ठ जी ने महाराज दशरथ की वंशावली सुनायी। वे कहने लगे—

"ब्रह्म से ब्रह्मा, ब्रह्मा से मरीचि, मरीचि से कश्यप, कश्यप से सूर्य, सूर्य से वैवस्वत मनु, वैवस्वत मनु से इक्ष्वाकु हुए। येही अयोध्या के प्रथम राजा थे। इक्ष्वाकु से कुक्षि, कुक्षि से विकुक्षि, विकुक्षि से बाण, बाण से अनरण्य, अनरण्य से पृथु, पृथु से त्रिशङ्कु, त्रिशङ्कु से धुन्धमार; धुन्धमार से युवनाश्व, युवनाश्व से मान्धाता, मान्धाता से सुसन्धि, सुसन्धि से ध्रुवसंधि और प्रसेनजित हुए। ध्रुवसंधि से भरत, भरत से असित, असित से हैहय, तालजंघ और शशविन्दु हुए। इन तीनों ने मिल कर राजा को निकाल दिया, वह अपनी दो स्त्रियों को साथ लेकर, हिमवान् पर्वत पर चले गये और वहीं पञ्चत्व को प्राप्त हुए। उनकी दोनों स्त्रियाँ गर्भवती थीं। उन में से एक दूसरी ने गर्भ नाश की चेष्टा करके परस्पर विष प्रयोग किया। उस समय वहाँ पर च्यवन मुनि तप कर रहे थे। राजा की स्त्री कालिन्दी मुनि के निकट गयी और गर्भ रक्षा की प्रार्थना की। मुनि ने कहा—"तू चिन्ता मत कर; तेरे महातेजस्वी सगर नाम का पुत्र उत्पन्नहोगा। उन भार्गव मुनि के प्रसाद से कालिन्दी के गर्भ से सगर उत्पन्न हुए। सगर के असमञ्जस, असमञ्जस के अंशुमान, अंशुमान के दिलीप, दिलीप के भगीरथ, भगीरथ के ककुत्स्थ, ककुत्स्थ के रघु, रघु के प्रवृद्ध नामक पुरुषाद् अर्थात् राक्षस हुए, जो पीछे से कल्मापपाद भी हो गया है। उसके शङ्खण, शङ्खण के सुदर्शन, सुदर्शन के अग्निवर्ण, अग्निवर्ण के शीघ्रग, शीघ्रग के मरू, मरू के प्रशुश्रक, प्रशुश्रक के अम्बरीप, अम्बरीप के नहुष, नहुष के ययाति, ययाति के नाभाग, नाभाग के अज, अज के दशरथ और दशरथ के राम और लक्ष्मण हुए। वशिष्ठ जी बोले—इन्हीं राम और लक्ष्मण के लिये मैं आपकी दोनों कन्याओं को माँगता हूँ।

यह सुन कर जनक ने अपनी वंश परम्परा कहनी आरम्भ की। वे कहने लगे—"पूर्वकाल में निमि नाम के एक राजा हो गये हैं। उनके पुत्र मिथि, मिथि के जनक, जनक के उदावसु, उदावसु के नन्दिवर्द्धन, नन्दिवर्द्धन के सुकेतु, सुकेतु के देवरात, देवरात के बृहद्रथ, बृहद्रथ के महावीर, महावीर के सुधृति, सुधृति के धृष्टकेतु, धृष्टकेतु के मरू, मरू के प्रतिवन्धक, प्रतिवन्धक के कीर्त्तिरथ, कीर्त्तिरथ के देवमीढ़, देवमीढ़ के विबुध, विबुध के महीध्रक, महीध्रक के कीर्तिरात, कीर्तिरात के महारोमा, महारोमा के स्वर्णरोमा, स्वर्णरोमा के ह्रस्वरोमा हुए। ह्रस्वरोमा के दो पुत्र हुए शिरध्वज और कुशध्वज। शिरध्वज मेरा नाम है। मेरे पितृदेव मुझे राज्य देकर स्वर्गवासी हुए। इसके कुछ दिनों बाद सांकाश्यपुरी के राजा सुधन्वा ने आकर मिथिला को घेरा और मुझसे कहला भेजा कि अपनी कन्या और रुद्र धनुष मुझे दे दो। मैंने उसके प्रस्ताव को अस्वीकृत किया और उसके साथ युद्ध में प्रवृत्त हो कर उसे मार डाला। फिर उसका राज्य अपने छोटे भाई कुशध्वज को दिया। अब मैं अपनी दोनों कन्याएँ प्रसन्नता पूर्वक राम और लक्ष्मण को देता हूँ। आज से तीसरे दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में विवाह होना चाहिये। फिर वशिष्ठ और विश्वामित्र ने भरत और शत्रुघ्न के लिये कुशध्वज की दोनों बेटियाँ माँगी। राजा ने देना स्वीकार किया। चारों लड़कों का विवाह कर, महाराज दशरथ वहाँ से विदा हुये और जनवाँसे में गये। वहाँ अपने पुत्रों से गोदानादि कराये।

उसी दिन भरत के मामा केकयराज के पुत्र सुधाजित राजा दशरथ के निकट आये और कहा कि भरत को केकयराज देखना चाहते हैं। दशरथ ने उनका सत्कार किया और अगले दिन मण्डप में मुनियों समेत जा कर वे आसीन हुये। रामचन्द्र ने सीता के साथ लक्ष्मण ने उर्मिला के साथ भरत ने माण्डवी के साथ और शत्रुघ्न श्रुतकीर्ति के साथ परिणय सूत्र में आबद्ध हुये। विवाह के समय श्रीरामचन्द्रजी की आयु पन्द्रह वर्ष और सीता की छः वर्ष की थी।

विवाह के दूसरे दिन विश्वामित्र जी ने दोनों राजाओं से विदा हो कर, उत्तर प्रान्तवर्त्ती पर्वत

की ओर यात्रा की। तदन्तर महाराज दशरथ ने भी विदा माँगी। तब जनक ने बहुत सा धन और बहुमूल्य अन्य गृहस्थी सम्बन्धी-सामग्री दी और उनको विदा किया। महाराज दशरथ अयोध्या की ओर प्रस्थानित हुए।

मार्ग में बड़ा उपद्रव खड़ा हुआ। चारों ओर भयङ्कर पक्षी बोलने लगे। दशरथ ने वशिष्ठ जी से पूँछा कि महाराज क्या होने वाला है? उत्तर में वशिष्ठ जी ने कहा—"राजन्! आप डरें नहीं पक्षी डराते अवश्य हैं पर मृगसमूह शान्ति की सूचना दे रहे हैं। इतने में आँधी चली, भूकम्प हुआ, वृक्ष गिरने लगे। सूर्य के छिप जाने से निविड़ अन्धकार छा गया, दिशाओं का ज्ञान लुप्त हो गया और धूल के उड़ने से सारी सेना आच्छन्न हो गयी। वशिष्ठ, दशरथ और उनके पुत्र तथा ऋषियों को छोड़ अन्य सब मूर्च्छित हो गये। इतने में कन्धे पर परशु और हाथ में धनुष बाण लिये और भयङ्कर रूप धारण किये, क्षत्रियवंश नाशकारी परशुरामजी दीख पड़े। ऋषियों ने अर्घ्य पाद्य ले कर उनका आगे ही से सत्कार किया। उन्होंने ऋषियों की पूजा ग्रहण करके श्रीरामचन्द्र जी से कहा—"तुमने शिव धनुष को तोड़ा है—तुम्हारे इस पराक्रम को सुन कर, मैं जमदग्नि के महाधनुष को लाया हूँ। आप इसे चढ़ा कर बाण से पूरा करो तुम्हारा बल देख लेने पर मैं तुमसे द्वन्द्व युद्ध करूँगा।" परशुराम जी के इन कठोर और व्यङ्ग पूर्ण वाक्यों को सुन कर, बड़ी नम्रता से और दीन बन कर दशरथ बोलेः—"महाराज! आपने शस्त्र त्याग दिया है—क्षमा कीजिये। राम के मरने से मेरी भी मृत्यु अवश्य हो जायगी।" पर परशुराम ने उनकी बातों पर कर्णपात न करके राम से फिर कहा—"विश्वकर्मा ने दो धनुष बनाये थे। उनमें से एक त्रिपुरासुर के वधार्थ शिव को दिया था। वही तुम्हारे हाथ से टूटा है। दूसरा देवताओं ने विष्णु को दिया था। उस समय देवताओं ने ब्रह्मा से पूँछा कि महाराज! इन दोनों में [१] बली कौन है?" इस प्रश्न को सुन ब्रह्मा ने स्पष्ट बात तो न कही, किन्तु कौतूहलवश देवताओं को ऐसा उत्तर दिया जिससे दोनों में लड़ाई ठन गयी। युद्ध आरम्भ हुआ, पर पीछे से शिवजी का धनुष शिथिल पड़ गया। यही नहीं, किन्तु हुङ्कार से वह स्तम्भित कर दिया गया। तब देवता ऋषि और चारणों ने आ कर दोनों को युद्ध से निवृत्त किया और शिव के धनुष को शिथिल देख विष्णु को अधिक माना। इस पर शिव ने क्रुद्ध हो कर वह धनुष बाण सहित विदेहराज देवरात को दे डाला और विष्णु ने भृगुवंशी ऋचीक को धरोहर के रूप में अपना धनुष दिया। ऋचीक ने अपने पुत्र, जमदग्नि को, जो मेरे पिता थे—वह धनुष दिया। पिता ने यह मुझे दिया है। जब जमदग्नि ने अस्त्र शस्त्र त्याग दिये, तब, राजा अर्जुन ने उनको मार डाला। यह अनुचित कर्म देख कर, मैंने अनेक बार क्षत्रियों का नाश किया। पीछे यज्ञ कर और सम्पूर्ण पृथिवी कश्यप ऋषि को दान देकर, मैं महेन्द्राचल पर तप करने के लिये चला गया। धनुष का टूटना सुन कर मैं वहीं से चला आ रहा हूँ। अतएव तुम इस धनुष पर बाण चढ़ाओ! तब मैं द्वन्द्व युद्ध करूँगा।"

परशुराम की बातें सुन कर, राम पिता के डर से, धीमे स्वर में बोले—"महाराज! जो काम आपने किया है, वह मैं भली भाँति जानता हूँ पर यदि आप मेरे काम का निरादर करते हैं, तो लाइये"—यह कह कर राम ने उनके हाथ से धनुष बाण ले लिया और बाण को धनुष पर रख कर बोले—"एक तो आप विप्र हैं, दूसरे मेरे गुरु विश्वामित्र की भगिनी के पौत्र हैं, अतः आपके प्राण तो नष्ट न करूँगा; पर यह कहिये कि आप की गति को हरूँ अथवा उन लोकों को जिन्हें आपने तप से जीते हैं।" यह सुन परशुराम चकित हुए और सोच विचार कर बोले—"मेरे प्राप्त किये लोकों को नाश कीजिये। क्योंकि जब मैं पृथिवी कश्यप को दे चुका, तब पृथिवी ने कहा कि मेरे ऊपर तुम अब मत रहो। तब से मैं भूमि पर नहीं रहता। आप बाण से मेरे लोकों

---

१ अर्थात् विष्णु और शिव में।

का नाश कीजिये—मैं महेन्द्राचल पर जाऊँगा।" राम के बाण चलाते ही परशुराम जी महेन्द्राचल पर चले गये। उनके जाते ही दिशाओं का अंधकार जाता रहा और देवता एवं ऋषि राम की स्तुति करने लगे।[1]

परशुराम के चले जाने पर उस धनुष बाण को लिये हुए राम ने भगवान् वशिष्ठादि ऋषियों को प्रणाम किया। तदनन्तर पिता दशरथ से, (जो डर के मारे विकल थे) कहा—"परशुराम चले गये।" अब आप अयोध्याको प्रस्थान कीजिये। यह सुन कर दशरथ ने राम को हृदय से लगाया और वहाँ से चल कर वे अयोध्या में पहुँचे। अयोध्या में वे सब सुख पूर्वक रहने लगे। कुछ दिनों के पीछे दशरथ ने भरत से कहा तुम्हारे नाना के भेजे हुए तुम्हारे मामा, तुम्हें वहाँ अपने साथ ले जाने के लिये ठहरे हुए हैं। तुम उनके साथ जाने की तैयारी करो। यह सुन भरत ने शत्रुघ्न सहित और माता एवं भाइयों से विदा माँग, मामा को साथ ले ननिहाल की ओर प्रस्थान किया।

---

१ रामायण में प्रायः दिये हुए परशुराम और राम के परस्पर संवाद का यही सार है। वाल्मीकि ने तुलसीदास जी की तरह परशुराम के साथ लक्ष्मण को बोलने तक नहीं दिया। यही कारण है कि छोटे लक्ष्मण अपने बड़ों के सामने वाल्मीकीय रामायण में चूँ तक नहीं करने पाये। तुलसीदास जी ने परशुराम का आगमन धनुष-यज्ञ-सभा में दिखलाया है, किन्तु आदि कवि परशुराम का मिलना अयोध्या के मार्ग में लौटते समय दिखलाते हैं। तुलसीदासजी के परशुराम-लक्ष्मण संवाद में मनोरञ्जकता होने पर भी ऐतिहासिकप्रामाणिकता कितनी है यह कहा नहीं जा सकता।

॥ इति बालकाण्डम् ॥

अयोध्या काण्ड

जब महाराज दशरथ ने रामचन्द्र में उन सम्पूर्ण गुणों का समावेश देखा, जिनका युवराज में होना आवश्यक ही नहीं किन्तु अनिवार्य है, तब उन्होंने मंत्रियों के साथ परामर्श करके अन्य राजाओं को निमन्त्रण भेज कर बुलवाया। राम को युवराज पद पर नियुक्त करने का कार्य इतना आवश्यक और शीघ्रता का दशरथ को प्रतीत हुआ कि वे हड़बड़ी में राजा जनक और केकयराज को न बुला सके।

सब राजागण आये और यथोचित सत्कार पुरस्सर अपने अपने स्थानों पर जब आसीन हो चुके; तब महाराज दशरथ कहने लगे—"अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, अतएव रामचन्द्र को युवराज पद पर नियुक्त करना चाहता हूँ। इस विषय में आप लोगों की क्या सम्मति है। आप जिसमें मेरा हित समझें वही सम्मति मुझे दें।" महाराज दशरथ के प्रश्न के उत्तर में सब उपस्थित जनों ने एक स्वर से कहा—"रामचन्द्र को यौवराज्य देना बहुत ही ठीक है। हम लोगों की यह आन्तरिक अभिलाषा है कि हम राम को राज्यपद पर बैठा हुआ देखें।" यह सुन दशरथ ने पूँछा—"यह आप लोग क्यों चाहते हैं? क्या हमसे आप लोगों को किसी प्रकार का कष्ट मिल रहा है?" इसके उत्तर में उपस्थित जनों ने राम के गुणों का विस्तृत विवरण कह सुनाया, जिसे सुन दशरथ प्रसन्न हुए और वशिष्ठ जी से अभिषेक की सामग्री एकत्र करने की प्रार्थना की तथा सुमन्त्र द्वारा राम को बुलाया। राम अटारी पर पिता के निकट गये और अपना नाम बतला, पितृ-चरणों में मस्तक नवा कर प्रणाम किया। तब दशरथ ने राम को हृदय से लगा लिया और अपने पास ही एक आसन पर बिठाया। दशरथ राम को अपने सम्मुख बैठा देख वैसे ही प्रसन्न हुए, जैसे कोई अपना भूषित प्रतिबिम्ब दर्पण में देख कर प्रसन्न होता है। तदनन्तर राम से कहा-"मैं तुमको राजा बनाना चाहता हूँ अतएव तुम नीतिपूर्वक प्रजा का पालन करना।" यह सुसंवाद जिन लोगों ने कौशल्या को सुनाया, उनको महारानी ने पारितोषिक दिया।

राजसभा विसर्जित हुई। रामचन्द्र, महाराज से विदा हो कर निज मन्दिर में गये। सभासद भी अपने अपने आवास भवनों को चले गये। राजा ने अपने मन्दिर में जा कर सोचा कि यह चैत्र महीना है और कल पुष्य नक्षत्र भी है। अतएव कल ही तिलक हो जाना चाहिये। अतः सुमंत्र को भेज कर महाराज ने फिर राम को बुलवाया और उनसे कहा—"हे पुत्र! मैंने संसार के सारे भोग भोग लिये हैं, मैं दान दक्षिणा सहित सैकड़ों यज्ञ कर चुका हूँ, देवऋण, पितृऋण, ब्राह्मणऋण और आत्मऋण से भी उऋण हो

चुका हूँ। तुमको प्रजा चाहती है अतएव मैं तुम्हारे तिलक करूँगा। आज कल मैं बुरे तथा अशुभ-फलप्रद स्वप्न देखता हूँ; दिन में भयङ्कर शब्द के सहित उल्कापात होता है, और ज्योतिर्विद कहते हैं, कि मेरे जन्म नक्षत्र को दारुण ग्रह सूर्य, मङ्गल और राहु ने ग्रस लिया है।[१] ऐसी घटनाएँ राजा के विपत्ति में पड़ कर, नाश को प्राप्त होने की सूचना दिया करती हैं। अतः मोहवश होने के पूर्व ही मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा राज्याभिषेक कर दूँ। कल पुष्य नक्षत्र में ऐसा हो जाना चाहिये। आज स्त्री सहित व्रत करके तुम सावधानी से रहो; क्योंकि ऐसे कार्य्यों में विघ्न अनेक हुआ करते हैं। मेरी अभिलाषा है कि भरत के मातुलगृह से लौटने के पहले ही तुम्हारा तिलक हो जाय।[२] रामचन्द्र ने कहा—"बहुत अच्छा" और यह कह कर वे पिता से विदा होकर अपनी जननी के पास; जो देवमन्दिर में मङ्गलार्थ देवाराधनतत्परा थीं तथा सुमित्रा सीता और लक्ष्मण उनके पास बैठे थे, और प्रणाम करके बोले—

१ अवष्टब्धं च मे राम नक्षत्रं दारुणग्रहैः।
आवेदयन्ति दैवज्ञाः सूर्याङ्गारकराहुभिः॥
श्लोक १८ अ० ४ अ० का०।

कतिपय आधुनिक विद्वानों का कथन है कि भारत में फलित ज्योतिष प्राचीन काल का नहीं है। परन्तु मनुष्यों पर ग्रहों की छाया का शुभाशुभ प्रभाव पड़ना और उस प्रभाव के पड़ने के पहिले उसे जनाने वाली विद्या कल्पित अथवा "स्वार्थी" लोगों की करतूत नहीं है। उक्त श्लोक से यह बात सिद्ध होती है कि महाराज दशरथ के समय में भी मारकेश की दशा को, उस समय के सभ्यातिसभ्य जन मानते थे।

२ विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम॥
श्लोक २५ अ० ४ अ० का०।

इससे यह स्पष्ट है कि राजनीति के वशवर्ती हो दशरथ ने भरत को सन्देह की दृष्टि से देखा और भरत के लोकोत्तर गुणों पर ऐसे समय महाराज का ध्यान न गया।

"कल पिता मुझे राज्य देना चाहते हैं अतएव सीता सहित आज मुझे उपवास करना पड़ेगा। तुम मङ्गलार्थ जो कर्त्तव्य कर्म हों, उन्हें करो।" यह सुन कौशल्या ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"बेटा! तुम राजलक्ष्मी पा कर मेरे और सुमित्रा के इष्ट मित्रों को आनन्दित करो। फिर रामचन्द्र ने अञ्जलिबद्ध खड़े हुए लक्ष्मण से प्रसन्न हो कर कहा—"हे तात! तुम मेरे अन्तरात्मा हो, तुम्हारे ही लिये मैं जीवन और राज्य चाहता हूँ। मेरे साथ राजलक्ष्मी को तुम भोगो।" यह कह राम ने दोनों माताओं को प्रणाम किया और सीता समेत वे निज भवन में चले गये।

राम के चले जाने पर दशरथ ने वशिष्ठ जी को बुलवाया और कहा—"आप जा कर राम से विधि पूर्वक व्रत धारण करवा दें और उपदेश दें।" वशिष्ठ जी तीन ड्योढ़ी तक तो रथ पर बैठे ही बैठे चले गये। गुरु का आगमन सुन कर, राम ने तुरन्त जा कर उनको रथ से उतारा। वशिष्ठ जी राम और सीता दोनों को व्रत के नियमादि बतला कर, राजा के पास लौट गये और उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। इसके पश्चात् सभा भङ्ग हुई और राजा अपने भवन में गये।

इधर राम ने व्रत धारण किया, उधर पुर-वासी गली कूचों को और अपने अपने रहने के घरों को लीपपोत तथा साफ करके उनको सजाने लगे। इतने में कैकेयी की एक दासी ने, जिसका नाम मन्थरा था, अपनी अटारी पर चढ़ कर, अपने अपने घरों की सफाई करने में व्यग्र पुरवासियों को देखा। वह देख उसे आश्चर्य हुआ और पास खड़ी राम की धात्री से उसका कारण पूँछा। धात्री ने उत्तर दिया—"राम का तिलक होने वाला है।" यह सुन कर वह परोत्कर्षासहिष्णु मन्थरा अटारी से उतरी और कैकेयी के भवन में गयी। वहाँ कैकेयी को जगा कर और भावी अनिष्ट की आशङ्का जतला कर, राम के अभिषेक का संवाद सुनाया। पर कैकेयी ने राम की बड़ाई की और कहा सौ वर्ष में भरत को भी

पितृ-पितामह का राज्य मिलेगा।" तब भी मन्थरा ने दोष दिखलाना आरम्भ किया। मन्थरा ने कैकेयी को ऐसी बातों के चक्कर में फाँसा कि रानी की मति फिरा दी। कैकेयी यहाँ तक मन्थरा के कहने में आ गयी कि उसीसे वह पूँछने लगी कि अब मुझे क्या करना चाहिये जिससे भरत को राज्य मिले और रामचन्द्र वन में भेजे जाँय।[१] तब मन्थरा ने कहा—इसका उपाय मैं बतलाती हूँ। सुन :—

"एक बार दण्डक वन के समीप वैजयन्त नामक ग्राम के अधिपति राजा तिमिध्वंज के साथ, जो संवर के नाम से प्रसिद्ध था, इन्द्र का युद्ध हुआ। इस युद्ध में इन्द्र के साहाय्य के लिये अनेक राजर्षि और राजा दशरथ भी गये। उस समय राजा तुझे भी अपने साथ ले गये थे। उस लड़ाई में जो आहत पुरुष रात को सोता, उसे राक्षस खा जाते थे। राजा दशरथ भी घायल हुए थे, तब तूने बड़े यत्न से उन्हें बाहर लाकर, उनकी प्राणरक्षा की थी। तब राजा ने तुझे दो वर देने चाहे थे। आज उन्हीं दो वरों को माँग। जब वे उन वरों को देने के लिये प्रस्तुत हों, तब एक तो भरत का राज्याभिषेक और दूसरा राम का चौदह वर्ष के लिये वनवास माँगना। जब राम चौदह वर्ष तक वन में रहेंगे; तब भरत के राज्य की जड़ दृढ़ हो जायगी और फिर रामचन्द्र का कुछ भी भय न रहेगा। अतः तू अभी कोपभवन में जा और जब राजा वर देने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर लें, तब तू वर माँगना; जिससे राजा अपनी बात टाल न सके।" यह कुमन्त्रणा सुन कैकेयी ने मन्थरा की बुद्धि को सराहा और स्वयं कोपभवन में जा कर पड़ रही।

उधर राजा दशरथ राम के अभिषेक का प्रबन्ध किये जाने की आज्ञा दे इस सुसंवाद को सुनाने कैकेयी के भवन में गये। वहाँ कुब्जा और वमनिका को इधर उधर घूमते पाया। वहाँ कैकेयी को इस शोच्य दशा में देख, राजा ने कारण पूँछा और रूठी हुई रानी को मनाने के लिये बड़ी लम्बी चौड़ी बातें कहते हुए बोले—"जहाँ तक सूर्य्य के रथ का चक्र घूमता है वहाँ तक मेरा राज्य है। इसमें से द्राविड़, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिणपथ, वङ्ग, अङ्ग, मागध, मत्स्य, काशि और कौशल तो सम्पूर्ण प्रकार से मेरे अधीन है। तुम जो कहो मैं वही करने को प्रस्तुत हूँ।" कैकेयी ने जब राजा को सर्वथा और सब प्रकार अपनी मुट्ठी में देखा तब उनसे अच्छे प्रकार अटल प्रतिज्ञा करवा कर, और देवताओं को साक्षी करके पहले वर से भरत का राज्याभिषेक और दूसरे से राम का चौदह वर्ष के लिये निर्वासन माँगा। कैकेयी ऐसे वर माँगेगी, इसकी राजा को स्वप्न में भी कभी आशा न थी। यदि उन्हें इस बात की कभी सम्भावना भी होती, तो वे कभी ऐसी प्रतिज्ञा न करते। वे तो समझे थे कि कैकेयी किसी वस्तु विशेष के लिये रूठी है। हम चक्रवर्ती होकर उसकी अभिलषित उस वस्तु को तुरन्त मँगा देंगे पर यहाँ तो बात ही दूसरी निकली। कैकेयी की उक्ति को सुन महाराज दशरथ शोक सागर में डूब कर अचेत हो गये। जब कुछ क्षणों बाद उनकी मूर्छा भङ्ग हुई और वे सचेत हुए; तब कैकेयी को अनेक प्रकार से समझा बुझा कर चाहा कि वह अपना हठ स्वयं छोड़ दे। पर वह तो मन्थरा की बड़ी पक्की पट्टी पढ़ चुकी थी। वह अपनी बात पर पूर्ववत् अड़ी रही। प्रत्युत दशरथ को अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने की

---

[१] ऐसा जान पड़ता है कि रामचन्द्र को वन में भेजने से मन्थरा ने यह विचारा था कि राम के नगर में रहते, कहीं भरत और राम में राज्य के लिये विवाद खड़ा न हो जाय। क्योंकि पुरवासी राम को बहुत चाहते थे। भरत को राजसिंहासन पर बैठते देख, पुरवासी राम को अग्रसर कर बखेड़ा खड़ा करेंगे, मन्थरा को यह सन्देह था। भरत तो राजसिंहासन पर बैठे ही, साथ ही बखेड़े की जड़ राम भी अयोध्या में न रहें, इसीलिये उनको १४ वर्ष के लिये वन में भेजना मन्थरा ने उचित समझा। १४ वर्ष इसलिये कि इतने काल में भरत प्रजावर्ग को अपने हस्तगत कर लेंगे।

उत्तेजना देने के लिये उसने कहा—"देखिये महाराज! एक राजा, शैव्य थे जिन्होंने अपना वचन रखने के लिये बाज को अपने शरीर का माँस देकर कपोत की प्राणरक्षा की थी, राजा अलर्क ने अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिये अन्धे ब्राह्मण को अपने नेत्र तक दे डाले थे। यह सत्य प्रतिज्ञा ही का प्रभाव है कि समुद्र अपनी मर्य्यादा को नहीं छोड़ता। इन महात्माओं की करनियों को स्मरण कर आप भी अपनी बात पर रहिये और अपनी प्रतिज्ञा को न छोड़िये।"

यह सुन दशरथ बोले—"जब जब कौशल्या दासी के तुल्य, सखी के तुल्य, पत्नी के तुल्य, बहिन के तुल्य और माता के तुल्य आकर बोलती हुई और सदा मुझे प्रसन्न करने की आकाँक्षा रखती हुई मेरे सामने आती थी, तब तब मैं तेरीही प्रसन्नता के लिये उसका सत्कार तक नहीं करता था। मेरी उसी करतूत का यह फल मुझे मिल रहा है। राम को वन में भेज कर मैं जीवित नहीं रह सकता। यह देख सीता भी मरजायगी और कौशल्या एवं सुमित्रा भी मरजायगी तब तू स्वतंत्र होकर राज करना। यदि राम का वन जाना भरत को अभीष्ट हो उसे अच्छा लगे, तो वह मेरा प्रेतकर्म न करे।[१]" यह कह कर दशरथ शोकाकुल होकर पृथिवी पर गिर पड़े। जब कुछ रात और ढली तब अनेक प्रकार से अनुनय विनय कर दशरथ ने कैकेयी को समझाना चाहा और समझाया भी, पर उनकी सारी चेष्टा विफल हुई। तब राजा ने कहा—"अच्छा! तू यदि नहीं मानती तो मैं तुझे और तेरे पुत्र भरत को त्यागता हूँ।"

इस प्रकार समझाते धमकाते अपनी शोच्य स्थिति का विवरण सुनाते सुनाते राजा को सारी रात हो गयी। सवेरा हुआ और तिलक की सामग्री लेकर सब राजा और ब्राह्मणों सहित वशिष्ठ जी राजा के द्वार पर पहुँचे और सुमंत्र को राजा के निकट भेजा। उसने जाकर राजा की स्तुति करनी आरम्भ की। तब राजा ने नेत्र खोल कर कहा—"अरे तू मेरे मर्म्मों को इन वाक्यों द्वारा क्यों बेध रहा है?" जिस बात के सुनने की सुमंत्र को कभी आशा भी न थी, उसे सुन सुमंत्र भयभीत हुआ और पीछे हट गया। तब कैकेयी ने उससे कहा कि महाराज राम को देखना चाहते हैं। तुम शीघ्र जाकर उनको बुला लाओ।" पर सुमंत्र महाराज की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा। यह देख दशरथ ने स्वयं उसे राम को बुला लाने की आज्ञा दी। सुमंत्र राजा की आज्ञा पाते ही राम को बुलाने गया, पर द्वार पर खड़े राजाओं और ब्राह्मणों के कहने से उनका सन्देसा पहुँचाने के अर्थ वह फिर महाराज के निकट लौट गया। उनका सन्देसा सुन कर महाराज ने विरक्त होकर कहा—"राम को क्यों नहीं बुलाते।" तब सुमंत्र एक क्षण का भी विलम्ब न कर सीधा रामचन्द्र के पास गया और उनसे उनके पिता का सन्देसा कहा। राम लक्ष्मण सहित रथ पर चढ़ कर पिता के निकट गये। तीन ड्योढ़ी तक तो रथ पर ही गये, फिर रथ से उतर पाँवप्यादे वहाँ गये जहाँ महाराज थे। पिता के सामने जाकर दोनों भाइयों ने महाराज और कैकेयी को प्रणाम किया। प्रणाम के उत्तर में महाराज ने सतृष्ण नेत्रों से राम की ओर देखा और "हा राम" कह कर वे चुप हो गये। उनसे फिर बोला न गया। यह स्थिति देख राम विस्मित हुए और उसका कारण जानने के अर्थ कैकेयी से प्रश्न किया। उस निष्ठुरहृदया रानी कैकेयी ने प्राप्त वरों का वृत्तान्त, निःसङ्कोच भाव से राम को कह सुनाया। राम ने उस वृत्तान्त को सुन कहा—"मैं स्वयं प्रसन्नता पूर्वक राज्य ही क्या सीता, प्राण और सम्पूर्ण धन तक भरत को दे सकता हूँ। तिस पर यदि राजा की आज्ञा है तो फिर कहना ही क्या है। महाराज तो महाराज, यदि आप ही कहतीं तो भी मैं प्रसन्न चित्त से आपकी आज्ञा को कभी नहीं टाल सकता। अच्छा, माता से विदा हो कर

---

१ रामः कारयितव्यो मे मृतस्य सलिलक्रियाम् ॥
सपुत्रयात्वया नैव कर्त्तव्या सलिलक्रिया ॥
व्याहंतास्य शुभाचारे यदि रामाभिषेचनम्।

मैं अभी आता हूँ" यह कह और महाराज एवं कैकेयी को प्रणाम तथा उनकी प्रदक्षिणा कर; राम, लक्ष्मण सहित जननी कौशल्या के निकट गये।

राम ने अपनी जननी से सारा वृत्तान्त कहा। उसे सुन कौशल्या के नेत्रों में जल भर आया और वे कहने लगीं—"बेटा! और जो कुछ हो, पर तुम वन में मत जाओ; और यदि जाओ तो मुझे भी अपने साथ ही लेते चलो।" लक्ष्मण अभी तक चुपचाप थे। उनको राम का वन जाना अच्छा नहीं लगा था। अब माता कौशल्या की बात सुन और सहारा पाकर वे भी बोले—भैया! आपका वनगमन मुझको नहीं रुचता, आप निःशङ्क हो राज्य कीजिये। यदि किसी ने तिल भर भी इस काम में बाधा डाली तो मैं बाधा डालने वाले को देख लूँगा।" इस पर राम ने कहा—" भाई लक्ष्मण, न तो कोई विघ्न डालता है और न कोई डालेगा। इसमें न महाराज का कुछ दोष है और न माता कैकेयी का। यदि इसमें किसी का दोष है तो दैव का।[1]" राम के मुख से इस पुरुषार्थ-हीन वाक्य को सुन, लक्ष्मण का शरीर क्रोध से परिपूरित हो गया। मुख रक्त वर्ण हो गया। भौं टेढ़ी कर लक्ष्मण ने राम से जो कुछ कहा उसका सार यह है। आर्य! आपका वन जाना सब प्रकार से अनुचित है। आप जैसे पुरुषार्थी पुरुषसिंह, जब "दैव" के ऊपर निर्भर हो हाथ पर हाथ रख चुप बैठ जायँगे; तब पुरुषार्थ किसकी शरण जायगा? आप जब निर्बल दैव को सरलता पूर्वक परास्त कर सकते हैं, तब इस तुच्छ दैव के वशवर्ती आप क्यों होते हैं? आप जानते हैं, संसार में ऐसे स्वार्थी जनों की संख्या कम नहीं है जो मुख से धर्म धर्म चिल्ला कर, नित्य धर्म की हत्या करते हैं। आप ही बतलावें यह कहाँ का धर्म है कि एक निर्दोष मनुष्य को निर्वासन दण्ड दिया जाय और सनातन मर्य्यादा को भङ्ग करके, बड़े के रहते छोटे पुत्र को राजसिंहासन सौंपा जाय? यद्यपि अम्ब कैकेयी की आज्ञा को दैव की आज्ञा मानते हैं; तथापि मैं ऐसे निर्दयी दैव को तृणवत् समझता हूँ। जो जन पुरुषार्थहीन और आलसी हैं, वे ही दैव का आश्रय ग्रहण करते हैं। यदि आप दैव ही को प्रबल मानते हैं, तो मैं आज ही आपको प्रत्यक्ष दिखला देता हूँ कि दैव कितना निर्बल है और पुरुषार्थ कितना सबल। जिस प्रकार मतवाले हाथी को अङ्कुश वश में कर लेता है, वैसे ही आज मैं भाग्य को अपने अधीन करके दिखलाऊँगा। भाई वृद्धावस्था में लोग वन का आश्रय लेते हैं; आप अभी वन जाने योग्य नहीं हैं। आप निशङ्क होकर राज्य करें, मेरी ये दोनों भुजाएँ इस शरीर की शोभा बढ़ाने के लिये नहीं हैं, किन्तु युद्ध के लिये हैं। मेरा यह धनुष और ये बाण मेरे आभूषण नहीं हैं, किन्तु शत्रुओं की छाती फोड़ने के लिये हैं। क्या किसी में इतनी सामर्थ्य है जो हमारा वैरी बन कर रह सके। जिस समय मैं शत्रुओं की सेना का संहार करने को उद्यत होऊँगा, उस समय किस की सामर्थ्य है जो मेरे सम्मुख खड़ा रह सके। यह आपका दास आज वही कर्म करके आपको दिखावेगा, जिससे यह सारा साम्राज्य आपकी मुट्ठी में आजाय।"

यह सुन कौशल्या ने राम से कहा—"बेटा! मेरा कहना मान और मेरी आज्ञा है कि तू वन मत जा। कश्यप की तरह तू मेरी सुश्रूषा कर।" इस पर राम ने कहा—" माता! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर मैं पिता की आज्ञा टाल नहीं सकता। देखो कण्डु ऋषि ने केवल पिता की आज्ञा से जान बूझ कर गोवध किया। सगर के साठ सहस्र पुत्रों ने अपने पिता की आज्ञा मान प्राण तक दे डाले। परशुराम ने पिता की आज्ञा

---

१ न लक्ष्मणास्मिन्मम राज्यविघ्ने-
मातायवीयस्यभिशङ्कितव्या।
दैवाभिपन्ना नपिताकथंचिन्
जानासि दैवं हि तथा प्रभावम्॥
श्लो० २० अ० २२ अ० का०।

से अपनी माता रेणुका का वध किया। जब ऐसे ऐसे महाजन पिता की आज्ञा को मानते चले आते हैं; तब मेरा भी अवश्यकर्त्तव्य यही है कि मैं भी पिता की आज्ञा का पालन करूँ।" माता आप यहीं रहें। क्योंकि स्त्री का धर्म है कि जब तक पति जीवित रहे तब तक उसकी वह सेवा करे। क्योंकि पति ही उसका देवता और स्वामी है। महाराज के रहते हम यथेच्छाचार नहीं कर सकते। उनकी आज्ञा हम सब को मान्य हैं। कैकेयी से तुम मत डरो। मैं भरत को जानता हूँ वह धर्मात्मा है। वह तुम्हारी सेवा करेगा। महाराज बूढ़े हैं। उनकी सेवा मन लगाकर करना। अन्य व्रतादि करने वाली पर पति की सेवा से विमुख स्त्री नरक में गिरती है। तदनन्तर लक्ष्मण की ओर देख कर राम ने कहा—"भाई लक्ष्मण! इसमें सन्देह नहीं कि तुम मेरे अनन्य भक्त हो और वीर हो, पर पिता की आज्ञा उल्लङ्घन करना अधर्म है। अतएव तुम इस क्रूर बुद्धि को छोड़ो।" इस प्रकार अनेक विधि दोनों को समझा कर राम ने माता से वनयात्रा की आज्ञा माँगी। कौशल्या ने आशीर्वाद देकर पुत्र को जाने की आज्ञा दी।

तदनन्तर राम ने सीता के निकट जाकर कहा—"प्रिये! पिता के आज्ञानुसार मैं वन को जाता हूँ। तुम यहाँ रहो।" फिर भरत की सन्देह की दृष्टि से देखकर राम ने सीता जी से कहा—"देखो बड़े लोगों को दूसरे की प्रशंसा अच्छी नहीं लगती, अतः भरत के सामने मेरी प्रशंसा मत करना और जिससे वे प्रसन्न हों वही काम करना। राजा लोग शील से आराधन किये जाने पर और प्रयत्न से सेवन किये जाने पर प्रसन्न होते हैं।[१] यहाँ रह कर देवाराधन और मेरे पिता माता की सेवा सुश्रूषा करना।" आर्यपुत्र! आप ऐसी छोटी बात अपने मुख से कैसे निकालते हैं। पिता माता, भ्राता, पुत्र, बन्धु—ये सब अपने अपने पुण्य कर्मों का भोग करते हैं, किन्तु अकेली भार्या ही अपने स्वामी के भाग्य की साझेदार है। अतः आप मुझे भी अपने साथ वन में चलने की आज्ञा दीजिये। इस संसार में स्त्री के लिये न तो पिता, न पुत्र, न माता और न सखी सहेली ही हैं—किन्तु उसके लिये तो पति ही उसकी अनन्य गति है। मैं आपके साथ चलूँगी क्योंकि जब मैं पिता के घर थी, तब एक ब्राह्मण और साधु ने कहा था कि तुमको वनवास लिखा है, अतएव उस ब्राह्मण की बात अन्यथा न होनी वाञ्छनीय है। जिस प्रकार चन्द्र बिना चन्द्रिका, शरीर बिना छाया नहीं रह सकती, वैसे ही मैं भी आप के बिना नहीं रह सकती।" रामचन्द्र ने विचारा कि यह समझाने से मानेगी नहीं और हठ करने से प्राण त्याग देगी। यह सोच राम ने सीता से कहा—"अपनी सब वस्तुओं को ब्राह्मणों को बाँट कर चलने के लिये उद्यत हो जाओ।" यह सुन सीता ने अपनी सब वस्तुएँ बाँट दीं और जाने को प्रस्तुत हुईं। इतने में लक्ष्मण ने साथ चलने के लिये राम से प्रार्थना की। राम ने उनसे कहा—"भाई लक्ष्मण! तुम यहाँ रह कर माताओं की सेवा करना।" लक्ष्मण ने कहा—"मैं यहाँ न रहूँगा, अस्त्र शस्त्र लेकर मैं आपके आगे चलूँगा।" तब राम ने भाई से कहा—"अच्छा जाओ अपनी माता से विदा हो आओ। यज्ञ में वरुण ने राजा जनक को जो रौद्र रूप, दिव्य दो धनुष, अभेद्य और दिव्य कवच, अक्षय्य तरकस और दो खड्ग दिये थे, वे जनक ने हमें विवाह के समय दिये थे। वे आचार्यगृह में रखे हैं। उनको अपने साथ लेते आओ।" राम के आज्ञानुसार लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा के पास गये और सारा वृत्तान्त सुना वन-गमन की आज्ञा माँगी। लक्ष्मण-जननी सुमित्रा ने सारा वृत्तान्त सुन लक्ष्मण को वन-गमन की आज्ञा दी।

माता से विदा हो और राम की बतलाई वस्तु ले लक्ष्मण बड़ी फुर्ती के साथ लौट आये।

---

१ भरतस्य समीपे ते नाहं कथ्यः कदाचन ॥
ऋद्धियुक्ता हि पुरुषा न सहन्ते परस्तवम्।
तस्मान्न ते गुणाः कथ्या भरतस्याग्रतो मम ॥
अहं ते नानुवक्तव्यो विशेषेण कदाचन ॥
श्लो० २४—२६. स० २६ अ० का०

तब राम ने उनसे कहा—जाकर वशिष्ठ-पुत्र सुयज्ञ एवं अन्य ब्राह्मणों को शीघ्र लिवा लाओ।" लक्ष्मण तुरन्त उन सब को बुला लाये। राम और सीता ने उठ कर उन सब को प्रणाम किया। फिर बहुत सा धन, सीता के आभूषण और पर्य्यङ्क सुयज्ञ को दिये। इन सब के साथ सुयज्ञ को शत्रुञ्जय नामक वह हाथी भी मिला, जिसे राम ने अपने मामा से पाया था। तदनन्तर राम ने लक्ष्मण से फिर कहा—"अगस्त्य और विश्वामित्र के पुत्रों को बुलाकर, रत्नों से पूजो। तैत्तिरीय शाखा के पढ़ने वाले इन ब्राह्मणों के आचार्य को, जो कौशल्या को बड़ी भक्ति से आशीर्वाद दिया करते हैं सन्तुष्ट करो। साथ ही सूतों के मंत्री चित्ररथ को भी सन्तुष्ट करो। इन कठशाखाध्यायी और कलापशाखाध्यायी ब्राह्मणों को जो दण्ड-मानव कहलाते हैं तथा उन ब्रह्मचारियों को जो कौशल्या के द्वार पर उपस्थित हैं यथायोग्य धन देकर, उन्हें, और मेरी माता को सन्तुष्ट करो।" यह कह राम ने उपजीवियों की जीविका के अर्थ भी धन दिया।

जिस समय लक्ष्मण सहित राम ब्राह्मणों को धन बाँट रहे थे, उसी समय एक ब्राह्मण आया। उसका नाम था त्रिजट और था गर्ग कुल का था। उसके बड़ा भारी कुटुम्ब था और दरिद्री होने के कारण वन्यफल खाकर अपनी आयु पूरी करता था। वह अपनी स्त्री के अनुरोध से, राम के पास भिक्षा माँगने आया था। जब उसने भिक्षा माँगी, तब उसका परिहास कर राम ने उससे कहा—"ये गौएँ अभी किसी को नहीं दी गयीं। तुम अपनी लाठी फेंको—वह जहाँ गिरेगी वहाँ तक की गौएँ तुम्हें मिलेंगी। उसने अपनी लाठी घुमा कर फेंकी जो सरयू पार जा गिरी। रामने उन सब गौओं को उस ब्राह्मण को देकर क्षमा माँगी और कहा मैंने तो परिहास किया था। तिस पर भी ब्राह्मण आशीर्वाद देता अपने घर चला गया।

ब्राह्मणों को धनादि बाँट कर रामचन्द्र ने भाई और स्त्री सहित महाराज के भवनद्वार पर पहुँच कर, सुमंत्र द्वारा अपने आगमन की सूचना दिलवाई। सुमंत्र द्वारा रामचन्द्र के आगमन की सूचना पाकर, महाराज ने पहले सब स्त्रियों को बुलाया। फिर राम को बुलवा और शोक प्रकाश कर, उन्हें एक रात रोकना चाहा, पर राम न रुके और जाने की आज्ञा चाही। तब महाराज रोते रोते मूर्च्छित हो गये।

महाराज की यह दशा देख, सुमंत्र ने कैकेयी से कहा—"तेरे पिता केकय को किसी ऋषि के अनुग्रह से सब प्राणियों की बोली समझना आगया था। परन्तु ऋषि ने राजा से यह भी कह दिया था कि यदि इस विद्या को तुम अन्य किसी को सिखलाओगे, तो तुम्हारी मृत्यु होगी। एक दिन राजा ने जृम्भ नाम के एक पक्षी की बोली सुनी। उसे सुन वे हँसे। तेरी माता ने उनसे इसका कारण पूँछा। राजा ने कहा—"यदि मैं अपने इस समय हँसने का कारण बतलाऊँगा; तो मेरी मृत्यु हो जायगी। किन्तु आग्रह की वशवर्त्तिनी होकर, तेरी माता ने न माना और हँसने का कारण बतलाने के लिये अपने पति से हठ किया। तू उसी हठी माता की बेटी है, जिसने अपने हठ के सामने, अपने पति के मरने का तिल भर भी विचार नहीं किया था। भला अब भी मान जा और इस अनुचित हठ को छोड़ दे।" किन्तु सुमंत्र के इस आक्षेपयुक्त वाक्य का उस कठोरहृदया कैकेयी के चित्त पर तिल भर भी प्रभाव न पड़ा और वह न मानी।

यह देख महाराज ने सुमंत्र से कहा—"रामचन्द्र राजाओं की सामग्री के साथ जाँय।" यह सुन कैकेयी ने कहा—"नहीं, राम अकेले ही जायं, नहीं तो भरत आकर राज्य किस पर करेंगे। देखिये राजा सगर ने अपने पुत्र असमञ्जस को अकेला ही निकाला था।" यह सुन सिद्धार्थ नामक राजा का मंत्री बोला—"अरी दुष्टा! असमञ्जस तो प्रजा के बालकों को सरयू में डुबा कर प्रसन्न होता था। सो सगर ने उसे दोषी समझ अकेला निकाल दिया था। किन्तु राम ने क्या अपराध किया है।" बात बढ़ती देख

रामचन्द्र बीच में बोल उठे—"जब हम वन को जा रहे हैं, तब वहाँ राजसी ठाठ बाठ की क्या आवश्यकता है। हमें तो केवल वे वस्त्र चाहिये जो मुनियों के लिये उपयुक्त हों।" यह सुन कैकेयी ने मुनियों के योग्य वस्त्र लाकर उपस्थित कर दिये। राम और लक्ष्मण ने उन वस्त्रों को धारण कर लिये। सीता उन वस्त्रों को लेकर राम से पूछने लगी—"इनको किस प्रकार पहनना चाहिये?" राम ने उसे ले, जो वस्त्र सीता पहने हुई थीं—उस पर लपेट दिया। यह देख वशिष्ठ बोले—"नहीं नहीं, सीता के साथ सम्पूर्ण सामग्री जायगी।" अनन्तर राम ने महाराज से कहा—"महाराज! ऐसा करना जिससे मेरे जाने का दुःख मेरी जननी कौशल्या को न हो।" महाराज ने कोषाध्यक्ष को बुलवाया और वनवास की अवधि को जोड़ कर, सीता के लिये भूषणवसन मँगवाये। चलते समय कौशल्या ने सीता को उपदेश दिया। रामचन्द्र ने चलते समय माता कौशल्या से कहा—"महाराज का अनादर किसी प्रकार न करना" और फिर सब माताओं से क्षमा माँगी। तदनन्तर महाराज और माताओं को प्रणाम कर उन्होंने जाने की आज्ञा माँगी।

लक्ष्मण ने पहले कौशल्या और फिर जननी सुमित्रा के चरणों को प्रणाम किया। सुमित्रा ने लक्ष्मण को आशीर्वाद देकर सिर सूँघा और कहा—"ज्येष्ठ भ्राता के वश में रहना सज्जनों का धर्म है। बेटा इक्ष्वाकुकुल का यह सनातन धर्म है कि दान दे, यज्ञ करे और संग्राम में शरीर तक दे दे। राम को दशरथ के तुल्य, सीता को मेरे तुल्य, और वन को अयोध्या के तुल्य समझना।" तदनन्तर सुमंत्र ने रथ पर चढ़ने की प्रार्थना की। तब पहले सीता चढ़ी, फिर राम और लक्ष्मण चढ़े। राजा दशरथ ने जैसे वर्ष की गणना के हिसाब से सीता को वस्त्र और आभूषण दिये, वैसे ही दोनों भाइयों को अस्त्र शस्त्र कवच दिये, वनवास के समय श्रीराम की अवस्था सत्ताईस वर्ष, और सीता की अठारह वर्ष की थी। विवाह के अनन्तर रामचन्द्र बारह वर्ष अयोध्या में रहे।

श्रीरामचन्द्र रथ पर चढ़ कर चले। नगरवासी उनके रथ के पीछे पीछे चले। जब उनका रथ बहुत दूर निकल गया; तब कुछ लोग विलाप करते फिरे, कुछ उनके रथ के पहियों के चिन्ह के सहारे उनके पीछे चले ही गये। उधर राम के दृष्टि के बाहर होते ही महाराज दशरथ मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। उनका दहिना हाथ कौशल्या और बाँया हाथ कैकेयी पकड़ कर नगर में चलीं। तब महाराज की दृष्टि ज्योंहीं कैकेयी की ओर गयी त्योंहीं उन्होंने उससे कहा—"तू मेरे अङ्गों को मत छू। मैं तेरा मुख तक देखना नहीं चाहता। मैं आज से तेरा त्याग करता हूँ। यदि भरत मेरे वर्त्तमान मत पर चले, तो जो कुछ वह मेरे लिये करे वह परलोक में मेरे सन्तोष का कारण न हो।" यह कह राजा रोने लगे और बोले—"मुझे कौशल्या के घर में पहुँचा दो।" लोगों ने वैसा ही किया। वहाँ जाकर महाराज एक पर्य्यङ्क पर बैठ कर विलाप करने लगे। कौशल्या भी विलाप करने लगी। तब सुमित्रा बोली—"रामचन्द्र जब पिता की आज्ञा का पालन करने में तत्पर हैं, तब तुम दुःखी क्यों होती हो। जब उन्होंने तिमिरध्वज के पुत्र को मारा था, तब प्रसन्न हो ब्रह्मा ने उन्हें दिव्य अस्त्र दिया था। एक तो वह अस्त्र और दूसरे उनका निज का बाहुबल—वे निर्भय हो वन में रहेंगे।" इन धैर्य्यप्रद वाक्यों को सुन कौशल्या कुछ कुछ शान्त हुईं।

इधर पुरवासियों से घिरे राम तमसा नाम्नी नदी के तट पर पहुँचे और उस दिन की रात राम ने वहीं बिताई; बड़े तड़के पुरवासियों को सोते छोड़, वे वहाँ से वन की ओर चले। तब राम की खोज न पाकर पुरवासी नगर की ओर लौट पड़े। रामचन्द्र वेदश्रुति नदी को पार कर, दक्षिण दिशा को चले। गोमती और स्यन्दिनी नदियों को पार कर, वे शृङ्गवेरपुर

नामक ग्राम में पहुँचे। वहाँ पर राम के मित्र गुह नामक निषादराज से भेंट हुई। वह भेंट लेकर उपस्थित हुआ। रामचन्द्र उठ कर उससे मिले और भेंट में से घोड़ों के लिये केवल चारा लिया। राम प्रथम दिन जलपान करके रहे थे और दूसरे दिन भी वे इसी प्रकार रहे। एक पेड़ के नीचे तृणों के ऊपर सो कर राम और सीता ने वह रात बिताई। उधर लक्ष्मण और गुह ने चौकी पहरा दे परस्पर वार्तालाप कर के कोरी आँखों से सबेरा कर दिया। सबेरा होते ही राम ने नाव मँगवायी और सुमंत्र को समझा बुझाकर अयोध्या को भेज दिया। फिर अपनी और अपने भाई की जटा बाँध कर राम, भाई और भार्य्या सहित नाव पर चढ़े। नाव पर चढ़ने के पहिले भक्तशिरोमणि गुह ने जो कुछ राम से कहा था, उसे हम तुलसीदास जी के शब्दों में नीचे उद्धृत करते हैं :—

सवैया

[१]

गुह कहता है :—

इहि घाट तें थोरिक दूरि अहै, कटिलौं जल थाह दिखाइ हौं जू।
परसै पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइ हौं जू॥
तुलसी अवलम्ब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू।
बरु मारिए मोहि, विना पग धोए, हौं नाथ न नाव चढ़ाइ हौं जू

[२]

रावरे दोष न पायन को, पग धूरि को भूरि प्रभाव महा है।
पाहन तें बरु बाहन काठ का, कोमल है जल खाइ रहा है॥
तुलसी सुनि केवट के बर बैन, हँसे प्रभु—जानकी ओर ह हा है।
पावन पाँइ पखारि के नाव, चढ़ाइ हौं आयुस होत कहा है॥

घनाक्षरी

पातभरी सहरी सकल सुत बारे बारे, केवट को जाति कछु वेद न पढ़ाइ हौं।
सब परिवार मेरी याही लागि राजा जी हौं, दीन वित्त हीन, कैसे दूसरी गढ़ाइ हौं॥
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी, प्रभु सों निषाद ह्वै कै बैर न बढ़ाइ हौं।
तुलसी के ईश राम रावरे से साँची कहौं, विना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइ हौं॥

गुह ने जब राम से पग धोने की अनुमति लेली, तब उसने जो कुछ किया उसे गोस्वामी जी ने दूसरे पृष्ठ के पद्य में वर्णन किया है।

१. यद्यपि वाल्मीकि में नाव में बैठते समय गुह के साथ का वह संवाद नहीं है जो तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा है, तथापि रोचक होने के कारण उसका निदर्शन ऊपर दे दिया गया है।

प्रभु रुख पाइ कै बुलाइ बालक घरनिहिं, वन्दि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गङ्गा जू को, धोइ पाँय पियत पुनीतवारि फेरि फेरि॥
तुलसी सराहै ताके भाग सानुराग सुर, बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।
विविध सनेह सानी बानी असयानो सुनि, हँसे राघौ, जानकी लषन तन हेरि हेरि॥

अस्तु। नाव छोड़ी गयी और जब वह गङ्गा जी के बीचो बीच पहुँची तब सीता ने गङ्गा की स्तुति कर मनौती मानते हुए कहा—"जब रामचन्द्र कुशल पूर्वक लौटेंगे और राज-सिंहासन पर बैठेंगे तब मैं लक्षगौ, सुन्दरवस्त्र और अन्न ब्राह्मणों को दूँगी और सहस्र घट मदिरा और माँस मिश्रित भात[1] से तेरी पूजा करूँगी। तेरे तट पर जो देवता हैं उनकी भी पूजा करूँगी।" इस प्रकार वे तीनों जन गङ्गा पार पहुँचे और वन की ओर चले। जब राम लक्ष्मण और जानकी—तीनों इतनी दूर निकल गये कि सुमंत्र उन्हें न देख सके; तब हताश हो और रीता रथ ले वे अयोध्या को लौटे।

गङ्गा को पार कर राम मत्स्य नामक देश में पहुँचे और वराह ऋष्य, पृषयंत् और महारू मृगों को मार कर, सन्ध्या को एक वृक्ष के नीचे टिक रहे। अयोध्या और अपने पिता माता की चर्चा में उन्होंने वह रात बिता दी।

प्रातः काल होते ही वे प्रयाग पहुँचे और भरद्वाज के आश्रम में पहुँच कर, मुनि को प्रणाम किया। मुनि ने बेल, पूजा की सामग्री और फल फूलों सहित जल भेंट किया। राम ने उसे ले लिया, तब मुनि ने कहा—"हे काकुत्स्थ! आप इस आश्रम पर बहुत दिनों बाद पधारे हैं। आप के वनवास का सारा वृत्तान्त मुझे अवगत हो चुका है। अतएव आप यहीं निवास कीजिये।" इसके उत्तर में राम ने कहा—"आप का आश्रम अयोध्या के निकट होने के कारण, मेरा यहाँ रहना उचित न होगा। आप कोई दूसरा स्थान बतलाइये।" मुनि ने कहा—"तब तो आप मधु मूल फलों से युक्त चित्रकूट को जाइये। उस स्थान को मैं आपके रहने योग्य समझता हूँ। उस रम्य स्थान में सीता सहित विचरने से आप बहुत प्रसन्न होंगे।" इस प्रकार की बात चीत में वह रात भी बीती। सवेरा होते ही राम ने चित्रकूट जाने के लिये मुनि से आज्ञा माँगी। मुनि ने कहा—"जहाँ पर यमुना पश्चिम वाहिनी है, उसी घाट से आप यमुना पार हूजिये। उस पार आपको वट का एक वृक्ष मिलेगा वहाँ से एक कोस नीला वन है। वही चित्रकूट का मार्ग है।" इस प्रकार बतला और कुछ दूर साथ जा और आशीर्वाद देकर मुनिवर्य लौट आये।

मुनि के लौटने पर रामचन्द्र जी आगे बढ़े और मुनि के बतलाये यमुना के घाट पर पहुँच कर, घरनई द्वारा यमुना को पार किया। यमुना के बीच में पहुँच, गङ्गा की तरह यहाँ भी सीता जी ने मनौती मानी और कहा—"हम सब जब कुशलपूर्वक वनवास की अवधि पूरी कर लौटेंगे, तब सहस्र गोदान कर और सौ मदिरा के घट से मैं आपकी पूजा करूँगी। नदी उतरने पर सीता को मुनि का बतलाया वटवृक्ष मिला। सीता ने उसे भी प्रणाम किया। रामचन्द्र जी वहाँ से आगे कुछ दूर बढ़े, नदी के तीर पर ही टिके। जहाँ वे तीनों टिके थे, वह स्थान उस वट-वृक्ष से अनुमान एक कोस के अन्तर पर था। रात काट सवेरा होते ही राम ने चित्रकूट का मार्ग पकड़ा। वहाँ पर वे पहले वाल्मीकि के आश्रम में गये और उनको प्रणाम किया। महर्षि ने राम का यथाविधि अतिथिसत्कार किया और कहा—"आप यहीं निवास कीजिये।" रामचन्द्र ने वहाँ रहना स्वीकार कर, कुटी बनाने के लिये लक्ष्मण को आज्ञा दी। जब कुटी बन गयी; तब लक्ष्मण से राम ने कहा कि वास्तु शान्ति[1] के

---

1 सुराघटसहस्रेण मांसभूतौदनेनच।
यक्ष्ये त्वां प्रीयतां देवि पुरीं पुनरुपागता॥
श्लोक ८९ स० ५२ अ० का०

1 नवीन गृह के शास्त्रोक्त संस्कार को वास्तु शान्ति कहते हैं।

लिये पहले जाकर एक मृग मार लाओ। लक्ष्मण ने आज्ञानुसार सब वस्तुएँ उपस्थित कर दीं। तब राम ने वैश्वदेव बलि, रौद्र बलि और वैष्णव बलि दी। इस प्रकार यथाविधि वास्तुशान्ति कर चुकने पर राम ने उस कुटी में प्रवेश किया। यह कुटी माल्यवती नदी के तट पर चित्रकूट में बनी थी। रामचन्द्र अयोध्या से चलकर तीन दिन लों जलपान कर रहे, चौथे दिन फलाहार किया और पाँचवें दिन चित्रकूट में पहुँचे।

उधर राम को सीता लक्ष्मण सहित गङ्गापार उतार, सुमन्त्र रीता रथ लिये हुए अयोध्या में पहुँचे और वहाँ पहुँच कर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वृत्तान्त सुन स्त्रीजनोचित स्वभाव की वशवर्तिनी हो कर, कौशल्या ने महाराज से कई एक कड़ी बातें कहीं। महाराज ने उन आक्षेपों को बुरा न मान कर, कौशल्या की विनती की। तब कौशल्या ने लज्जित हो कर क्षमा माँगी। रामचन्द्र के वनगमन के पीछे छठवें दिन की अर्द्धरात्रि को महाराज ने कौशल्या से कहाः—

"मैं कुमार अवस्था में शब्दवेधी बाण चलाता था। वर्षाऋतु में एक दिन रात के समय सरयू के तट पर मैंने शब्दवेधी बाण से, एक तपस्वी बालक को, जो शूद्रा योनि में वैश्य से उत्पन्न हुआ था, मारा था। उसको रुदन करते सुन मैं उसके निकट गया। मैंने उसकी दशा देख अपनी भूल पर अनुताप प्रकट किया। उसने मुझ से कहा—मेरे शरीर से बाण निकाल लो और यह जल मेरी माता और पिता के निकट पहुँचाओ।" मैंने वैसा ही किया। उसके माता पिता अन्धे थे। उन दोनों ने जब अपने एक मात्र अवलम्ब स्वरूप पुत्र के मर्माहत हो कर मरने का दुस्सम्वाद सुना; तब मुझसे कहा कि हम लोगों को उस स्थान पर ले चलो, जहाँ हमारा पुत्र मरा पड़ा है। मैंने उनको वहाँ पहुँचा दिया। वहाँ पहुँच कर उन दोनों ने अपने मृत पुत्र को आशीर्वाद देते हुए कहा कि जो गति सगर, शैव्य, दिलीप, जन्मेजय, नहुष और धुन्धुमार ने पाई है, उसीको तू प्राप्त हो।", यह कह और उसका प्रेतकर्म कर, उन दोनों ने मुझे शाप दियाः—"हमारी जैसी तुम्हारी भी दशा होगी।" यह शाप दे वे अन्धी अन्धे भी परलोकवासी हो गये। अतएव अब उस शाप के पूरे होने का समय आ गया है। मैं अब बच नहीं सकता। यह कह महाराज ने उसी समय प्राणत्याग दिये।

प्रातःकाल अन्तःपुर और राजधानी में कुहराम मच गया। चारों ओर हाहाकार होने लगा। मन्त्रियों की सम्मति के अनुसार महाराज का मृतक शरीर तेल में डुबो कर रखा गया। अगले दिन मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, गौतम और जाबालि वशिष्ठ के समीप गये और उनसे पूँछा कि अब किसे राजा बनाना चाहिये। उस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने भरत को बुलाने की अनुमति दी। अतएव सिद्धार्थ, विजय, जयन्त और अशोकनन्दन नाम के चार अश्वारोही दूत, भरत को लिवा लाने के लिये भेजे गये। जाते समय दूरदर्शी अनुभवी वशिष्ठ जी ने उन दूतों को समझा दिया था कि यहाँ का वृत्तान्त वहाँ प्रकट न करना और हमारे नाम से भरत को शत्रुघ्न सहित लिवा लाना।

वे दूत अपरताल नामक देश के पश्चिम वाले मार्ग से प्रलम्ब नामक देश के उत्तर भाग की ओर मालिनी नदी को पार कर, हस्तिनापुर के पास गङ्गा के पार हुए। वहाँ से पश्चिम की ओर वाला मार्ग पकड़ और पाञ्चाल देश के आगे कुरुजाङ्गल देश के मध्य मार्ग से चल कर, शरण्डा नदी पर पहुँचे। उस नदी के पश्चिम तट पर सत्योपयाचन नामक वृक्ष को देखा। वहाँ से चल कर वे कुलिङ्गा नाम पुरी, अभिकाल नामक ग्राम और यौधिवन को मझाते इक्षुमती के तट पर पहुँचे। इस नदी को पार कर वे वाल्हीक देश में हो कर सुदामा नाम पर्वत पर पहुँचे। उस पर्वत पर उन लोगों ने विष्णु के चरणों के दर्शन किये। तदनन्तर विपाशा और शाल्मली नदियों को पार कर, रात के समय उन लोगों ने केकय राज्य के

गिरिव्रज नामक पुर में प्रवेश किया। उसी रात को भरत जी को बड़ा बुरा स्वप्न दीख पड़ा था; जिसे देख वे बहुत व्यग्र हो रहे थे। दूतों ने भरत के आगे वह भेंट, जो वे उनके मामा और नाना के लिये लाये थे, रख कर, वशिष्ठ का सन्देसा सुनाते हुए कहा—" मन्त्रियों ने हमें आपको बुलाने के लिये भेजा है। काम बहुत आवश्यक है। आप तुरन्त चलिये।" यह सुन सरल स्वभाव भरत ने उनसे पूँछा—"भाई! यह तो बतलाओ कि अयोध्या में कुशल तो है?" भरत के इस सीधे साधे प्रश्न के उत्तर में दूतों ने क्रूर कटाक्ष के साथ कहाः—"आप जिनकी कुशल पूँछते हैं, वे कुशल पूर्वक हैं।"[१] अर्थात् भरत जो मानो दशरथ, राम, लक्ष्मण आदि की कुशल नहीं चाहते—वे कुशल चाहते हैं तो केवल कैकेयी और मन्थरा की।

नाना मामा से विदा माँग भाई सहित भरत झट रथ पर सवार हुए और आठवें दिन अयोध्या पहुँचे। रास्ते में उन्हें बड़े बड़े अशकुन हुए। अयोध्या के समीप पहुँच और उसे उजड़ी पुजड़ी देख वे बहुत घबड़ाए। घर तक पहुँचना उन्हें भारी हो गया। ज्यों त्यों कर वैजयन्त नामक द्वार से नगरी में प्रवेश कर, भरत सीधे पिता के भवन में गये। किन्तु वहाँ पिता को न देख वे अपनी माता के भवन में गये, क्योंकि वे जानते थे कि महाराज प्रायः वहीं उठते बैठते हैं। सद्यः विधवा कैकेयी आनन्द से फूल रही थी। भरत को आया देख उसने अपने पिता और भाई की कुशल पूँछी। भरत ने ननिहाल की कुशल सुना अपने पिता की बात पूँछी। उत्तर में कैकेयी ने कहा—"जहाँ अन्त में सब को जाना पड़ता है वहीं तुम्हारे पिता भी गये हैं।"[२] यह सुनते ही भरत कटे हुए वृक्ष की तरह पृथिवी पर गिर पड़े और धरती पर लोटते लोटते विलाप करने लगे। फिर उन्होंने माता से पूँछा—"जो राम, अब पिता के वैकुण्ठवासी होने पर मेरे पिता के समान हैं—जो मेरे बन्धु हैं और मैं जिनका दास हूँ वे राम कहाँ हैं?" राम लक्ष्मण और सीता वनवासी हुए हैं, यह सुनते ही भरत ने पूँछाः—"क्या राम ने किसी ब्राह्मण का धन चुराया था? क्या वे किसी पराई स्त्री में आसक्त हुए थे? उन्हें देश निकाला क्यों दिया गया।"[१]

तब कैकेयीने कहा—"राम ने इनमें से कोई भी पाप नहीं किया।" तदनन्तर कैकेयी ने सारा वृत्तान्त कहा और अपने मन में सोचने लगी कि बेटा भरत राज्य पाने का संवाद सुन, मेरी करनी पर प्रसन्न होगा। पर भरत अपनी माता की करनी को "सकल दुनिया से न्यारी" समझ विरक्ति और अप्रसन्न हुए। क्रोध के आवेश में उन्होंने अपनी जननी को कितनी ही खोटी खरी बातें कह डालीं। वे बोले—"अरी माता रूपिणी मेरी वैरिन! मैं तुझ जैसी पतिघातिनी दुर्वृत्ता से बात तक करनी नहीं चाहता। तू धर्मात्मा अश्वपति की कन्या नहीं—तू कुल को प्रध्वंस करने वाली उस कुल में राक्षसी उत्पन्न हुई है। तूने हमारे धर्मवत्सल पिता को मार कर, भाइयों को रास्ते का भिखारी बना दिया है। तू नरकगामिनी हो।"

जब इस प्रकार गद्गद् हो भरत ये बातें अपनी माता कैकेयी से कह रहे थे, तब दूसरे घर में बैठी कौशल्या ने सुमित्रा से कहा—"भरत का कण्ठस्वर सुन पड़ता है। जान पड़ता है वह आ गया है। उसे मेरे समीप लिवा लाओ।" कृशाङ्गी सुमित्रा जब भरत को लिवा लाई, तब कौशल्या ने भरत से कहा—"तुम्हारी माता तुम्हें लेकर निष्कण्टक राज्य करें, तुम मुझे राम के पास ले चलो।"

---

१ ऊचुः संप्रश्रितं वाक्यमिदं तं भरतं तदा।
कुशलास्ते नरव्याघ्र येषां कुशलमिच्छसि॥
श्लोक ११-१२ स० ७० अ० का०।

२ या गतिः सर्वभूतानां तां गतिं ते पिता गतः।
राजा महात्मा तेजस्वी यायजूकः सतांगतिः॥
श्लोक १५ स० अ० का०।

१ इससे जान पड़ता है कि उस समय परस्त्रीगामियों को निर्वासन दण्ड अर्थात् देश निकाला दिया जाता था।

कौशल्या की यह उक्ति भरत के हृदय में काँटे के समान चुभ गयी। उन्होंने अनेक शपथें खा कर, अपनी सफ़ाई दी, अनेक प्रकार से अपने को निर्दोष सिद्ध करने के अभिप्राय से, शोक एवम् लज्जा से पीड़ित हो भरत ने अपने को कोसा। अन्त में कौशल्या ने भरत के मन की बात जान ली और उन्हें गोद में ले कर कहा—"हे पुत्र! बड़े आनन्द की बात है कि तुम्हारा सुन्दर लक्षणों युक्त आत्मा धर्मच्युत नहीं हुआ। अतः तुम सत्य प्रतिज्ञ हो कर सज्जनों के बीच मान्य होगे।" यह कह कौशल्या रोने लगी।

इतने में सोलहों शृङ्गार साजे, प्रसन्न चित्त मन्थरा आयी। उसको देखते ही शत्रुघ्न को आँखें लाल हो गयीं। उन्होंने उसके झोंटे पकड़ उसे आँगन में घसीटा और मारे लातों के उसकी नस नस ढीली कर डाली। भरत के मना करने पर, उसके प्राण बचे।

फिर वशिष्ठ जी के कहने पर, भरत ने पिता की और्ध्वदेहिक-क्रिया सुसम्पन्न की। श्मशान पर दाह-क्रिया के पूर्व महाराज के कण्ठ से लग कर, भरत ने रोते रोते कहा—"आप अपने दो पुत्रों को वन में भेज कर, कहाँ जाते हो?" यह कह भरत अचेत हो पृथिवी पर गिर पड़े। ज्यों त्यों कर भरत ने उस कार्य को पूरा किया।

अगले दिन सवेरा होते ही वन्दीजनों ने आ कर, द्वार पर भरत का यश गान किया। उसे सुनते ही, भरत ने उन्मत्तों की भाँति दौड़ कर, मना किया। दाह-क्रिया से चौदहवें दिन वशिष्ठादि मन्त्रियों के अनेक प्रकार समझाने पर भी भरत ने राजसिंहासन पर बैठना स्वीकार न किया और कहा—"इक्ष्वाकु वंश की प्रथा के अनुसार राजसिंहासन सब से बड़े भाई ही को मिलना चाहिये। राजा तो रामचन्द्र ही होंगे। अयोध्या की समस्त प्रजा को साथ ले और मैं राम के चरण पकड़ कर, उन्हें लौटा लाऊँगा। यदि वे न आये तो मैं भी चौदह वर्ष तक वन ही में रहूँगा।"

सारे अयोध्यावासी राम को लौटाने के लिये भरत के साथ चले। साथ में उनकी माता, राम की माता और लक्ष्मण की माता भी थीं। शृङ्गवेरपुर में गुह के साथ भेंट हुई। भरत के साथ भीड़भाड़ देख कर, गुह को भरत पर पहले तो सन्देह हुआ, पर भरत का मुख देख कर, गुह को उनके मन की बात जानने में विलम्ब न हुआ। गुह ने भरत से पूँछा—"यह कहिये राम में आप की पाप बुद्धि तो नहीं है।" इसके उत्तर में महात्मा भरत ने कहा—भगवान् करे ऐसी बुद्धि मुझ में न आवे। पिता के तुल्य बड़े भाई को लिवाने के लिये मैं जा रहा हूँ।" इस उत्तर को सुन भरत से गुह ने कहा—"भरत! आप धन्य हैं आपकी कीर्ति सदा अचल रहेगी।" इसके पश्चात् गुह ने लक्ष्मण की प्रशंसा की। राम का इंगुदी के वृक्ष तले लेट कर रात काटना, फल खा कर रात बिताना—सुन भरत जी न रह सके। वे रोते रोते मूर्छित हो कर गिर पड़े।

जब वे सचेत हुए तब बोले—"यही क्या उन की शय्या है जो बड़े बड़े विशाल भवनों में पाले पोसे गये, जिनके भवन में सदा आनन्द रहता था, उसी राजभवन के स्वामी इस पेड़ के नीचे धूलि में लोटे! मैं किस मुँह से राजवेश धारण करूँ? मैं भी आज से जटा वल्कल धारण कर, पृथिवी पर ही सोऊँगा। मूल फल खाकर, जीवन बिताऊँगा।" अगले दिन सवेरे भरत गङ्गा पार हो कर, तीसरे पहर प्रयाग पहुँचे। सेना को टिका और गुरू को साथ लेकर, भरत भरद्वाज के पास गये। मुनि ने दोनों का यथा विधि अतिथि सत्कार किया, यद्यपि मुनि सर्वज्ञ थे; तथापि उनको भी भरत जी पर सन्देह हुआ और उनसे उन्होंने आने का कारण पूँछा। भरत ने अपने आने का अभिप्राय प्रकट किया। तब मुनि ने प्रसन्न हो कर कहा—"आज आप यहीं रहें कल राम के पास जाना। वे चित्रकूट पर हैं।

भरद्वाज ने भरत के डेरे में जा कर रानियों का परिचय पूँछा। उत्तर में भरत ने कहा—

भगवन्! ये जो शोक और अनाहार से लटी दुबली, देवता जैसी सौम्य मूर्त्ति दिखलाई पड़ती हैं, येही मेरे बड़े भाई राम की माता हैं। इनके बाएँ हाथ का सहारा ले जो उदास खड़ी हैं वे ही लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता सुमित्रा हैं और उनके पास जो खड़ी है, वही अयोध्या की राज-लक्ष्मी को बिदा करके आयी है। वह पतिघातिनी और सब बखेड़ों की जड़, अभिमान में चूर, इस अभागे की माता है।" यह कहते कहते भरत के दोनों नेत्रों में आँसू भर आये और क्रोध में भर क्रुद्ध सर्प की तरह, आँसू भरी आँखों से, एक बार अपनी माता को ओर देखा। इस पर भर-द्वाज ने कहा—"कैकेयी को दोष मत दो, क्योंकि राम का वनवास देव दानव और महर्षियों के लिये कल्याणकारी होगा।

भरत जी एक रात्रि भरद्वाज के आश्रम में रहे। उस रात को भरद्वाज ने भरत का राजो-चित सत्कार करने के अर्थ विश्वकर्मा को बुलाया और भरत की पहुनाई करने को कहा। भरद्वाज की आज्ञा से बात की बात में उक्त तपस्वी के आश्रम में अमरावतीपुरी बन गया। स्वर्ग और ब्रह्मलोक की अप्सराओं और गन्धर्वों ने नाच गा कर भरत के साथियों को आपे से बाहर कर दिया। अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ, माँस मदिरा और नौकर चाकरों की सेवा से भरत के साथी अपने को भूल गये और कहने लगे कि अब हम इस स्थान को छोड़ न तो अयोध्या जायँगे और न दण्डकारण्य में।[1] अस्तु, इस प्रकार के आनन्द में वह रात बीती। प्रातःकाल वे अप्सराएँ चली गयीं।

प्रातःकाल भरत ने मुनि से विदा माँग कर रामचन्द्र के पास जाने का पथ पूँछा। उत्तर में मुनि ने कहा—"यहाँ से दस कोस के अन्तर पर, मन्दाकिनी के दक्षिण ओर चित्रकूट है। वहीं पर रामचन्द्र रहते हैं; यमुना नदी के दक्षिण कुछ दूर पर, दो मार्ग मिलेंगे—एक तो बाईं ओर गया है और दूसरा दहिनी ओर। आप दहिने मार्ग से जाना।" यह सुन भरत वहाँ से चल दिये।

पर्वत पर बैठे हुए सीता सहित राम ने लक्ष्मण से कहा—"भाई! देखो धूल उड़ रही है, बड़ा भारी कोलाहल सुनाई पड़ रहा है। वन के जीव जन्तु त्रस्त हो, इधर उधर भागे जा रहे हैं। इस-का कारण क्या है?" तब लक्ष्मण ने आश्रम के पास वाले एक ऊँचे पेड़ पर चढ़ कर कहा—"भरत के रथ की कोविदार चिन्हित ध्वजा दीख पड़ती है। राज्य पा कर भी उसको सन्तोष नहीं हुआ। अब वह हम लोगों को मारने को आ रहा है। भैया! मैं आज सब बखेड़ों की जड़, भरत को बिना मारे न छोड़ूँगा।" यह सुन राम ने कहा—"लक्ष्मण! भरत हम लोगों को लौटाने के लिये आ रहे हैं। पिता को प्रसन्न करके, प्राणों से अधिक प्यारा मेरा भाई भरत, मुझे लौटाने के लिये आ रहा है। भरत ने कभी हम लोगों के साथ कोई बुराई नहीं की। फिर तुम उसको क्यों भला बुरा कहते हो? अगर तुमको राज्य का लोभ हो, तो हम भरत से कह कर अभी तुम को राज्य दिला देंगे।" बड़े भाई की इस उक्ति को सुन, लक्ष्मण ने लज्जा के मारे सिर नीचा कर लिया।

उधर भरत ने वशिष्ठ जी से कहा—"आप हमारी माताओं को लेते आइये" और यह कह, वे वहाँ से तुरन्त चल दिये। सुमन्त और शत्रुघ्न उनके पीछे हो लिये। थोड़ी ही दूर बढ़े होंगे कि भरत जी को, तपस्वियों के आश्रमों के मध्य में रामचन्द्र जी की कुटी दिखलाई पड़ी। भरत जी

---

१ अप्सरोगणसंयुक्ताः सैन्या वाचमुदीरयन्।
नैवायोध्यां गमिष्यामो न गमिष्याम दण्डकान्॥

कुशलं भरतस्यास्तु रामस्यास्तु तथा सुखम्।

× × × × ×

संप्रहृष्टा विनेदुस्ते न रास्तत्र सहस्रशः।
भरतस्यानुयातारः स्वर्गोऽयमिति चाब्रुवन्॥

श्लोक २८, ५९, ६१ स० ९१ अ० का०।

भरत का श्रीरामचन्द्रजी से मिलाप

ने देखा कि कुटी के द्वार पर हवन के लिये लकडियाँ और वन्य-फल रखे हैं। कुटी के द्वार पर पहुँच कर भरत ने देखा कि राम एक चटाई पर बैठे हैं। भरत ने राम के निकट जा साष्टाङ्ग प्रणाम किया और बालकों की तरह वे फूट फूट कर रोने लगे। कुछ देर बाद अपने को बहुत कुछ सम्हाल कर भरत बोले—"सोने का छत्र जिसके मस्तक पर शोभा पाता था उसी रघुवंशमणि के शीश पर आज जटाभार क्यों है? हमारे बड़े भाई का शरीर चन्दन और अगर से साफ किया जाता था, आज वही शरीर धूल धूसरित हो रहा है। जो प्राणीमात्र के आराधन की वस्तु है, वह आज भिक्षुक का वेष धारण कर वन पहाड़ भटक रहे हैं। नाथ! ये सारे कष्ट और दुःख आपको मेरे ही कारण सहने पड़े हैं, अतः मुझ अभागे के जीवित रहने को धिक्कार है।"

यह कह और उच्च-स्वर से रोते हुए महात्मा भरत जी राम के पैरों पर गिर पड़े। सचमुच इन दो त्यागी महात्माओं के सम्मेलन का दृश्य जी दहलाने वाला है। भरत का मुख सूख गया था। उनके मस्तक पर भी जटाजूट और शरीर पर चीर वस्त्र थे। वे हाथ जोड़े हुए अपने बड़े भाई के पैरों पर लोट रहे थे। भरत के शरीर और मुख का वर्ण पीला हो गया था और थोड़े ही दिनों में वे इतने कृश हो गये थे कि राम, सहसा उन्हें पहचान तक न सके।

रामचन्द्र ने बड़े आदर के साथ हाथ पकड़ कर, भरत को उठाया और मस्तक सूँघ कर, बड़े स्नेह से उन्हें अपने गोद में बिठा लिया। फिर उनसे कहा—"वत्स! तुम्हारी यह दशा क्यों कर हुई? तुमको इस वेष से वन में आना उचित नहीं।" यह कह राम ने भरत से पूँछा—"भैय्या! हमारे पूज्य पिता कहाँ हैं? उनके रहते तुम्हारा वन में आना ठीक नहीं है। अस्तु जो हो, हम आज तुमको बहुत दिनों बाद देख कर बहुत प्रसन्न हुए हैं। पिता के कुशल समाचार कहो। इस भयानक वन में तुमको देख, हमारा चित्त पिता के लिये बड़ा चिन्तित हो रहा है। शोक में निमग्न हो वे कहीं परलोकवासी तो नहीं हुए? तुम ब्रह्मनिष्ठ वशिष्ठ जी का आदर तो करते हो? हमारी माताएँ कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा तो प्रसन्न हैं? अग्निहोत्र की विधि को भली भाँति जाननेवाले ब्राह्मण, तुमने नियुक्त कर लिये हैं न? बाणविद्या में सुदक्ष तथा अन्य शास्त्रों के जानने वाले धनुर्वेदाचार्य सुधन्वा तुमसे अप्रसन्न तो नहीं हुए? तुम्हारे मन्त्री तो तुम्हारे हितैषी हैं और तुम्हें सत्परामर्श देते हैं? तुम्हारे मन की गुप्त बातें, उपयुक्त समय उपस्थित होने के पूर्व, प्रकाशित तो नहीं हो जातीं? सन्ध्या समय सोते तो नहीं हो? चोर डाकू तो प्रजा को कष्ट नहीं देते? नौकर चाकर तो समय पर वेतन पाये जाते हैं? प्रजा किसी कर्मचारी के अत्याचारों से पीड़ित तो नहीं? किसान और व्यापारी तो सुखी हैं? देव, पितृ और ब्राह्मणों को प्रसन्न करने वाले कार्यों में कञ्जूसी तो नहीं करते? जिस मार्ग को श्रेष्ठ समझ कर, हमारे पूर्वपुरुषों ने ग्रहण किया था, उस मार्ग से तो तुम भ्रष्ट नहीं हुए? हे भरत! अच्छे स्वादिष्ट भोजन तुम अकेले तो नहीं खा लेते? भाई बन्दों को खिला कर खाते हो न?"

महात्मा भरत ने बड़े भाई के पैरों पर लोटते हुए कहा—"भैय्या! आप मुझसे ऐसे प्रश्न न करें। मेरी जननी घोर नरक में गिरी हुई है, आप उसका उद्धार करें। मैं आपका अनुज हूँ, आपका शिष्य हूँ और दासानुदास हूँ। शोकविह्वल महाराज हमको पिताहीन कर परलोकवासी हुए। अयोध्या सूनी पड़ी है। इक्ष्वाकुकुल की परम्परागत प्रथानुसार, आप चल कर अनाथा अयोध्या को सनाथा कीजिये और अपना अभिषेक करवाइये। उठिये, देर न कीजिये। चल कर उस उजड़ी पुजड़ी अयोध्या को बसाइये। भैय्या! मेरी माता ने जो चाहा था, सो हुआ। तुमने उसका मनोरथ पूरा किया और मुझे राज्य दिया। अब मैं उसी राज्य को फेरता हूँ, आप उसे ग्रहण करें।"

श्रीराम भरत के मुख से पिता के मरने का शोकप्रद समाचार सुन, कटे हुए वृक्ष की तरह पृथिवी पर गिर पड़े। उनको मूर्च्छित देख, जानकी सहित उनके तीनों भाई शोकातुर हो, उनको सचेत करने के अर्थ, उनके मुख पर जल छिड़कने लगे। जब उनकी मूर्च्छा भङ्ग हुई; तब पिता के गुणों को स्मरण करके वे विलाप करने लगे। फिर भरत से बोले—"जब पूज्य पिता ही नहीं रहे, तब हम अब अयोध्या में जा कर क्या करेंगे? महाराजहीन अयोध्या का पालन कौन कर सकता है। हा! मैं कैसा अभागा हूँ, जिसके शोक में महाराज को अपना शरीर त्यागना पड़ा! हम अन्त समय उनके किसी काम न आ पाये। भाई लक्ष्मण! अब हम पिताहीन हो गये!" रामचन्द्र को रोते और विलाप करते देख तीनों भाई भी रोने लगे।

फिर भरत ने रामचन्द्र जी से कहा—"जो होना था सो तो हो चुका। अब उठिये और महाराज को तिलाञ्जलि[1] दीजिये। यह सुन राम ने लक्ष्मण से कहा—"भैय्या, तुम इंगुदी के बीजों को पीस कर और एक टुकड़ा कपड़े का लाओ। हम मन्दाकिनी के तट पर चल कर, पिता को तृप्ति के अर्थ, तर्पण करेंगे। भाइयों सहित राम ने मन्दाकिनी के तट पर जा कर पितृ तर्पण किया और अञ्जुली में जल ले और दक्षिण को मुख कर, रोते हुए राम बोले—"हे राजों में सिंह! आप पितृलोकवासी हुए हैं। अतः मेरे हाथ का दिया हुआ यह निर्मल जल, अक्षय्य होकर, पितृ लोक में आपको मिले।[2]" इसके पश्चात् पिण्डदान किया और अपने स्थान पर आकर बैठे।

इतने में सब रानियों को साथ लिये भगवान् वशिष्ठ जी वहाँ पहुँचे। रामचन्द्र जी ने वशिष्ठ जी एवं माताओं को प्रणाम किया। जब सब बैठ गये, तब भरत ने रामचन्द्र जी से अयोध्या लौट चलने के लिये फिर कहा। पर रामचन्द्र ने कहा—"पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन न करना चाहिये।" इस पर जावालि ने नास्तिक सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए राम से कहा—"कौन किसका पिता और कौन किसकी माता। इस लोक से परे न कोई लोक है और न कहीं किसी को पाप पुण्य का फल भोगना पड़ता है। अतः भरत की प्रार्थना को सुन, राज्य भार ग्रहण कीजिये।" रामचन्द्र ने बड़ी युक्तियों से जावालि की बातों का खण्डन किया और अन्त में यह भी कहा—"यदि हमारे पिता से कोई निन्द्य काम बन पड़ा तो यही कि उन्होंने तुम जैसे नास्तिकों को अपना परामर्शदाता बनाया।[1] इस पर जावालि लज्जित हुए और बोले—मैं नास्तिक नहीं हूँ, मैंने तो समय के अनुसार बात कही थी। ये सब बातें कहने से मेरा अभिप्राय यह न था कि मैं लोक परलोक को नहीं मानता। पर आप जिससे अयोध्या लौट चलें—मैंने इन बातों को कहा।" पर जावालि के इस उत्तर से भी जब राम का क्रोध शान्त होते न देखा तब वशिष्ठ जी ने जावालि के अनिष्ट की आशङ्का से प्रेरित हो जावालि की सिफारिश की और कहा—जावालि नास्तिक नहीं है। सचमुच उसने आपको लौटाने के लिये ये सारी बातें कहीं हैं।"

फिर वशिष्ठ जी ने कहा—"सुनिये पहले संसार जल में डूबा हुआ था। उस जल में पृथिवी बनी। तब देवताओं सहित ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने वाराह रूप धारण कर, पृथिवी का उद्धार किया और अपने पुत्रों सहित इस पृथिवी का उद्धार किया।" इसके अनन्तर वशिष्ठ जी ने ब्रह्मा से मरीचि की उत्पत्ति बतलाई और राम के सब

---

१ अनुव्रज जगतीभर्तुः क्रियतामुदकं पितुः।

२ एतत्ते राजशार्दूल विमलं तोयमक्षयम्।
पितृलोक-गतस्याद्य मद्दत्तमुपतिष्ठतु॥

श्लोक २७ स० १०३ अ० का०

१ निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्त-
द्यस्त्वामगृह्णाद्विषमस्थबुद्धिम्।
बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं
सुनास्तिकम् धर्मपथादपेतम्॥

श्लोक ३३ स० १०९ अ० का०।

पूर्वपुरुषों की नामावली सुनाकर अन्त में कहा—"दशरथ अज के पुत्र थे, आप दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र हो। अतः तुम राज्य करो। भरत विनती कर रहे हैं और मेरी भी यही सम्मति है। रामचन्द्र ने कहा—"मैं माता पिता की आज्ञा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता।"

इस पर भरत जी ने उनकी कुटी के द्वार पर अन्न जल छोड़ कर धरना दिया। तब रामने आदर पूर्वक भरत को उठाया और अपनी पादुका दे, उनसे लौट जाने को कहा और बोले—"प्रथम तो मैं अन्याय नहीं करता। दूसरे यह धर्म (धरना देना) ब्राह्मणों का है, क्षत्रियों का नहीं।" यह सुन भरत और लोगों की ओर देखने लगे।"तब सब ने कहा—"भरत भी ठीक कहते हैं और रामचन्द्र भी धर्म पर आरूढ़ हैं। हम लोग हठ नहीं कर सकते। सब लोगों की बात सुन भरत ने कहा—" अच्छा, तब हम भी वन में रहेंगे।" इस पर राम बोले—"नहीं, तुम अयोध्या में जाओ। हम चौदह वर्ष बीतने पर अयोध्या लौट आवेंगे और तुम्हारे साथ राज्य करेंगे। यह सुन उपस्थित ऋषियों ने भरत से कहा—" अब तुम राम का कहना मान लो। यही उत्तम है।" भरत राम की पादुका मुकुट के स्थान मस्तक पर रख और राम से चौदह वर्ष बीतने पर अयोध्या को लौट आने की प्रतिज्ञा करवा कर, चित्रकूट से अयोध्या लौट आये। सहस्रों आभूषण धारण करने पर भी जो शोभा नहीं हो सकती, वह उन पादुकाओं को मस्तक पर रखने से भरत की हुई। विदा होते समय भरत जी ने रामचन्द्र जी से कहा—"राज्य भार इन पादुकाओं को अर्पण कर, चौदह वर्ष तक आपके आने की प्रतीक्षा करूँगा। चौदह वर्ष बीतने पर यदि आप न आये, तो अग्नि में कूद कर मैं अपने शरीर को भस्म कर डालूँगा।"

जाते समय राम ने माताओं के चरणस्पर्श कर और उनका आशीर्वाद प्राप्त कर, शत्रुघ्न से कहा,—"भाई शत्रुघ्न! तुम मन लगा कर, माता कैकेयी की सेवा करना। तुमको मेरी और सीता की शपथ है। भाई भरत! तुम निश्चय जानो, मैं चौदह वर्ष बिता कर, अवश्य लौट आऊँगा।"

भरत जी पादुकाओं को मस्तक पर रख अयोध्या की ओर चले। राह में चित्रकूट के पास ही भरत को भरद्वाज जी मिले। उनसे बातचीत कर, यमुना एवं गङ्गा को पार कर और शृङ्गवेरपुर होते हुए, वे अयोध्या के समीप पहुँचे। वहाँ पहुँच कर भरतने कहा—"अयोध्या अब अयोध्या नहीं है, मैं इस सिंहहीन गुफा में पैर न रखूँगा।" अतएव नन्दीग्राम में नई राजधानी बनी। पर वह राजधानी नहीं—ऋषि का आश्रम था। मन्त्रिमण्डल, जटा वल्कलधारी, फल मूलाहारी राजा के सम्मुख, किस मुँह से बहुमूल्य वस्त्र धारण कर बैठते। उन सब ने भी कापाय वस्त्र धारण करने आरम्भ किये। उन कापायवस्त्रधारी मन्त्रियों से घिर कर, व्रत और उपवासों से कृशाङ्ग राजकुमार भरत ने बड़े भाई की पादुकाओं पर चमर डुला और छत्र लगा कर चौदह वर्ष तक राज्य का पालन किया।

रामायण में वैसे तो सभी चरित एक से एक बढ़ कर हैं, पर भरत का चरित नितान्त दोषशून्य और शक्ति उत्पन्न करने वाला है। इसी से गो० तुलसीदास जी ने भी भरत के चरित के सम्बन्ध में लिखा है:—

दोहा:—

भरत चरित करि नेम, तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीय-रामपद प्रेम, अवसि होय, भवरस-विरति॥

भरत के चले जाने पर चित्रकूट निवासी ऋषिगण रामचन्द्र की ओर देख देख कर कुछ बातें करने लगे। यह देख राम को सन्देह और डर उत्पन्न हुआ। उनसे न रहा गया और उन्होंने उनसे पूछा—" हमारे द्वारा आपकी कुछ हानि तो नहीं हुई?" इस प्रश्न के उत्तर में मुनियों ने कहा—"जब से आप आये हैं, तब से रावण का भाई खर नामक राक्षस जनस्थानवासी तापसों को दुःख दे रहा है। अतएव हम लोग निकटस्थ अश्व

नामक ऋषि के आश्रम में जाते हैं। यदि इच्छा हो तो आप भी वहीं चलिये।" राम उन सब को कुछ दूर तक पहुँचा कर लौट आये और चित्रकूट को अयोध्यावासियों का परिचित स्थान समझ, अत्रि के आश्रम में चले गये। राम ने सीता और भाई समेत मुनि को अपना अपना नाम लेकर प्रणाम किया। अत्रि मुनि ने उनको आशीर्वाद दिया। फिर प्रेममग्न हो, गद्गद् हो, और आँखों में आसू भरकर अत्रि ने कहा—

"भगवन् इतने दिनों लों निर्जन वन में रहने का फल आज मुझे प्राप्त हुआ है। आज मुझे मेरे सारे जप तप का पुरस्कार मिल गया।" इतना कह कर भी उनको सन्तोष न हुआ। उन्होंने रामचन्द्र की जो स्तुति की है, यद्यपि वह वाल्मीकीय रामायण में नहीं है; तथापि वह रोचक और प्रभावोत्पादक होने के कारण तुलसी कृत रामायण से नीचे उद्धृत की जाती है।

स्तुति

[१]

नमामि भक्तवत्सलं, कृपाल-शील-कोमलम्।
भजामि ते पदाम्बुजं, अकामिनां स्वधामदम्॥
निकाम-श्याम सुन्दरं, भवाम्बुनाथ-मन्दरम्।
प्रफुल्लकञ्जलोचनम्, मदादि-दोष-मोचनम्॥

[२]

प्रलम्ब-बाहु-विक्रमं, प्रभोऽप्रमेय-वैभवम्।
निषङ्ग चाप-सायकं, धरं त्रिलोक-नायकम्॥
दिनेश-वंश-मण्डनम्, महेश-चाप खण्डनम्।
मुनीन्द्र-सन्त-रञ्जनं, सुरारि-वृन्द-भञ्जनम्॥

[३]

मनोज-वैरि-वन्दितं, अजादि-देव-सेवितम्।
विशुद्ध-बोध-विग्रहं, समस्त दूषणा-पहम्॥
नमामि इन्दिरापतिं, सुखाकरं सतां गतिम्।
भजे सशक्ति सानुजं, शची-पति-प्रियानुजम्॥

[४]

त्वदंघ्रि मूल ये नरा, भजन्ति हीन-मत्सराः।
पतन्ति नो भवार्णवे, वितर्क-वीचि-सङ्कुले॥
विविक्त वासिनः सदा, भजन्ति मुक्तये मुदा।
निरस्य इन्द्रियादिकं, प्रयान्ति ते गतिं स्वकम्॥

[५]

त्वमेक मद्भुतं प्रभुं, निरीहमीश्वरं विभुम्।
जगद्गुरुं च शाश्वतं, तुरीयमेव केवलम्॥
भजामि भाव वल्लभं, कुयोगिनी सुदुर्लभम्।
स्वभक्त कल्पपादपं, समस्त सेव्य-मन्वहम्॥

[६]

अनूप-रूप-भूपतिं, नतोऽहमुर्विजापतिम् ।
प्रसीद मे नमामि ते, पदाब्ज-भक्ति देहि मे ॥
पठन्ति ये स्तवं इदं, नरादरेण ते पदम् ।
व्रजन्ति नात्र संशयः, त्वदीय भक्ति संयुताः ॥

आज अत्रि मुनि के आनन्द की सीमा नहीं है। वे मारे आनन्द के आश्रम में चारों ओर दौड़े दौड़े फिर रहे हैं। कभी दौड़ कर अर्घ्यपाद्य के लिये जल लाते हैं, कभी दरके फल तोड़ कर भगवान् के सामने ला रखते हैं। उसी समय अत्रि की धर्म-पत्नी अनसूया वहाँ पर आयी। ऋषि ने रामचन्द्र जी से कहा—"इस तपस्विनी ने दस वर्ष तक अनावृष्टि के दुर्दान्त काल में ऋषियों के भोजनार्थ फल फूल उत्पन्न किये और स्नान के लिये गङ्गा नदी को बहा कर, ऋषियों के तप सम्बन्धी विघ्नों को नष्ट किया था।"

ऋषि फिर कहने लगे—"हे राम! एक बार माण्डव्य नामक ऋषि ने इस अनुसूया की सखी को शाप दिया था कि तू दूसरे दिन प्रातःकाल विधवा हो जायगी। तब इसकी उस सहेली ने कहा—"यदि ऐसा है तो प्रातःकाल ही न होगा।" यह अनर्थ देख देवताओं ने अनुसूया से प्रार्थना की, तब इसने दस रात्रि की एक रात्रि कर देवताओं का कार्य्य साधा और अपनी सखी का वैधव्य भी छुड़ाया। सीता को उचित है कि उस तपस्विनी को जा कर प्रणाम करे।"

राम की प्रेरणा से सीता अनुसूया जी के पास गयी। उनके सिर के केश, पके कांस की तरह सफेद हो गये थे। सीता ने जब अनुसूया को जा कर प्रणाम किया तब सीता को उन्होंने आशीर्वाद दिया और उनका हाथ पकड़, वे उन्हें एकान्त में ले गयीं। अपने पास सीता जी को बिठा कर, उनसे बातें करने लगीं। इन दोनों आदर्श स्त्रियों की साधारण वार्तालाप भी इतर स्त्रियों के लिये अमूल्य उपदेश हैं। अनुसूया जी ने काँपते हुए शरीर से धीरे धीरे सीता से कहा —"राजपुत्रि! तू धन्य है जो तू अपने जाति वालों को तथा मान को छोड़ अपने पति के साथ वन में घूम रही है। नगर हो या ग्राम हो, शुभ स्थिति हो अथवा अशुभ, स्त्री के लिये अपने पति का अनुगमन ही कल्याणप्रद है। पति दुःशील हो, कामी हो अथवा धनहीन हो, आर्य स्त्रियों का वही देवता है। जो स्त्रियाँ अपने पति को सर्वस्व समझ उनका आदर करती हैं, वे मरने पर स्वर्ग में जाती हैं।" इसे सुन सीता ने वृद्धा अनुसूया की उक्ति को पुष्ट करने के लिये सावित्री और रोहिणी का दृष्टान्त दिया। जिसे सुन माता अनुसूया बहुत प्रसन्न हुई और स्नेहवश सीता का मस्तक सूँघकर बोलीं—"सीता! मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूँ। बतला मैं तेरे लिये क्या करूँ?" यह कह कर, अनुसूया ने सीता को आशीर्वाद दिया और दिव्यमाला, वस्त्र, आभरण, अङ्गराग और अनुलेपन दे, उनके स्वयम्वर का वृत्तान्त जानना चाहा।

जानकी अपने स्वयम्वर का सारा वृत्तान्त कह सुना कर चुप हो रहीं। अनुसूया जी इस वृत्तान्त को पहले सुन चुकी थीं—सो ज्यों का त्यों आज सीता के मुख से सुन बहुत प्रसन्न हुईं और सीता को आशीर्वाद दे अन्तिम उपदेश फिर यही दिया कि तुम सदा राम की अनुगामिनी बनी रहना। अनन्तर सीता वहाँ से विदा हो राम के पास गयीं और सारा वृत्तान्त कहा—जिसे सुन राम बहुत प्रसन्न हुए। तीनों जनों ने वह रात्रि अत्रि के आश्रम ही में बिताई। सवेरा होते ही राम ऋषि से विदा माँग आगे चले। चलने के पूर्व राम ने वनवासी तपस्वियों से वन का हाल पूँछा। इसके उत्तर में उन तपस्वियों ने उस वन में राक्षसों के अनेक उपद्रवों की कथा कही। साथ ही उन राक्षसों के उन उपद्रवों को रोकने का आग्रह करते हुए वे बोले—"महाराज! इस विकट वन का मार्ग यह है और इसके भीतर जाने के अर्थ आप ही समर्थ हैं।" राम वहाँ से चल दिये।

अरण्य काण्ड

दण्डकारण्य में प्रवेश करते ही श्रीराम ने ऋषियों के दुर्धर्ष आश्रमों को देखा। उन आश्रम-वासी तपोधन ऋषियों ने राम को आदर सहित टिकाया और भोजन आदि से उनका आतिथ्य किया, तदनन्तर उन ऋषियों ने उपद्रवी दुष्ट राक्षसों से अपनी रक्षा के लिये, राम से निवेदन किया। इन ऋषियों के आश्रम में रात बिता राम अगले दिन सबेरा होते ही आगे बढ़े। जैसे जैसे वे आगे जाते, वैसे ही वैसे उस वन की भयङ्करता बढ़ती जाती थी। उस वन की बेलें व वृक्ष सूख गये थे। सरोवरों में जल का नाम तक न था। उस वन में न तो पक्षियों का कलरव था और न भ्रमरों का मधुर गुञ्जार। केवल झींगुरों की झंकार सुनाई पड़ती थी। वन के वृक्षों में न डालियाँ थीं और न पत्ते। जिधर दृष्टि जाती उधर वृक्ष ठूठ डण्डे से पृथिवी पर दण्डायमान थे। अनुमान होता है इसीलिये उस वन का नाम "दण्डकारण्य" रख लिया गया था।[१]

राम बहुत दूर नहीं जा पाये थे कि एक विकराल राक्षस से उनकी भेंट हुई। उस राक्षस का नाम था विराध और उसके नेत्र मस्तक के भीतर घुसे जाते थे। ताड़ के वृक्ष से भी अधिक वह लम्बा था। उसकी थोंद थलथल करती थी और उसके सारे शरीर पर रक्त के छींटे पड़े हुए थे। उसके शरीर पर व्याघ्र चर्म लपेटा हुआ था और उसके एक हाथ में त्रिशूल था; वह त्रिशूल भी रीता न था, किन्तु उसमें, शेर सूकर, हाथी और व्याघ्र के कटे हुए मुण्ड छिदे हुए थे। ऐसी सजावट का जीव कैसा भयानक प्रतीत हो सकता है इसका अनुमान हमारे पाठक स्वयं कर लेंगे।

उस राक्षस की दृष्टि राम लक्ष्मण और सीता पर पड़ी। देखते ही वह काल की तरह उनकी ओर झपटा और चीत्कार करके उसने सीता को गोद में उठा लिया। फिर थोड़ी दूर जाकर उसने रामचन्द्र से पूँछा—"तुम दोनों जटाचीरधारी कौन हो और अपने साथ इस स्त्री को यहाँ क्यों लाये हो? तुम मुनियों का भेष धारण किये हो और हाथों में धनुषबाण लिये हो, इससे मुझे तुम लोगों के ऊपर सन्देह होता है। तुम तपस्वियों के चरित्र को कलङ्कित करने वाले कौन हो? मैं विराध हूँ और इस वन का राजा हूँ और यहीं रहता हूँ। ऋषियों को मार उनके माँस से अपना पेट भरना ही मेरा काम है। अभी मैं तुम दोनों पापियों का रक्त पीता हूँ।" विराध की बातें सुन सीता मारे डर के केले के वृक्ष की तरह थर थर काँपने लगी। सीता को विराध की गोद में गया देख, राम अपना पराक्रम तो भूल गये और

---

१ असल में दण्डक नामक राजा की यह राजधानी थी। राजा की नियत डिगने पर राजगुरु द्वारा उनको शाप मिला और शाप से वह हरा भरा प्रान्त वन के रूप में परिणत हो गया था। दण्डक राजा के नाम पर इस वन का नाम दण्डकारण्य पड़ा था।

कैकेयी द्वारा वनवास आदि की पुरानी कथा लक्ष्मण को सुना रोने लगे।[1] राम की यह दशा देख, लक्ष्मण क्रोध में भर और घिरे हुए सर्प की तरह फुफकार मार कर बोले—"नाथ! तुम अनाथों की तरह यह क्या कह रहे हो? मेरे उपस्थित रहते आपको चिन्ता ही किस बात की है। आप देखें अभी एक बाण से विराध को मार कर उसके रक्त से पृथिवी की तृषा दूर करता हूँ। राज्य न मिलने पर जो क्रोध मुझे भरत पर आया था, आज उस क्रोध को मैं इस विराध राक्षस पर निकालूँगा।" इतने में उच्च स्वर से विराध ने उनसे कहा—"मैंने जो प्रश्न किये उनका उत्तर तुम क्यों नहीं देते? तुम दोनों कौन हो और कहाँ जा रहे हो?" इस प्रश्न के उत्तर में राम ने अपना पूरा पूरा परिचय दिया और राक्षस से उसका वंश परिचय माँगा। तब विराध ने कहा—"मेरे पिता का नाम जव और माता का शतहदा है। मेरे भाई बन्धु मुझे विराध कहते हैं। मैं बड़ी कठोर तपस्या भी कर चुका हूँ। और ब्रह्मा जी मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे यह वर दे चुके हैं कि मैं किसी भी शस्त्र से न मर सकूँगा। अतः यदि तुम अपना कल्याण चाहो तो युद्ध का नाम तक न लेकर, चुपचाप पीछे लौट जाओ। इस स्त्री के पाने की आशा भी छोड़ दो। जाओ, आज मैं तुम्हारे प्राण लेना नहीं चाहता।" इसके उत्तर में राम ने उसे धिक्कारा और उसके सात तीर मारे। वे सातों तीर उसके शरीर में प्रविष्ट हो और रक्त से सन कर पृथिवी पर जा गिरे। तब उसने सीता को तो गोद से उतार, भूमि पर बिठा दिया और स्वयं त्रिशूल उठा, राम लक्ष्मण पर झपटा। उसे अपनी ओर आते देख—दोनों भाइयों ने उस पर तीरों की वर्षा की। तब उस विकराल राक्षस ने हँस कर जमुहाई ली। इसका फल यह हुआ कि उसके शरीर में विधे हुए सब बाण, शरीर से निकल भूमि पर गिर पड़े।

यह देख राम बहुत क्रुद्ध हुए। और दो बाणों से उन्होंने उस राक्षस का वह त्रिशूल काट डाला। अनन्तर दोनों भाइयों ने खड्ग हाथ में ले उस पर आक्रमण किया। खड्ग की मार से वह राक्षस अधमरा तो हो गया किन्तु तिस पर भी वह दोनों को अपने कन्धे पर रख जङ्गल की ओर चल दिया। यह देख सीता जी घबड़ायीं और विलाप करने लगीं। इतने में राम और लक्ष्मण ने उस दुष्ट की दोनों भुजाएँ काट डालीं। इससे वह मूर्च्छित हो पृथिवी पर गिर पड़ा। राम तो उसकी गरदन पैर से दबा कर खड़े रहे और लक्ष्मण से कहा कि गढ़ा खोद कर इसे गाड़ दो।

तब परवश हो वह राक्षस बोला—"हे राम! अब मैंने आपको और आपके भाई को पहचाना। मैं पहले तुम्बुरु नाम गन्धर्व था। कुबेर के शाप से मैं राक्षस हुआ। यह शाप मुझे इस कारण दिया गया था कि समय पर मैं उनके पास नहीं पहुँच पाया था। शाप के समय मुझसे वैश्रवण ने यह भी कह रखा था कि दशरथनन्दन राम तुम्हारा उद्धार करेंगे। अतः आज आपके हाथ से छुटकारा पाकर मैं फिर गन्धर्व लोक को जाता हूँ।

यह कह वह तो गन्धर्वलोक को प्रयाण कर गया और दोनों भाइयों ने उसके उस विकराल शरीर को काट कूट कर एक गढ़े में भर दिया और उस गढ़े को मिट्टी से बन्द कर दिया। फिर सीता को साथ ले दोनों भाई आगे बढ़े। मरने के पूर्व विराध ने राम से यह भी कहा था कि यहाँ से डेढ़ कोस के अन्तर पर शरभङ्ग ऋषि का आश्रम है। आप वहाँ जाइये। वे आपका कल्याण करेंगे।

तदनुसार राम शरभङ्ग के आश्रम पर गये। उसी समय शरभङ्ग को बुलाने के लिये इन्द्र आये थे, पर राम के पहुँच जाने पर वे रुक गये। तीनों ने मुनि को प्रणाम किया। उन्होंने राम को अपना पुण्य दे और सुतीक्ष्ण का आश्रम बता, योगाग्नि में प्रवेश कर अपना शरीर भस्म कर डाला

---

1 इति युवतिकाकुलश्चे वाष्पशोक परिलुतः।

शरभङ्ग परलोक यात्रा के समय बार बार यह कहते थे :—

दोहा

सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु श्याम।
मम हिय बसहु निरन्तर, सगुण रूप श्रीराम॥

शरभङ्ग की महायात्रा का संवाद सुन दण्डकारण्यवासी मुनि गण, श्रीरामचन्द्र के निकट उपस्थित हुए और उनका अभिनन्दन[1] करते हुए कहा—"हे राम! जो राजा अपनी प्रजा से उसकी आय का छठवाँ भाग तो ले लेता है, पर प्रजावर्ग की पुत्रवत् रक्षा नहीं करता, वह राजा अधर्मी कहलाता है, किन्तु जो राजा प्रजा की रक्षा करता है, वह दीर्घायु होता है और अन्त में उसकी सद्गति होती है। ऋषि गण जो तप आदि अनुष्ठान करते हैं, उसका चतुर्थांश उस राजा को मिलता है, जिसके राज्य में वे रहते हैं। पर दुःख की बात है कि आपके राज्य में बसने वाले, वाणप्रस्थ और ऋषि, आप जैसे रक्षक के रहते हुए भी, अनाथवत् राक्षसों द्वारा मारे और सताये जाते हैं। हम अपने इन वचनों की पुष्टि के लिये आपको हड्डियों का वह पर्वत दिखलाते हैं जो उन ऋषियों की अस्थियों का है, जिन्हें राक्षसों ने मार कर खा डाला है। हम अब राक्षसों के अत्याचार नहीं सह सकते। अतः हे प्रजापालक राम! आप हम लोगों की रक्षा कीजिये।[2]

इसके उत्तर में राम ने जो कहा उसका सार यह है:—

दोहा

निशिचर-हीन करौं मही, भुज उठाय प्रण कीन।
सकल मुनिन के आश्रमन, जाय जाय सुख दीन॥

शरभङ्ग के आश्रम को छोड़ श्रीरामचन्द्र, सीता तथा लक्ष्मण सहित सुतीक्ष्ण के आश्रम में पहुँचे। वहाँ सुतीक्ष्ण की एक रात पहुनाई ले, वे अगस्त्य जी के आश्रम की ओर चल दिये।

मार्ग में निराला पाकर सीता ने राम से कहा—"हे धर्मात्मा! निश्चय ही आप धर्मवेत्ता हैं। पर सूक्ष्म रूप से विचार कर देखने से आप धर्म रूप में अधर्म सम्पादन कर रहे हैं। जिसमें आडम्बर है वह धर्म्म नहीं। धर्म्म के प्रधान अङ्ग तीन हैं। प्रथम सत्य बोलना, द्वितीय परस्त्रीगमन न करना और तृतीय निरपराध को हत्या न करना। इन तीन अङ्गों में धर्म्म के दो अङ्गों का पालन तो आप अवश्य कर रहे हैं। किन्तु तृतीय अङ्ग का पालन आप नहीं करते। अतः मेरा चित्त बड़ा व्याकुल है। अच्छा होता, यदि आप इस वन में न आते। आप क्षत्रिय हैं और दोनों के पास अस्त्र शस्त्र हैं। जैसे ईंधन के पास अग्नि का रहना अग्नि का बल बढ़ाना है, वैसे ही क्षत्रिय के पास अस्त्र शस्त्र के रहने से वह प्रबल होता है। पूर्वकाल में एक ऋषि तप करते थे। उनका तप नष्ट करने के अभिप्राय से इन्द्र योद्धा का रूप धारण कर और हाथ में खड्ग लेकर, मुनि के समीप गये और वह खड्ग उनको सौंपकर चले गये। उस शस्त्र को पाकर मुनि हिंसा करने लगे। परिणाम यह हुआ कि वे नरक में गिर गये। अतएव हिंसा करने के उद्देश से आप दण्डक वन में प्रवेश न करें। मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप निरपराधियों का वध न करें। वन में भ्रमण करने वाले क्षत्रियों का धनुष निरपराधियों की हिंसा के लिये नहीं है। किन्तु वनवासियों की रक्षा के लिये है। आप अपने अस्त्र शस्त्रों से मेरी और लक्ष्मण की रक्षा कीजिये। क्या वनवासियों को अस्त्र शस्त्र बाँधना शोभा देता है? तपस्वियों में क्षात्रभाव का होना क्या अच्छी बात है? कहाँ शस्त्र? कहाँ वन? कहाँ क्षात्रिय धर्म्म? कहाँ तप? ये बातें परस्पर विरुद्ध हैं। अतः यहाँ आपको तपस्वियों ही का धर्म्म वर्तना चाहिये। बराबर शस्त्र चलाने से बुद्धि कादर और

---

१ सचमुच यह ऋषियों ने राम को अभिनन्दन पत्र देकर अपने कष्टों को दूर करने का अनुरोध किया था।

२ देखो ६ वें सर्ग के ८ से २० तक श्लोक अरण्यकाण्ड के अन्तर्गत।

मलीन हो जाती है। शस्त्र ही यदि बाँधना है तो लौटकर अयोध्या में बाँधना। माता ने आपको मुनिवेष से रहने की आज्ञा दी थी। जिस धर्म के पालन की आपको आज्ञा मिली है आप उसीका पालन कीजिये। क्योंकि धर्म ही से अर्थ मिलता है और धर्म्म ही से सुख प्राप्त होता है। इस संसार में धर्म ही सब वस्तुओं का सार है। अतः आप भी धर्म ही का अनुसरण कीजिये। आप तो धर्म की सूक्ष्मगति को भली भाँति जानते हैं। मैं आपको क्या शिक्षा दे सकती हूँ। स्त्रियों के स्वाभाविक चपल स्वभाव के वशवर्त्ती हो मैंने इतना कहा है। अब आप अपने छोटे भाई लक्ष्मण से परामर्श ले, जो उचित जान पड़े, उसके अनुसार शीघ्र काम कीजिये।"

धर्म से डरी हुई सीता की बातें सुन रामचन्द्र जी मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—"सीते! तुम्हारा यह कहना बहुत ठीक है कि क्षत्रियों का धनुष निरपराधियों के वध के लिये नहीं है, किन्तु आर्तों के परित्राण के अर्थ है। क्षत्रियों के कान तक आर्तों का आर्तनाद पहुँचते ही उनसे नहीं रहा जाता। क्या तुमने नहीं देखा कि इस वन में बसने वाले तपस्वी राक्षसों के उपद्रवों से कितने दुःखी हो रहे हैं। अनेक ऋषियों को राक्षसों ने खाडाला है। ऋषियों का दुःख मुझसे नहीं देखा जाता। अतः मैंने राक्षसों के नाश की प्रतिज्ञा की है। हमारा जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ है। क्षत्रिय अपने प्रण को कभी नहीं भङ्ग करते। तुम सी हितैषिणी प्राणाधिक पत्नी और लक्ष्मण जैसे अनुगत अनुज भले ही छूट जाँय, पर प्राण रहते प्रण नहीं छूट सकता। धर्मरक्षा और विशेष कर ब्राह्मण-रक्षा के लिये, मैं निज प्राणों तक को उत्सर्ग करना भला समझता हूँ। वे लोग धन्य हैं जो धर्मरक्षार्थ प्राण उत्सर्ग करते हैं। तुमने जो कुछ कहा है सो मेरे अच्छे ही के लिये। मैं तुम्हारी बातों को सुन तुम पर अप्रसन्न नहीं हूँ। मैं तुम्हारी चतुराई भरी बातों की सराहना किये बिना नहीं रह सकता।

तीनों जन इसी प्रकार वार्तालाप करते करते सन्ध्या के समय एक सरोवर पर पहुँचे, जो योजन भर विस्तीर्ण था। उस सरोवर में झुण्ड के झुण्ड हाथी स्नान कर रहे थे। खिले हुए कमल के फूलों से उस सरोवर की बड़ी सुन्दर शोभा हो रही थी। जल भी उसका बड़ा निर्मल था। किन्तु उस सरोवर में से गीत और वाद्य का शब्द सुनाई पड़ता था। उसके पास ही धर्मभृत नामक एक ऋषि रहते थे। राम ने उनसे उस सरोवर का वृत्तान्त पूँछा। उत्तर में ऋषि ने कहा—"यह सरोवर पञ्चाप्सर के नाम से प्रसिद्ध है। इसको मांण्डकर्णि नामक ऋषि ने बनाया था। उनकी तपस्या नष्ट करने के लिये देवताओं ने पाँच अप्सराओं को भेजा था। देवताओं का चलाया चक्र चल गया। उन मुनि ने उन पाँचों को रख लिया और उनके साथ वे इसी सरोवर के भीतर घर बना कर रहते हैं। उन्हींके गाने बजाने और गहनों का यह शब्द है।

यह सुन श्रीराम वहाँ के मुनियों के आश्रम में रहने लगे। इस प्रकार दस वर्ष बीत गये। तदनन्तर फिर लौट कर सुतीक्ष्ण के आश्रम में गये और वहाँ कुछ दिनों रह कर, सुतीक्ष्ण के बतलाये अगस्त्य के आश्रम की ओर गये। पहले उनको अगस्त्य के भाई का आश्रम मिला।

तब राम ने लक्ष्मण से कहा कि सुतीक्ष्ण के बतलाये हुए चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अतएव जान पड़ता है कि भगवान् अगस्त्य के भाई का स्थान यही है।

यह सुन वे तीनों आगे बढ़े। फिर अन्य मुनियों के आश्रमों की शोभा देखते हुए, वे अगस्त्य जी के आश्रम में पहुँचे। उस स्थान में अगस्त्य जी का आश्रम बहुत विख्यात था; क्योंकि उन्होंने बड़े दुखदाई दो दुष्ट राक्षसों को मार कर, उस वन को ऋषि मुनियों के आवास के योग्य बना दिया था।

बात यह थी कि उस वन में इल्वल और वातापि नामक दो दुष्ट राक्षस रहते थे। दोनों भाई थे। इल्वल ब्राह्मण का रूप धारण कर,

संस्कृत बोलता हुआ[1], ब्राह्मणों को श्राद्ध के बहाने निमंत्रण देता था और अपने भाई वातापि को जो भण्डारी बनता था, मार कर उन लोगों को खिला देता था। तदनन्तर वह यह कह कर बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगता था—"भाई निकल आओ।" यह सुनते ही वह बकरे की तरह बोलता हुआ, ब्राह्मण का पेट फाड़ कर, निकल आता था। इसी प्रकार उन दुष्टों ने, हज़ारों ब्राह्मणों को मार डाला। तब सब ब्राह्मणों ने भगवान् अगस्त्य से प्रार्थना की। उनको भी उसने निमंत्रण दे उसी प्रकार अपने भाई को जो बकरा बन गया था, मार कर खिलाया और फिर पहले की तरह उसे बुलाने लगा। पर भगवान् अगस्त्य ने अपने प्रभाव से पहले ही उसे पचा डाला। जब इल्वल को यह बात जान पड़ी; तब उसने अगस्त्य जी पर आक्रमण करना चाहा, तब अगस्त्य जी ने क्रुद्ध हो उसे भस्म कर डाला। अतएव इन्हीं अगस्त्य के प्रभाव से राक्षसों ने इस दिशा में विघ्न करना छोड़ दिया और उन्हीं की आज्ञा का पालन करता हुआ विन्ध्याचल, जो सूर्य्य का मार्ग रोकता था, अब तक नहीं बढ़ा। यह कह राम ने लक्ष्मण से कहा—अगस्त्य मुनि का यही आश्रम है, और अब तुम जाकर मुनि को मेरे आने की सूचना[2] दो।

लक्ष्मण आगे आगे गये और अगस्त्य के एक शिष्य से राम के आगमन का वृत्तान्त कहा। उसने जाकर मुनि प्रवर से निवेदन किया। मुनि ने तीनों को भीतर बुला लिया और उनका बड़ा आगतस्वागत किया। कन्द-मूल-फल उनको भोजन के लिये दिये। इस प्रकार जब तीनों को अगस्त्य जी के आश्रम में रहते कई दिन हो गये, तब एक दिन राम जी ने उनसे कहा—"आप तो इस वन का रत्ती रत्ती हाल जानते हैं, कृपा कर कोई ऐसा स्थान बतलाइये जहाँ रह कर हम लोग सुख पूर्वक अवधि के शेष दिन पूरे कर सकें" इसके उत्तर में अगस्त्य जी ने सब ऋतुओं में समान रूप से सुख देने वाली पञ्चवटी का पता बतलाया।

जब रामचन्द्र अपने भाई और पत्नी सहित, अगस्त्य मुनि से विदा माँग वहाँ से चलने लगे, तब मुनि ने उनको विश्वकर्मा के बनाये हुए धनुष, जिससे विष्णु ने असुरों को मारा था दिया, इसके अतिरिक्त उन्होंने राम को ब्रह्मा के दिये हुए अमोघ बाण और इन्द्र के दिये हुए अक्षय्य बाण वाले तरकस और खड्ग भी दिये।

राम, मुनि से विदा होकर पञ्चवटी की ओर चले। मार्ग में जटायु से भेंट हुई। राम द्वारा परिचय पूँछे जाने पर जटायु बोला—"मैं तुम्हारे पिता का सखा जटायु नामक गृद्ध हूँ। पूर्व काल में कर्दम से लेकर कश्यप तक सत्रह प्रजापति हो गये हैं। इनमें से एक दक्ष भी हो गये हैं, जिनके साठ कन्याएँ थीं। उन साठ में से दक्ष ने दिति, अदिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवसा, मनु और अनला नाम्नी कन्याएँ कश्यप को दीं। कश्यप ने उनसे पुत्र उत्पन्न करने को कहा। तब अदिति, दिति, दनु, कालका ने तो उनका कहना माना, किन्तु शेष चार ने न माना अदिति से ३३ देवता अर्थात् ११ रुद्र, ८ वसु और अश्विनीकुमार; दिति से दैत्य; दनु से अश्वग्रीव और कालका से नरक तथा काल नाम के दो लड़के उत्पन्न हुए। ताम्रा ने क्रौंची, भासी, सेना, धृतराष्ट्री और शुकी नाम की पाँच कन्याओं

---

[1] "धारयन् ब्राह्मणं रूपमिल्वलः संस्कृतं वदन्।"

श्लोक० ५६ स० ११ अर० का०।

इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय के ब्राह्मणों की मातृभाषा संस्कृत थी और वे संस्कृत ही में परस्पर बातें किया करते थे।

[2] "आगतोऽस्म्याश्रमपदं सौमित्रे प्रविशाग्रतः।
निवेदयेह मां प्राप्तमृषये सह सीतया।"

श्लो० १९ स० ११ अर० का०

इसके पूर्व राम ने कभी किसी मुनि को अपने आने की सूचना (इत्तिला) नहीं करवाई थी, पर अब अगस्त्य जी को अपने आगमन की सूचना दिलाई।

को उत्पन्न किया। इनमें से क्रौंची ने उलूकों को, भासी ने भास नामक पक्षी को, श्येनी ने बाजों और गृद्धों को, धृतराष्ट्री ने हंस, राजहंस और चकवों को तथा शुकी ने नता नाम की कन्या को उत्पन्न किया, जिसकी पुत्री विनता थी। क्रोधवशा ने मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमदा, मातङ्गी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि, सुरसा और कद्रुका नाम की दस कन्याओं को उत्पन्न किया। उनमें से मृगी से मृग; मृगमन्दा से भालू, समर और चमर नामक मृग; भद्रमता से इरावती नाम की कन्या हुई। उसीका पुत्र ऐरावत नाम का (इन्द्र का) हाथी है। हरी से सिंह, वानर और गोलाङ्गूल नामक वानर, शर्दूली से व्याघ्र, मातङ्गी से हाथी तथा श्वेता से दिग्गज नामक पुत्र और सुरभी से रोहिणी और गन्धर्वी नाम की दो कन्याएँ हुईं। उनमें से रोहिणी के गाय और गन्धर्वी के घोड़ी पैदा हुई। सुरसा से नाग और कद्रू से पन्नग हुए।

मनु से मनुष्य उत्पन्न हुए जिनमें से मुख से ब्राह्मण, छाती[1] से क्षत्रिय, जांघों से वैश्य और पैर से शूद्र उत्पन्न हुए। अनला ने वृक्षों को उत्पन्न किया। शुकी की पोती विनता के दो पुत्र हुए— "एक गरुड़ और दूसरा अरुण। अरुण के दो पुत्र हुए संपाति और मैं। मेरी उत्पत्ति श्येनी से है। हे राघव! इस वन में मैं आपकी सहायता करूँगा।" यह सुन कर उसको आदर सहित प्रणाम कर पञ्चवटी की ओर चले और वहाँ कुटी बना रहने लगे।

पञ्चवटी से कुछ ही दूर हट कर जनस्थान की चौकी थी, जिसमें राक्षस रहते थे। उस चौकी में बसने वाले राक्षसों के तीन प्रधान थे। उनका नाम था, खर, दूषण और त्रिशिरा। इसी स्थान पर रावण की बहिन शूर्पणखा भी रहती थी। एक दिन रामचन्द्र अपने भाई और पत्नी सहित गोदावरी में स्नान कर लौटे हुए कुटी को जा रहे थे। शूर्पणखा ने उन तीनों को देखा। रामचन्द्र जी को देख वह उन पर मोहित हो गयी। वह उनकी कुटी में गयी और उनसे कहने लगी तुम तपस्वियों का रूप धारण किये और धनुषबाण हाथ में लिये हुए कौन हो? तुम राक्षसों से सेवित इस वन में क्यों आये हो?" उत्तर देते हुए राम ने कहा—"हम दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र हैं। हमारा नाम राम है। यह हमारा छोटा भाई लक्ष्मण है और यह विदेह नन्दिनी हमारी पत्नी हैं। इनका नाम सीता है। माता पिता के आज्ञानुसार हम यहाँ आये हैं। अब तुम भी अपना नाम वा वृत्तान्त बतलाओ। तुम किस की स्त्री हो।

यह सुन शूर्पणखा ने कहा—"हम कामरूपा राक्षसी हैं और हमारा नाम शूर्पणखा है। सब को डराने के लिये हम इस वन में घूमा करती हैं। रावण कुम्भकर्ण और विभीषण हमारे तीन भाई हैं। इनके अतिरिक्त खर और दूषण दो भाई और हैं। ये सब बड़े बली हैं। हमारे शरीर में भी बड़ा बल है। हम आपके साथ व्याह करना चाहती हैं। अतः आप हमारे प्रस्ताव को स्वीकृत कीजिये। रही तुम्हारी यह कुरूपा स्त्री सीता। इसकी आप तिल भर भी चिन्ता न करें। मैं लक्ष्मण सहित इसे अभी खाये जाती हूँ।"

कामपाश में फँसी शूर्पणखा की इन बातों को सुन रामचन्द्र ने मधुर और बनावटी बातें बनाकर कहा[1]—"हे सुन्दरि! मेरा विवाह तो हो चुका है, तुम स्वयं देख रही हो कि यह सीता है ही। साथ ही तुम स्वयं समझ सकती हो कि तुम जैसी सुन्दरी सौतिया डाह कभी सह नहीं सकोगी।

---

1 उरसः क्षत्रियास्तथा। श्लो० ३० स-१४ अर० का० वेद में क्षत्रियों की उत्पत्ति बाहुद्वय से लिखी है, पर यहाँ छाती से बतलाई गई है।

1 तांतु शूर्पणखां रामः कामपाशावपाशिताम्
स्वेच्छया श्लक्ष्णया वाचा स्मितपूर्वमथाब्रवीत ॥
स्वेच्छया का अर्थ है, मनमानी।
'अरण्य का० श्लो० 1 स० 18

हाँ मेरे छोटे भाई लक्ष्मण बड़े शूर और सुन्दर हैं। इनका अभी विवाह भी नहीं हुआ[1] और इन्हें स्त्री की आवश्यकता भी है। अतः मेरी समझ में यदि तुम इनके साथ विवाह कर लो तो तुम बहुत प्रसन्न रहोगी। तब शूर्पणखा लक्ष्मण के पास गयी और उनसे अपनी इच्छा प्रकट की। तब लक्ष्मण ने कहा—"मैं तो दास हूँ, तुम दासी होकर क्या करोगी? उन्हींके पास जाओ।" इस प्रकार अपना अनादर होते देख वह राक्षसी क्रुद्ध हो सीता को खाने के लिये दौड़ी। तब उसे रोक राम ने लक्ष्मण को आज्ञा दी कि इसके नाक-कान काट लो। लक्ष्मण ने वैसा ही किया।

नाक कान कटा वह राक्षसी अपने भाई खर-दूषण के पास गयी। उसने रो रो कर सारा वृत्तान्त कहा। तब क्रुद्ध हो खर ने चौदह राक्षसों को भेज कर राम पर चढ़ाई करवाई पर राम ने उन सब को अकेले ही मार गिराया। तब वह राक्षसी फिर खर के पास गयी और उन राक्षसों के मारे जाने का संवाद सुनाया। तब खर ने अपने सेनापति दूषण को चौदह सहस्र सेना और अपना रथ तैयार करने की आज्ञा दी। जब सेना तैयार हो गयी तब युद्धयात्रा की आज्ञा दी गयी, मार्ग में अनेक अपशकुन हुए। उधर ऋषि, देव, गन्धर्व, सिद्ध और चारण राम और खर का युद्ध देखने को उपस्थित हुए। खर सेना के आगे चला और श्येनगामी, पृथुश्याम, यज्ञशत्रु, विहङ्गम, दुर्जय, परवीराक्ष, पुरुष, कालकार्मुक, मेघमाली, महामाली, वरास्य और रुधिराशन नामक बारह वीर खर के शरीर रक्षक बन कर और उसे घेर कर उसके साथ गये। महाकपाल स्थूलाक्ष, प्रमाथी और त्रिशिरा सेना के साथ दूषण के पीछे चले।

श्लो० २ सं० १८ अर०

उनको आते देख राम ने लक्ष्मण से कहा—"सीता को लेकर कन्दरा में चले जाओ। विलम्ब मत करो।" लक्ष्मण ने वैसा ही किया। इधर परस्पर युद्ध छिड़ा। अपनी सेना को नष्ट हुई देख, दूषण राम से लड़ने गया। राम ने उसका धनुष ही काट दिया। तब वह एक बड़ी भारी परिघ लेकर दौड़ा। रामचन्द्र ने उसे भी मार कर गिरा दिया। धीरे धीरे उसके सब साथी भी मारे गये। फिर त्रिशिरा ने सामना किया। राम ने तीन बाणों से उसके तीनों सिर काट गिराये। खर सब को मरा देख स्वयं लड़ने को आया। पर राम ने उसे भी मार डाला। तब तो देवगण राम की प्रशंसा करते हुए स्वर्ग को चले गये। तदनन्तर बड़े बड़े राजर्षि तथा महर्षि लोग अगस्त्य मुनि के साथ आकर राम की स्तुति करते हुए बोले कि इसी अभिप्राय से इन्द्र शरभङ्ग के आश्रम में आये थे। राम ने दुष्ट राक्षसों को मार कर बड़ा ही उपकार किया। इतने में सीता को लेकर लक्ष्मण भी वहीं आगये। राम को विजयी देख कर सीता प्रसन्न हुई। ऋषि लोग अपने अपने स्थान को गये।

इसके अनन्तर अकम्पन नामक राक्षस ने लङ्का में जाकर खर के विनाश और रामचन्द्र के प्रभाव का वृत्तान्त रावण को कह सुनाया।[1] उसने रावण से यह भी कहा कि प्रत्यक्ष में राम को तुम क्या सब देवता मिलकर भी रण में नहीं मार सकते। तब हाँ एक उपाय उसके मारने का यह है कि तुम किसी छल से राम की अनुपस्थिति में जानकी को हर लाओ; तो वह अपनी स्त्री के विरह में स्वयं मर जायगा।" अकम्पन की बतलाई इस युक्ति पर कुछ समय तक रावण

---

१ श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्
पूर्वो भार्यया चार्थी तरुणः प्रियदर्शनः।

कोई कोई शङ्का करते हैं कि राम लक्ष्मण को अकृतदार बतला कर असत्य बोले। पर उन्हें समझना चाहिये कि शूर्पणखा जब झूठा बनावटी रूपधर कर आयी थी, तब उसके साथ ऐसा ही बर्ताव करना उचित था।

१ तुलसीदास जी ने खर दूषण के नाश का संवाद लेकर शूर्पणखा को रावण के समीप भेजा है। उसीने सीता को हरने की उत्तेजना अपने भाई को दी।

शूर्पनखा की नाक काटी जाती है

ने विचार किया। फिर अपना विचार पूरा कर वह रथ में बैठ, मारीच नामक राक्षस के आश्रम में गया। मारीच ने रावण का यथोचित सत्कार कर आगमन का कारण पूँछा। रावण के आगमन का कारण जान मारीच ने उसे बहुत कुछ ऊँचनीच समझाया। समझाने का फल भी हुआ और रावण लङ्का को लौट गया।

फिर सब अनर्थों की जड़ शूर्पणखा लङ्का में पहुँची और रो रो कर खर, दूषण तथा त्रिशिरा के मारे जाने का वृत्तान्त कहा। उसने रावण को उत्तेजित करने के अर्थ जो बातें कहीं उन्हें हम तुलसी दास जी के शब्दों में नीचे उद्धृत करते हैं। वाल्मीकि की शूर्पणखा की बातें और तुलसी दास जी की शूर्पणखा की बातों में कुछ ही अन्तर है।

चौपाई

बोली वचन क्रोध करि भारी।
देस कोस की सुरति बिसारी॥
करसि पान सोवसि दिनु राती।
सुधि नहिं तव शिर पर आराती॥
राजु नीति बिनु धन बिनु धर्म्मा।
हरिहि समर्पे बिनु सत-कर्म्मा॥
विद्या बिनु विवेक उपजाए।
स्रम फल पढ़े किये अरु पाए॥
सङ्ग ते जती कुमंत्र तें राजा।
मान तें ज्ञान पान तें लाजा॥
प्रीति प्रनय बिनु मद तें गुनी।
नासहिं बेगि नीति असि सुनी॥

सोरठा

रिपु अज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोटकरि।
अस कहि विविध बिलाप, करि लागी रोदन करन॥

दोहा

सभा माँझि परि व्याकुल, बहु प्रकार कहि रोइ।
तोहि जियत दसकन्धर, मोरि कि अस गति होय॥

बहिन की नासिका और उसके कानों का कटना एवं राक्षसों का नाश सुन कर, रावण ने अपना ऐसा अपमान समझा, मानो रामचन्द्र ने उसके दसों मस्तकों पर पैर रख दिया हो। साथ ही शूर्पणखा द्वारा सीता की सुन्दरता का वृत्तान्त फिर सुन कर, अपने पूर्व दुष्ट विचार को पुनः काम में लाने के लिये वह उद्यत हुआ। वह फिर रथ पर अकेला चढ़ कर मारीच के पास गया, रास्ते में उसने अनेक देश और वन देखे। उसने समुद्र नामक वट का एक वृक्ष भी देखा जो मुनियों से सेवित और गरुड़ के चिन्ह से चिन्हित था। एक बार गरुड़ जी इसी वृक्ष की एक डाली पर आकर बैठे। क्योंकि उनको एक हाथी और कछुवे को खाना था। परन्तु दुर्भाग्य वश इसी डाली में वैखानस, भाष, वालखिल्य, मारीच अज तथा धूम्र नामक बड़े बड़े तपस्वी ऋषि तप कर रहे थे। एक तो गरुड़ जी स्वयं भारी थे तिस पर उनकी चोंच और पञ्जों में हाथी और कछुवा दबा था। अतः उनके उस डाली पर बैठते ही डाली चरमरा कर टूटी, पर उन्होंने उसे पृथिवी पर गिरने न दिया। गरुड़ जी ने उन जन्तुओं को खाकर उस डाली से निषाधों के देश को नाश कर दिया। मुनिओं की रक्षा कर गरुड़ बड़े प्रसन्न हुये थे और लोहे की साङ्कलों को तोड़ तथा रत्नों के घरों को फोड़, इन्द्र के भवन में यत्न पूर्वक सुरक्षित अमृत को ले आये थे। उसी वट वृक्ष को देखता रावण मारीच के आश्रम में पहुँचा और उससे अपने फिर आने का कारण कहा।

तब मारीच ने कहा—"हे रावण, एक बार मैं दण्डक वन के तपस्वियों को सता रहा था। उस

समय विश्वामित्र ने, मेरे डर के मारे, अपनी रक्षा के लिये दशरथ से राम को माँगा। दशरथ ने भी राम लक्ष्मण को दे दिया। उनको लेकर विश्वामित्र अपने आश्रम में लौट आये और यज्ञ की दीक्षा ली। रामचन्द्र यज्ञ की रक्षा के लिये उपस्थित थे। मैं राम को बालक समझ और उनकी उपेक्षा कर, विश्वामित्र की वेदी की ओर दौड़ा। उस समय राम ने एक बाण मेरे ऊपर चलाया, जिसके वेग से मैं सौ योजन पर समुद्र में आ कर गिरा। कुछ काल बाद जब मुझे चेत हुआ तब मैं लङ्का में चला गया। इस प्रकार मैं तो बच गया पर मेरे साथी राक्षस मारे गये। फिर भी मैं दो और राक्षसों को लेकर तथा मृग रूप धारण कर, मुनियों को सताने लगा। हम तीनों एक दिन घूमते फिरते रामचन्द्र के आश्रम में पहुँचे और पिछले वैर को स्मरण कर उन्हें मारने को दौड़े। उन्होंने तीन बाण चलाये। तब मैं तो डर कर वहाँ से भागा, पर मेरे दोनों साथी मारे गये। सो तुम उन राम से वैर मत करो और लङ्का को लौट जाओ।"

रावण को मारीच के ये लाभदायक उपदेश, बुरे जान पड़े और अन्त में उसने क्रुद्ध हो मारीच को खरी खोटी बातें भी कहीं। तब हार कर मारीच ने उससे कहा—"हे राक्षसराज! मुँह देखी कहने वाले लोग तो बहुत मिलते हैं, पर सुनने में कड़ुए और यथार्थ हितकर वचनों के कहने और सुनने वाले बहुत थोड़े होते हैं। मैं फिर भी तुमसे कहता हूँ कि तुम सीता के चुराने का विचार छोड़, घर लौट जाओ। तुम्हारी भलाई इसीमें है। राम को साधारण मनुष्य न समझना। जिस राम ने अकेले तुम्हारे चौदह सहस्र राक्षसों को मार डाला वह साधारण मनुष्य नहीं है। अपने से अधिक बली के साथ विरोध करना नीति-विरुद्ध काम है। सब के अन्त में मारीच ने यह भी कहाः—

दोहा

रावण के सुनत ही, रहत न मो तन प्रान।
तिन रघुनन्दन सों न छल, करहु वचन मम मान॥

यह सुन रावण क्रुद्ध हो मारीच से कहा—"रे मारीच! मैं तुझसे परामर्श लेने नहीं आया। मैंने भली प्रकार सोच विचार कर इस काम में हाथ डाला है। मैं तुझे अपना गुरु बना कर, उपदेश लेने नहीं आया। स्पष्ट शब्दों में कहा कि तू मेरी सहायता करेगा कि नहीं? यदि तूने मेरे कथनानुसार काम न किया, तो स्मरण रख, मैं अभी तुझे यहीं मार डालूँगा।"

रावण की अन्तिम धमकी का आशानुरूप फल हुआ। मारीच ने सोचा—यदि मैं इस दुष्ट का कहना न मानूँगा तो यह मुझे अभी मार डालेगा और यदि इसका कहना मानता हूँ तो इस बार राम के हाथ से जीता जागता न लौटूँगा। जब मरना है ही, तब इस पापी के हाथ से न मर कर, राम ही के हाथ से मारा जाना अच्छा है। यह विचार मारीच ने रावण का कहना मान लिया और सीता को छलने के लिये, उसने विचित्र हिरन का रूप धारण कर, राम के आश्रम की ओर प्रयाण किया। रावण तो रामाश्रम से हट कर कुछ अन्तर पर छिपा खड़ा रहा और मारीच हिरन बन उनके आश्रम में इधर उधर घूमने लगा। उस विलक्षण सुन्दरता सम्पन्न हिरन को देख सीता ने राम और लक्ष्मण से कहा कि इसे मार कर ले आओ। लक्ष्मण उस हिरन को पहचान गये और बोले यह मायावी मारीच राक्षस है। पर राम ने कहा—"यह जो कोई हो—मैं इसे मारूँगा अवश्य।" यह कह राम उस हिरन को पछियाते, उसके पीछे पीछे हो लिये। बड़ी देर के बाद और बहुत दूर जा कर राम ने उसे मारा। मरते समय उसने अपना रूप प्रकट किया और राम जैसे कण्ठ स्वर से "हा सीते! हा

लक्ष्मण!" कहकर प्राण विसर्जन किये। उस हिरन का यथार्थ रूप देख राम को लक्ष्मण की बात स्मरण हो आयी और मरते समय की उस हिरन की पुकार पर ध्यान देने से, राम के मन में शङ्का उत्पन्न हुई। अतः उन्होंने तुरन्त एक दूसरे हिरन को मारा और अपने आश्रम की ओर लौट पड़े। उधर राक्षस के अन्तिम शब्दों की भनक सीता के कान में पड़ी। तब सीता ने लक्ष्मण को राम की सहायता के लिये भेजना चाहा। किन्तु लक्ष्मण तो उन राक्षसों की माया को भली भाँति जानते थे। अतः उन्होंने सीता से कहा—"रामचन्द्र जी पर कभी कोई सङ्कट नहीं पड़ सकता। जिन्होंने अकेले चौदह सहस्र राक्षसों को मार डाला, उन पर सङ्कट कभी नहीं आ सकता। चलते समय राम मुझे आज्ञा दे गये हैं कि सीता की रखवाली करना—अतः मैं तुम्हें अकेली छोड़ यहाँ से नहीं जा सकता।"

स्वामी की विपद् की शङ्का से आतुर सीता ने लक्ष्मण के मौन और दृढ़ सङ्कल्प में कोई गूढ़ रहस्य तथा कुत्सित अभिप्राय समझ मन में मनमानी कल्पना कर डाली और उस कल्पना के वशीभूत हो लक्ष्मण से जो कटु बातें कहीं वह लक्ष्मण जैसा तेजस्वी और सत्यनिष्ठावान् युवक कभी सह्य नहीं कर सकता था। सीता ने कहा- "लक्ष्मण! मुझे पहले यह ज्ञात न था कि तुम्हें कैकेयी ने सिखा पढ़ा कर हमारे साथ भेजा है और तुम भरत के गुप्त दूत हो। ऊपर से तो तुम भाई के सेवक बनने का ढोंग रचे हुए हो, पर मन में उनके मारने का षड्यन्त्र रच रहे हो। कदाचित् तुमने सोच रखा है कि रामचन्द्र को मरवा कर हम सीता को अपनी मुट्ठी में कर लेंगे। किन्तु स्मरण रखो, मैं अग्नि में जल कर अपने प्राण दे दूँगी। तुम्हारे मन में अवश्य पाप है। अतएव तुम भाई की सहायता को नहीं जाते।" इस पर लक्ष्मण ने कहा—"मैं तुमको अपनी माता समझता हूँ वृथा कलङ्क लगा कर मेरे मन को संतप्त मत करो और तो मैं क्या हूँ। तुम स्त्री ही तो हो। स्त्रियों का यह स्वभाव है कि वे बिना समझे बूझे जो मन में आया कह बैठती हैं। भाई की आज्ञा के विरुद्ध, तुम्हें अकेली छोड़ कर मैं जाना नहीं चाहता। पर तुम्हारे कटु वाक्य मेरे हृदय में तीर की तरह चुभ रहे हैं।"

अस्तु, लक्ष्मण ने एक बार आकाश की ओर देख, सीता की रक्षा का भार देवताओं को सौंपा और रोष से होंठ कँपाते आश्रम को छोड़, वे राम के अनुसन्धान के लिये चल दिये। तब काषाय वस्त्रपरिहित, शिखी, छत्री और उपानह रहित परिव्राजक का रूप धर, रावण "ब्रह्म" नाम कीर्त्तन करता सीता के सामने उपस्थित हुआ। रावण ने सीता को सम्बोधन कर जो बातें कहीं वे ऋषिजनोचित नहीं थीं। किन्तु सरल प्रकृति सीता तो अतर्कित थीं। अतः उन्होंने ब्रह्म शाप के भय से, रावण को आत्म-परिचय दिया और उसे अतिथि समझ, आश्रम में ठहरने का अनुरोध करते हुए उससे कहा—"हे द्विज! तुम अकेले इस दण्डकारण्य में क्यों विचरते हो?" इसके उत्तर में छद्मवेशी रावण ने अधिक वाक्याडम्बर न करके अपना अभिप्राय इस प्रकार व्यक्त किया। "मैं राक्षसराज रावण हूँ। त्रिकूट पर्वत के शिखर पर बसी हुई लङ्का मेरी राजधानी है। वहाँ मैंने अनेक स्थानों से ढूँढ़ कर सोलह सौ सुन्दरी स्त्रियाँ इकट्ठी कर ली हैं। मैं तुमको उन सब के आगे अपनी प्रधान महिषी बनाने के अर्थ लेने आया हूँ। राजा दशरथ ने मन्दवीर्य ज्येष्ठ पुत्र को राजसिंहासन के अधिकार से निकाल कर अपने कनिष्ठ पुत्र भरत को राज्याधिकार दिया। ऐसे की अनुगामिनी होना, तुम्हारे लिये शोभाप्रद नहीं। त्रिकूट शीर्षस्थिता वनमालिनी लङ्का की सुपुष्पित तरुच्छाया में रह कर तुम राम को भूल जाओगी।

रावण का अभिप्राय अवगत होते ही सीता का भाव भङ्गी बदल गयी। जिस मुख पर अभी तक श्रद्धा की झलक दीख पड़ती थी—उस पर अब विलक्षण रोष का तेज झलकने लगा। रोष में भर सीता ने कहा—"अरे नीच! मेरे स्वामी इन्द्र के समान अटल हैं, इन्द्र के समान पराक्रम-

शाली हैं। मेरे स्वामी जगत्पूज्य चरित्रशाली हैं। वे जगत्कीर्तिदायक तेजोदृप्त, सत्यप्रतिज्ञ और प्रथितयशा हैं। अरे राक्षस! तू कपड़े में रख कर अग्नि को ले जाना चाहता है। तू छुरे की तीक्ष्ण धार को जिह्वा से चाटना चाहता है। कैलास पर्वत को हाथ पर उठाया चाहता है। राम की स्त्री को छूने की तुझमें शक्ति नहीं है। सिंह में और शृगाल में, सुवर्ण एवं सीसे में जो प्रभेद है, राम की अपेक्षा तुझ में इससे भी अधिक प्रभेद है। इन्द्र की शची को चुरा कर तुझे अपनी रक्षा का सुयोग मिल भी जाय, पर मुझे छूने ही से तेरी मृत्यु निश्चित है।"

यह सुन रावण ने क्रुद्ध हो कहा—"सीता! मेरा तिरस्कार कर तू वैसे ही पछतायगी, जैसे उर्वशी पुरूरवा को लात मार कर पछताई थी। परन्तु सीता ने उसका तिरस्कार ही किया। तब तो उस राक्षसराज रावण ने सीता को बरजोरी रथ पर बिठा लिया और लङ्का की ओर प्रयाण किया। सीता का हरण, वनवास के तेरहवें वर्ष, माघशुक्ल १४वीं के दिन वृन्द नामक मुहूर्त में हुआ था।

परवशा सीता रोती हुई चली जाती थीं। उनके रोने का शब्द सुन कर, जटायु की नींद टूटी और उसने रावण को ललकारा। रावण भी लड़ने को उद्यत हुआ। दोनों का युद्ध हुआ। रावण के जब सब अस्त्र शस्त्र नष्ट हो गये और केवल एक खड्ग मात्र रह गया, तब वह सीता को लेकर भागा। किन्तु जटायु उसे कब भागने देता था। उसने दौड़कर उसे फिर घेरा। विवश रावण को फिर लड़ना पड़ा। सीता को तो उस ने रथ के नीचे उतार कर भूमि पर रख दिया और वह जटायु के साथ लड़ने लगा। इस बार उसने जटायु को मारते मारते अधमरा कर दिया। यह देख सीता रोने लगीं। रावण ने उसे उठा फिर रथ पर चढ़ाया और लङ्का की ओर चला। युद्ध के समय जटायु की आयु साठ सहस्र वर्ष की थी।

लङ्का जाते समय मार्ग में सीता को किष्किन्धा नगरी मिली। वहाँ एक पर्वत पर उसने पाँच बन्दरों को बैठा देखा। तब इस आशय से कि ये बन्दर राम को मेरा वृत्तान्त बता देंगे अपनी पिछौरी में कुछ भूषण लपेट कर उन वानरों के सामने पटक दिये। इसका भेद रावण पर प्रकट न हो पाया। अस्तु, सीता को लिये हुए रावण लङ्का में पहुँचा। वहाँ पहुँच उसने सीता पर पहले अपना प्रभाव डालना चाहा। पर जब इसका कुछ भी फल न हुआ, तब उसने उन्हें एक वाटिका में टिकाया और इनको डरा कर एवं फुसला कर वश में करने के अर्थ, महाकुरूपिनी और देखने में भयानक राक्षसी नियुक्त कर दीं। इन राक्षसियों को रावण ने यह आज्ञा दे रखी थी कि मेरी आज्ञा बिना कोई नर या नारी इसके पास न आने पावे। यह जो कुछ माँगे, वही इसे दिया जाय। इसको अप्रसन्न करने वाला, कोई भी क्यों न हो, मार डाला जायगा।

तदनन्तर राम लक्ष्मण का वृत्तान्त लाने के लिये रावण ने आठ राक्षसों को जनस्थान में भेजा। सीता से उसने स्वयं यह भी कहा कि—मैं बत्तीस करोड़ राक्षसों का राजा हूँ और इन बत्तीस करोड़ राक्षसों में से प्रत्येक के पास एक एक सहस्र राक्षस हैं। यदि तू मुझे वरेगी, तो इन सब की तू स्वामिनी होगी। पर सीता उसकी एक भी चाल में न आयीं। तब उसने कहा—"यदि वर्ष भर में तू मेरा कहना न मानेगी तो तू अवश्य मार डाली जायगी।" यह कह कर और राक्षसियों को समझा बुझा कर, रावण वाटिका से घर चला गया।

उधर रामचन्द्र अशकुन देखते और चिन्ता करते हुए शीघ्रता पूर्वक चले आते थे। मार्ग में अकेले लक्ष्मण को देख, वे और भी अधिक चिन्तित हुए और बोले—"दण्डकारण्य में जो मेरे साथ साथ आयी, मेरी उस वनवासिनी दुःखिनी सहायिका को कहाँ छोड़ आये? लक्ष्मण, आश्रम में पहुँचने पर, मुसक्याती हुई सीता मुझसे बात

चीत करती न दीख पड़ी, तो मैं अपने प्राण दे दूँगा।

इस पर लक्ष्मण ने सारा हाल कहा। उसे सुन राम ने कहा—"लक्ष्मण, तुमने अच्छा न किया।" इसी प्रकार लक्ष्मण से कथोपकथन करते करते, शीघ्र पैर उठाते, राम अपने आश्रम में पहुँचे। वहाँ सीता-हीन-आश्रम को देखा। तब तो राम के नेत्र रक्तवर्ण और वे स्वयं उन्मत्तवत् हो गये। कभी गोदावरी से, कभी वृक्षों से, कभी पक्षियों से, कभी पशुओं से वे सीता का पता पूँछने लगे।

इसीका वर्णन हमारे मित्र चतुर्वेदी राम-नारायण मिश्र बी० ए० ने पद्य में किया है, जो नीचे उद्धृत किया जाता है।

पद्य

वैदेही सुकुमारी कितै गयी?
जा बिनु कल पल छिन नहिं मन को!
एहो प्रानन-प्यारी कितै गयी?
झिझकत देख मुकर निज बेनी!
नागिन हू ते कारी कितै गयी?
हे मृग डार! निहार्यो इतै कहुँ?
बड़े बड़े नैनन वारी कितै गयी?
हे गजराज! कहो कछु तुम ही!
चलत चाल मतवारी कितै गयी?
हे खञ्जन! तुम उड़त चहूँ दिसि!
खञ्जन लोचन वारी कितै गयी?
हे गिरि गुहा सैल बन कानन!
अचल पतिव्रत धारी कितै गयी?
री अचला! क्यों मौन भयो तू?
तोरी राजदुलारी कितै गयी?
तुहिं विदेह तनया कित पाऊँ?
दोउ कुल की उजियारी कितै गयी?
जगत रटत मोहि, मोहि रट तोरी!
सुर नर मुनि हितकारी कितै गयी?
अवन पवन जल व्योम हुतासन!
कहो तेज तनधारी कितै गयी?
"रामनरायन" प्रभु लीला लखि!
पूँछत सीता नारी कितै गयी?

कुछ दूर आगे चल कर, राम और लक्ष्मण ने देखा कि धूल पर किसी राक्षस के बड़े बड़े पैरों के चिन्ह बने हुए हैं और उसके पास की भूमि रक्त से लिप्त है तथा वहाँ सीता के उत्तरीय स्खलित कनकबिन्दु गिरे पड़े हैं। वहाँ से कुछ ही दूर आगे एक पुरुष का विकृत शव और विशीर्ण कवच धूल में पड़ा लोट रहा है। उसके पास ही युद्ध रथ चक्रहीन पड़ा है और उसकी पताका रक्त और कीच में सनी हुई है। यह देख रामचन्द्र को विश्वास हो गया कि राक्षसों ने सीता के सुकुमार शरीर को खा डाला। सीता के शरीर को लेने के लिये परस्पर घोर युद्ध हुआ है। यह उसीका निदर्शन है? मारे क्रोध के राम के नेत्र ताम्रवर्ण हो गये? दोनों होंठ काँपने लगे, वल्काजिन को फिर से कड़े करके बाँधा, जटाओं को लपेट कर जूड़ा बाँध लिया और लक्ष्मण के हाथ से धनुष बाण लेकर, क्षिप्तभाव से वे बोले- "जिस प्रकार जरा मरण और विधाता का क्रोध अनिवार्य है, उसी प्रकार आज मेरा भी प्रतिरोध कोई नहीं कर सकता। आज जो कोई मेरे सामने पड़ेगा, उसीका सर्वस्व नाश कर, सीता के विनाश का बदला लूँगा।" बड़े भाई की यह दशा देख लक्ष्मण ने बड़े कोमल शब्दों में राम के क्रोध को शान्त किया।

शान्त हो राम ज्यों हीं लक्ष्मण के साथ कुछ दूर आगे गये, त्योंहीं उनको गिरि तुल्य बृहद्देह-धारी मुमुर्षु अवस्था में जटायु दीख पड़ा। उसे देखते ही राम उन्मत्त से हो कर कहने लगे— "देखो तो इसी राक्षस ने सीता को खाया है और अब कैसे आराम से पड़ा हुआ है।" यह कह राम ने अपने धनुष पर मृत्यु तुल्य एक बाण की योजना की। उस समय जटायु के कण्ठगत प्राण थे। उसने बोलने का यत्न किया और कुछ बोला भी पर बोलने से उसके मुँह से फेन सहित रक्त निकलने लगा। उसने राम को सम्बोधन कर कहा—हे आयुष्मन्! तुम जिसको महौषधि की तरह सारे वन में खोजते फिर रहे हो, उस देवी को और मेरे प्राण को रावण ने हरा है। रावण

जब सीता को लिये जाता था, तब उसके हाथ से सीता को बचाने के अर्थ मैं उससे लड़ा भी। ये भग्न रथ; छत्र, चक्र आदि रावण ही के हैं। उसके सारथि को तो मैंने मार डाला और रावण को मैंने रथ के नीचे पटक दिया। किन्तु जब मैं थक गया, तब उसने खड्ग से मेरे दोनों पङ्ख काट डाले। अतः रावण तो मुझे मार ही गया है अब आप मुझे क्यों मारने को उद्यत हैं?

यह सुन रामचन्द्र ने अपना विशाल धनुष तो एक ओर रखा और जटायु को हृदय से लगा, वे रोने लगे तथा बड़ी दीनता से बोले—"लक्ष्मण देखो! इसके प्राण अब निकलना ही चाहते हैं, जटायु मरते हैं, मेरे अभाग्य से, मेरे पिता के सखा जटायु भी मारे गये। इनका कण्ठ-स्वर बिगड़ गया है और चक्षु निष्प्रभ हो गये हैं।" इसके बाद जटायु की ओर सजल नेत्रों से देख और अञ्जलि बाँध कर राम ने कहा—"यदि तुम में बोलने की शक्ति हो तो सीता के हरण और अपने वध किये जाने का वृत्तान्त कहो। रावण ने हमारी स्त्री क्यों हरी, हमारी उसकी कौन सी शत्रुता थी? उसका रूप कैसा है, उसमें शक्ति कितनी है? उस समय सीता की मुखश्री कैसी थी? मेरे किस अपराध के बदले उसने ऐसा काम किया? हे तात! रावण रहता कहाँ है?" इन सब प्रश्नों के उत्तर में जटायु ने केवल यही कहा—"मेरी दृष्टि नष्ट हो गयी है—मुझसे अब बोला नहीं जाता। दुरात्मा रावण, सीता को ले दक्षिण की ओर गया है। वह विश्रवा मुनि का पुत्र और कुबेर का भाई है।" यह कहते ही कहते जटायु की आँखें पथरा गयीं और उसका प्राण पखेरू शरीररूपी पिञ्जर से उड़ गया। हाथ जोड़े राम तो कह रहे हैं—" हाँ, आगे कहो " पर जटायु तो चल बसा। रामचन्द्र ने सजल नेत्र हो कहा—"कालोहि दुरतिक्रमः" इस पृथिवी पर सर्वत्र साधु और महाजन रहते हैं, नीच कुल में भी जटायु जैसे जीवधारी, देवताओं द्वारा पूजे जाने योग्य चरित्र वाले थे—हमारे उपकार के लिये, इन्होंने अपने प्राण तक दे डाले। आज मुझे सीता के हरे जाने का कष्ट नहीं है; जटायु की मृत्यु के शोक ने मेरे चित्त पर पूरा अधिकार कर लिया है। जिस प्रकार मेरे निकट राजा दशरथ पूज्य और मान्य थे, उसी प्रकार जटायु भी हैं। लक्ष्मण! जा कर लकड़ियाँ ले आओ, मैं इस पवित्र शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया करूँगा।" अतः रामने उसे मांस के पिण्ड दिये और उसकी तृप्ति के लिये तर्पण किया।

फिर दोनों भाई सीता की खोज में आगे बढ़े। वे जनस्थान से तीन कोस आगे बढ़े और क्रौंचवन में घुसे। उस वन में एक कन्दरा के निकट अयोमुखी नामक एक राक्षसी मिली। वह लक्ष्मण के शरीर में लिपट गयी। इसके अनन्तर कबन्ध नामक राक्षस मिला। उसने दोनों भाइयों को खाना चाहा। पर उन दोनों ने उसका हाथ काट डाला। तब उसने दोनों से परिचय पूँछा। लक्ष्मण ने अपना नाम बतला कर उसका नाम पूँछा। उसने कहा—मेरा नाम दनू है। किसी समय मैंने अपनी धृष्टता से स्थूलशिर नाम के ऋषि को क्रुद्ध किया। तब ऋषि ने मुझे शाप दिया—"ऐसा ही तेरा रूप हो।" यह सुन उसने उनको प्रसन्न किया। प्रसन्न हो मुनि ने कहा राम और लक्ष्मण के मिलने पर तुम्हारी मुक्ति होगी। तदनन्तर मैंने तप कर ब्रह्मा से दीर्घायु का वर पाया और इन्द्र पर चढ़ाई की। इन्द्र ने वज्र चलाया, जिससे मेरी दोनों जाँघें और मस्तक, शरीर में घुस गये। ब्रह्मा का वचन सत्य करने के लिये, इन्द्र ने मुझे जान से नहीं मारा और मेरे जीने के लिये मेरी भुजा एक योजन लम्बी बना दी। उसीसे पकड़ कर मैं जीवों को खा कर अपना पेट भरता हूँ। इन्द्र ने भी कहा था कि जब राम और लक्ष्मण मिलेंगे तब तेरी मुक्ति होगी। अतएव आप मुझको जला दीजिये। तब हम आपको सीता के मिलने का उपाय बतलावेंगे। भस्म होने के बाद उसका दिव्य शरीर हो गया तब उसने कहा—"हे राम! कार्यसिद्धि के छः उपाय हैं। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय। सो आप सुग्रीव से जा कर मैत्री कीजिये। वह ऋक्षराज नामक वानरपुत्र सूर्य के वीर्य से है। उसे उसके बड़े भाई वालि ने

घर से निकाल दिया है। वह पम्पासर के निकट ऋष्यमूक पर्वत पर चार वानरों सहित रहता है वह बड़ा तेजस्वी, कान्तिमान्, सत्यसन्ध, नम्र, धैर्य्यवान्, बुद्धिमान, चतुर, ढीठ, प्रकाशमान, महाबली, पराक्रमी, कृतज्ञ और कामरूपी है। इस समय भाई के डर से वह भी किसी बली से मैत्री करना चाहता है। वह संसार के कोने अंतरे तक जानता है। सीता जहाँ होगी, वह अवश्य ढूँढ़ कर ला देगा ? हे राम ! अब आप पम्पासर पर जाइये। उसके पश्चिम तीर पर मतङ्गवन में शबरी नामक तपस्विनी रहती है। वह आपके दर्शन कर स्वर्ग को चली जायगी। उसी ओर ऋष्यमूक पर्वत पर एक बड़ी भारी गुफ़ा है। उसके पूर्व द्वार पर एक सरोवर है। उसी गुफ़ा में और कभी शृङ्ग पर वानरों सहित सुग्रीव रहता है।" यह कह कबन्ध चल दिया।

वे दोनों भाई कबन्ध के बतलाये हुए मार्ग से वन में हो कर पश्चिम ओर चले और एक पर्वत पर निवास कर, पम्पासर के पश्चिम तट पर शबरी से मिले। उसने उनका सत्कार किया और कहा ऋषि लोग जिनकी मैं सेवा करती थी, जब आप चित्रकूट में पहुँचे, तभी स्वर्ग को सिधार गये। वे मुझ को आपके दर्शन के लिये छोड़ गये हैं। फिर उसने राम को वन दिखा कर, उनसे विदा माँगी और अपने शरीर को अग्नि में भस्म कर स्वर्ग को गई।[1]

वे दोनों भाई पम्पासर के तीर पर गये।

---

[1] शबरी नीच जाति की स्त्री थी। (देखो अर० का० का ७३वें सर्ग का २६ वाँ श्लोक—"श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी।") वह अपने गुरुदेव तथा उनके आश्रम में रहने वाले तपस्वियों की मन लगा कर सेवा किया करती थी। वह अपने गुरु के कहने से राम के दर्शन की प्रतीक्षा कर रही थी। जब राम प्रत्यक्ष दीख पड़े तब उसने उनका यथोचित सत्कार किया और पहले से तोड़ कर रखे हुए फल अर्पण किये। लिखा है—

"मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ।"

श्लोक १७ स० ७३ अर० का०।

इससे यह सिद्ध नहीं होता कि राम ने शबरी के जूठे फल खाये जैसी कि लोक में जनश्रुति प्रचलित है। शूद्रा हो कर शबरी ने तप किया था। यह अनधिकार कार्य करने के लिये ही कदाचित् राम के सामने उसने अग्नि में जल कर प्रायश्चित्त अपने आप किया। जिसका फल उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई! राम ने उसको यह आज्ञा नहीं दी थी कि तू भस्म हो जा। राम ने तो कहा था—

"अर्चितोहं त्वयाभद्रे गच्छ कामं यथा सुखम्।"

श्लो० ३१ अ० ७३ अर० का०।

॥ इति अरण्य काण्ड ॥

श्रीराम विलाप करते हुए आगे बढ़े। यह विलाप साधारण विलाप न था। सीता के वियोग में राम इतने में हतोत्साह हो गये थे कि उन्होंने अपने प्राण परित्याग का विचार बाँध, लक्ष्मण से कहा—"हे लक्ष्मण, तुम जा कर भ्रातृवत्सल भरत से मिलो। सीता बिना मैं तो नहीं रह सकता। राम की यह कातरोक्ति सुन लक्ष्मण से न रहा गया और राम को उत्साह देने के लिये उन्होंने जो वाक्य कहे, वे सुवर्ण अक्षरों में लिखने योग्य हैं। लक्ष्मण की उन बातों का राम पर प्रभाव भी यथेष्ट पड़ा। अस्तु, वे दोनों ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचे। उन दोनों को देख ऋष्यमूक वासी वानर भागने लगे। उनके भागने का कारण यह था कि उन के मन में उन दोनों भाइयों को देख यह सन्देह उत्पन्न हो गया था कि हो न हो ये दोनों वालि के भेजे हुए, हमारा वध करने के लिये ही आ रहे हैं। फिर कुछ सोच विचार कर सुग्रीव ने राम के पास हनुमान को भेजा। हनुमान ने रामचन्द्र के पास जाकर उनकी स्तुति की और फिर अपना और सुग्रीव का नाम बतला कर और उन दोनों से अनेक प्रश्न करके वे चुप हो गये। तब राम ने लक्ष्मण से कहा—"यह वानर बड़ा चतुर और पण्डित जान पड़ता है; इसने जैसी बातचीत की है, वैसी बातें बड़े बड़े वेदज्ञ विद्वान् भी नहीं कर सकते। अवश्य ही यह व्याकरण का अच्छा विद्वान् है, क्योंकि इसने इतनी बातचीत में एक शब्द भी व्यर्थ नहीं कहा और न बोलते समय इसकी अनुचित भाव भङ्गी हुई। इसके वचन बड़े मधुर हैं। क्यों न हो। जिसका सचिव इतना विद्वान् है उसका काम भला क्यों बिगड़ने लगा। तुम इसके प्रश्नों के उत्तर दो। लक्ष्मण ने उत्तर दिया।[1] फिर हनुमान जी दोनों भाइयों को साथ लेकर सुग्रीव के पास गये

---

१ तुलसीदास जी ने हनुमान के प्रश्नों का उत्तर रामचन्द्र ही के मुख से दिलवाया है। किन्तु उचित यही जान पड़ता है कि सचिव का उत्तर सचिव द्वारा ही दिया जाय। दूसरी बात यह है तुलसीदास लिखते हैं, हनुमान् "विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ" और वाल्मीकि जी ने लिखा है—" भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः।" तुलसीदास के हनुमान को विप्र बना कर भेजने और हनुमान के "माथ नाय" के पूँछने से वादी को यह शङ्का करने का अवसर मिल जाता है कि विप्र रूप धर कर हनुमान ने क्षत्रिय वेष धारियों को माथा क्यों नवाया अर्थात् प्रणाम किया। पर वाल्मीकि ने कदाचित् इस बात को बचाने के लिये ही हनुमान को भिक्षुक का रूप धारण करा कर भेजा है। यद्यपि हनुमान से वाल्मीकि ने भी रघुनाथ जी को प्रणाम करवाया है, यथा—"विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च।" तथापि भिक्षुक के द्वारा एक क्षत्रिय अथवा वैश्य को प्रणाम किया जाना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

श्रीराम लक्ष्मण और वटुरूपधारी हनुमान

और दोनों ने अपना अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अग्नि को साक्षी कर दोनों में मित्रता हो गयी।

अनन्तर राम ने सीता के हरे जाने का वृत्तान्त सुग्रीव को सुनाया। सुनते ही सुग्रीव को सीता के फेंके हुए आभूषणों और वस्त्र का स्मरण हो आया। जब सुग्रीव ने उन्हें मँगा कर राम के सामने रखा, तब राम विलाप करने लगे और लक्ष्मण से उनको पहचनवाया। लक्ष्मण जी बोले—"मैं जानकी के न तो बाजूबन्दों को और न झुमकों को पहचानता हूँ, क्योंकि मैंने इन्हें आज के पूर्व कभी नहीं देखा था। हाँ मैं इन नूपुरों को अवश्य पहचानता हूँ क्योंकि सीताजी का चरण छूते समय नित्य मैं इन्हें देखा करता था।"[१]

तदनन्तर सुग्रीव ने प्रतिज्ञा की कि मैं सीता का पता लगवा दूँगा पर मैं ज़रा बालि की ओर से निश्चिन्त हो जाऊँ। यह कह सुग्रीव ने अपना और बालि का वृत्तान्त यों कहना आरम्भ किया। सुग्रीव ने कहा—"बालि मेरा बड़ा भाई है। पिता के मरने पर वह राजा हुआ। मैं उसकी सेवा में रहने लगा। दुन्दुभी के ज्येष्ठ भ्राता मायावी से स्त्री के निमित्त बालि से शत्रुता हो गयी। वह एक दिन रात्रि को द्वार पर आकर गरजने लगा। बालि उसकी गरज को न सहकर उसको मारने के लिये निकला। मैं भी अपने भाई के पीछे हो लिया। असुर भाग एक गुफ़ा में घुस गया। बालि मुझे उस गुफ़ा के द्वार पर छोड़ कर उसके भीतर चला गया। मैंने एक वर्ष तक बालि के उस गुफ़ा से निकलने की, उस गुफ़ा के द्वार पर बैठकर प्रतीक्षा की। इतने में शब्द सुनाई दिया और रक्त की धार निकली। मैंने समझा बालि मारा गया। बस उस द्वार को शिला से बन्द कर, मैं वहाँ से चला आया और भाई की मृत्यु को जो झूठी थी छिपाया। पर मंत्रियों ने जान लिया और मुझे राज्यासन पर बिठाया। कुछ काल के बाद बालि उस असुर को मार कर आया मैंने उसको आदर पूर्वक, उसके चरण स्पर्श कर प्रणाम किया तथा विनय पूर्वक उसको राज्य देना चाहा किन्तु वह तोभी प्रसन्न न हुआ। सब के सामने मुझे धिक्कारा और एक मात्र वस्त्र देकर मुझे निकाल दिया। यही नहीं किन्तु मेरी स्त्री भी उसने छीन ली। उसके साथ मैं सारी पृथिवी पर घूमा, पर मुझे कहीं सुरक्षित स्थान न मिला तब कारण विशेष से बालि इस पर्वत पर नहीं आसकता, अतः मैं यहाँ रहता हूँ, किन्तु तोभी उसका डर मुझे सताया करता है। हे राम! बालि इतना बलवान है कि ब्राह्म मुहूर्त्त मात्र में वह चारों समुद्र घूम आता है और थकता नहीं। दुन्दुभी नामक असुर ने वरदान पा और उसके अभिमान में चूर होकर समुद्र के निकट जाकर उससे युद्ध करना चाहा। समुद्र ने अपने को उसके उपयुक्त न समझ उसे हिमवान के पास भेजा। हिमवान ने उसे बालि के पास भेजा। वह बालि के निकट आ उसे ललकारने लगा (बालि को यह वरदान है कि उसके सामने जो आता है, उसका बल वह हर लेता है) सो बालि ने उसे बात की बात में मार डाला और उठा कर योजन भर के अन्तर पर फेंक दिया। फेंकते समय रक्त के छींटे मतङ्ग मुनि के आश्रम में गिरे। तब मुनि ने शाप दिया कि यदि बालि आज से यहाँ आवेगा तो मर जायगा और उसके अनुचर बानर आये तो पत्थर हो जाँयगे। इसी शाप के कारण बालि यहाँ नहीं आता और इसीसे मैं यहाँ निवास करता हूँ। हे राघव! यही दुन्दुभी की हड्डियों का ढेर है, जिसे बालि ने फेंका था और ये सातों साखू के पेड़ हैं, जिनको हिलाकर, वह सातों को पत्र-हीन कर देता है। यदि आप इन हड्डियों को दो सौ धनुष की दूरी पर फेंक दें और बाण से एक पेड़ को काट डालें तो मुझे विश्वास हो कि आप बालि को मार सकेंगे। राम ने एक पैर के अँगूठे से हड्डियों को दस योजन की दूरी पर फेंक

---

१ नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वाभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥
श्लो० २२-२३ अ० ६ अर० का०

दिया। सुग्रीव को शङ्का तब भी दूर न हुई। उसने कहा—उस समय वालि थका हुआ था और इन हड्डियों में रुधिर और माँस सना हुआ था। तब राम ने सुग्रीव का अभिप्राय समझ धनुष पर बाण चढ़ाया और उसे छोड़ा। वह बाण सातों पेड़ों को गिराता और पर्वत को तोड़ता पाताल में गया। अनन्तर आकर वह फिर राम के तरकस में घुस गया। तब कहीं सुग्रीव को विश्वास हुआ कि राम वालि को मार सकेंगे। अनन्तर वह सब को साथ ले किष्किन्धा में गया और उसने वालि को ललकारा। वालि भी निकल आया। दोनों में लड़ाई हुई। वालि सुग्रीव का रूप और आकार प्रकार एक सा होने के कारण रामचन्द्र वालि को पहचान न पाये, इस लिये उन्होंने बाण न चलाया। तब सुग्रीव हार कर भागे और राम को उलहना दिया कि यदि आप को वालि को मारना न था तो मुझे भेजा क्यों था? इस पर रामचन्द्र ने कहा—"मित्र! मैं वालि को पहचान न सका; इसलिये उसे नहीं मारा। अब तुम यह माला पहन कर जाओ, मैं उसे अवश्य मारूँगा।

आगे आगे सुग्रीव चले, उनके पीछे पीछे राम और राम के पीछे लक्ष्मण और लक्ष्मण के पीछे हनुमान, नल, नील और तार। मार्ग में एक आश्रम दीख पड़ा। रामचन्द्र ने पूछा—"यह किस का आश्रम है?" उत्तर में सुग्रीव ने कहा यह सप्तजन ऋषि का आश्रम है। वे ऐसे प्रतापी और तपस्वी थे कि अपने तपोबल से वे सदेह स्वर्ग को गये। यह सुन सब ने उस आश्रम को प्रणाम किया।

जब सब किष्किन्धा में पहुँचे तब सुग्रीव ने वालि को ललकारा। जब वालि चलने लगा, तब उसकी स्त्री तारा ने कहा—"मैंने पुत्र अङ्गद से सुना है कि सुग्रीव ने राम की शरण ली है। सो तुम सुग्रीव से मेल करलो क्योंकि राम के साथ वैर करने से तुम्हारा कल्याण न होगा किन्तु प्रबल भावी के वशीभूत हो वालि ने तारा का कहना न माना और जाकर सुग्रीव से लड़ने लगा। राम ने वालि के, एक पेड़ की आड़ में खड़े होकर बाण मारा। बाण के लगते ही वालि कटे हुए वृक्ष की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब राम लक्ष्मण सहित वालि के सामने जा खड़े हुए। उन्हें सामने देख वालि ने राम को बहुत धिक्कारा और बड़ी बड़ी कड़ी बातें कहीं। वह बोला—"तुमको धर्म्मात्मा कौन कहता है। सच तो यह है कि ऊपर से तो तुम धर्म के मित्र बनते हो, पर हो तुम धर्म के शत्रु। भला कहो तो, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? हम दोनों भाई धर्म्म युद्ध कर रहे थे। तुमको क्या अधिकार था जो तुमने मुझे मारा। यदि कहो कि हमने अपने मित्र की सहायता की तो तुमको उचित था कि हम दोनों भाइयों में पहले मेल मिलाप कराने का प्रयत्न करते। यदि तिस पर भी मैं न मानता तो मुझे सतर्क करके मार डालते। तुमने यह तो न किया और छिप कर मुझे मार डाला। इससे तुम्हारी वीरता प्रकट नहीं होती; किन्तु भीरुता प्रदर्शित होती है। मैंने सुना है तुम्हारी स्त्री को रावण चुरा ले गया है। उसका पता लगाने के लोभ में फँस, तुमने पाप कर्म किया है। सुग्रीव तो तुम्हारा काम, अपना काम निकाल लेने के पीछे करेगा, किन्तु यदि मुझसे आपने कहा होता, तो मैं तुम्हारी स्त्री को झट लाकर तुमसे मिला देता। हे राम! बड़े दुःख की बात तो यह है कि बड़े बड़े लोग भी अपने स्वार्थ के लिये बड़े बड़े अनर्थ कर डालते हैं। एक न एक दिन मरना तो सब ही को है, पर दुःख इसका अवश्य है कि तुमसे धर्म्मात्मा ने मुझे अधर्म्म से मारा।

यह कहते कहते वालि के शरीर में रक्त के निकल जाने से निर्बलता बढ़ी। उसके मुख-मण्डल पर पीला पन छा गया और वह चुप हो गया। तब श्रीराम ने कहाः—"तुम धर्म का मर्म न जान कर अज्ञानी बालक की तरह हमारी निन्दा कर रहे हो? क्यों न हो बन्दर ही तो ठहरे! सुनो! हमारे पूर्वपुरुष मनु ने शैलवन कानन सहित यह पृथ्वी हम लोगों को सौंपी है। अतः भरत के राज्य में बसने वाले जीवधारी मात्र को दण्ड देने का हमको अधिकार है।

तुम वानरों के राजा हो। तुमने राजधर्म को पद-दलित कर दुष्कर्मों में अपने को फँसा रखा था धर्मात्मा, बड़ा भाई, पिता और विद्या पढ़ाने वाला गुरु, पिता तुल्य होते हैं। छोटा भाई, पुत्र और गुणी शिष्य—पुत्र के तुल्य होते हैं। तुमने पुत्र के समान अपने छोटे भाई की स्त्री को अपनी स्त्री बना लिया है। तुमने धर्म की मर्य्यादा तोड़ी है। अतः हमें विवश हो तुम्हें यह दण्ड देना पड़ा है। दूसरा कारण यह भी है कि मैंने सुग्रीव से मैत्री कर उसके साथ प्रतिज्ञा कर ली थी कि वालि को मार कर तुम्हें राज्य दूँगा। छिपकर मारने में भी कोई दोष नहीं। क्योंकि लोग मृग आदि को छिप कर मारा ही करते हैं। अतएव यदि तुम दण्ड को स्वीकार कर लोगे, तो तुम पाप से छूट जाओगे। देखो जैसा पाप तुमने किया है, वैसा ही श्रवण नामक एक ऋषि ने किया था। तब राजा मानधाता के पास जाकर वह दण्ड पाने का स्वयं प्रार्थी हुआ था किन्तु राजा ने उसे दण्ड नहीं दिया, अतः उसे घोर दुःख उठाना पड़ा।"

यह सुन वालि ने अपने पूर्व कथन को क्षमा माँगी और अङ्गद की रक्षा के लिये प्रार्थना की। वालि का वृत्तान्त सुन तारा रोती रोती वहाँ आई। आगे रामचन्द्र के समझाने पर उसने अपनी माला सुग्रीव को दी और अङ्गद तथा सुग्रीव से कहा कि राम का काम करो। वालि ने सुग्रीव से कहा—"अङ्गद पर कृपा रखना और तारा की मंत्रणा से काम करना।" यह कह वालि ने स्वर्ग का मार्ग पकड़ा। इस प्रकार अद्वितीय बली वालि की, जिसने पन्द्रह वर्ष द्वन्द्व युद्ध कर गोलभ नामक गन्धर्व को मारा था—समाप्ति हुई।

तदनन्तर सुग्रीव ने राम से कहा—"जिस प्रकार वृत्रासुर को मार कर, इन्द्र पाप में पड़े थे, वैसे ही भाई के वध से मैं भी पाप में पड़ा हूँ। इन्द्र के पाप को तो पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियों ने बाँट लिया था, परन्तु मेरा पाप अब कौन बटावेगा?" रामचन्द्र ने समझा बुझा कर सुग्रीव के मन की ग्लानि दूर की और वालि का प्रेतकर्म करवाया। इसके अनन्तर सुग्रीव का अभिषेक हुआ। अङ्गद युवराज हुए। श्रीरामचन्द्र ने प्रस्रवण गिरि अर्थात् माल्यवान नामक पहाड़ पर जाकर निवास किया और वर्षाकाल वहीं रह कर बिता दिया।

जब वर्षा ऋतु बीत गयी, निर्मल शरद ऋतु आरम्भ हुई, पहाड़ी नदियों की गति मन्द पड़ी, जल का मटीलापन कम होने लगा, आकाश निर्मल हुआ; तब राम ने लक्ष्मण से कहा—

चौपाई

सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी।
पावा राज कोश पुर नारी॥
जेहि सायक मारा मैं बाली।
तेहि सर हतहुँ मूढ़ कहुँ काली॥

जब लक्ष्मण सुग्रीव के पास जाने लगे; तब राम ने यह अवश्य समझा दिया कि क्रोध वश ही सुग्रीव का अनिष्ट न करना। घुड़क कर और धमका कर अपना काम निकाल लेना।

इधर सुग्रीव को आराम में निमग्न देख कर, हनुमान ने उनसे कहा कि रामचन्द्र का काम करना चाहिये। यह सुन कर नलनील नामक बन्दर को सुग्रीव ने आज्ञा दी कि सब वानरों को पन्द्रह दिन के भीतर एकत्र करो। जो न आवेगा वह मारा जायगा।

इतने में रामचन्द्र ने लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजा। लक्ष्मण ने द्वारपर जाकर अङ्गद से कहा कि हमारा सन्देसा सुग्रीव से जाकर कहो। अङ्गद ने तथा यक्ष और प्रभाव नामक मंत्रियों ने भी वह सन्देसा सुग्रीव को सुनाया। लक्ष्मण और आगे बढ़े और राज मार्ग के ऊपर अङ्गद, मयन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, गज, शरभ, विद्युन्माली, संपाति, सूर्य्याक्ष, हनुमान, वीरबाहु, सुबाहु, नल, कुमुद, सुषेन, तार, जाम्बवान, दधिमुख, नील, सुपाल, और सुनेत्र नाम के प्रधान प्रधान वानरों के घरों को देखा। तदनन्तर

लक्ष्मण सुग्रीव के राजप्रासाद में पहुँचे। थोड़ी दूर जाने पर और उसे अन्तःपुर में जान कर वे वहीं ठहर गये और धनुष के प्रत्यञ्चा को चढ़ाया, इससे तारा डर गयी और लक्ष्मण को शान्त कर भीतर ले गयी। वहाँ सुग्रीव से भेंट हुई। लक्ष्मण ने उनसे कठोर वचन कहे। तब तारा ने समझाया और कहा कि लङ्का में करोड़ों राक्षस हैं। उन सब सहित रावण को अकेला सुग्रीव मार सकते हैं—यह मुझसे वालि ने कहा था। आप प्रसन्न हों। जब लक्ष्मण कुछ ठण्डे हुए; तब सुग्रीव ने भी प्रार्थना कर, उनको प्रसन्न किया और हनुमान को वानरों के इकट्ठे करने की आज्ञा दी। सब वानर भेंट लेलेकर उपस्थित हुए और लक्ष्मण सहित पालकी पर सवार होकर रामचन्द्र के पास गये। निकट पहुँच कर उन्होंने राम को प्रणाम किया और राम की आज्ञा पाकर बैठ गये। रामचन्द्र बोले—"पूर्व काल में अनुह्लाद ने शची के पिता पुलोमा की अनुमति से धूर्तता पूर्वक शची को हरा था। इन्द्र ने पहले तो अनुह्लाद को और फिर पुलोमा को, जिसे बड़ा अहङ्कार हो गया था, मारा। हे मित्र! मैं इसी प्रकार रावण को मारूँगा।"

इतने में सब वानर अपनी अपनी सेना लेकर उपस्थित हुए। कई सहस्र कोटि वानर लेकर तारा का पिता आया। एक सहस्र कोटि वानर लिये हुए रूमा का पिता आया। असंख्य सहस्र वानरों को लेकर हनुमान के पिता केशरी आये। कोटि सहस्र गोलाँगूल वानरों को लिये गवाक्ष आया। दो सहस्र कोटि भालुओं को लेकर धूम्र आया। तीन कोटि सेना लेकर पनस आया; तीन कोटि वानरी सेना नील नामक सेनापति लाया। इसी प्रकार कितनी ही सहस्र कोटि वानरी सेना एकत्र हो गयी। तब सुग्रीव ने राम से कहा—"महाराज वानर आगये। अब आप जो इन्हें आज्ञा दें उसे ये करें। रामचन्द्र ने कहा—" पहले सीता और रावण का पता लेना चाहिये, फिर जैसा उचित समझा जायगा किया जायगा।

तब सुग्रीव ने विनत नामक यूथपति को लाख वानरों को साथ देकर पूर्व दिशा में जाने की आज्ञा दी और कहा—" तुम पूर्व दिशा में जाओ और सीता तथा रावण का पता लगाओ। भागीरथी, सरयू, कौशिकी और यमुना, कलिन्द पर्वत, जिससे यमुना निकली हैं, सरस्वती, सिन्धु, शोणनद, मही, और कालमही नदियों के तटों पर ढूँढ़ना। ब्रह्ममाल, विदेह, मालव, काशी, कोशल, मगध देश के बड़े बड़े ग्राम, पुण्ड्र, अङ्ग, रेशम के कीड़े वाले देश, चान्दी की खानि वाली भूमि, इन सब प्रान्तों में सीता को ढूँढ़ना। जो पर्वत समुद्र में हैं उनको, द्वीपों को और मन्दराचल के शिखर ढूँढ़ना। इसके बाद सुग्रीव ने अनेक जङ्गली पुरुषों की जातियों के नाम बतला, उनके निवास स्थानों को ढूँढ़ने का आदेश दिया। अन्त में यह भी कह दिया कि सीता का पता लगा कर महीने भर के भीतर लौट आना। जो महीने भर में न आवेगा, वह मारा जायगा।

अङ्गद के साथ, नील, हनुमान, जाम्बवान, सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेन, वृषभ, मयन्द, द्विविद, गन्धमादन, और उल्कामुख को दक्षिण दिशा में भेजा और कहा विन्ध्यपर्वत, नर्मदा, गोदावरी, महानदी, कृष्णवेणी आदि नदी, मेखल, उत्कल, दशार्ण देश के नगर, आश्रवन्ती, अवन्ती, विदर्भ, ऋष्टिक, माहिषिक मत्स्य, कलिङ्ग कौशिक आदि देश, दण्डकारण्य के पर्वत और नदी; आन्ध्र, पुण्ड्र, चोल, पाण्ड्य, केरल, अयोमुख तथा मलय पर्वत को ढूँढ़ना। उस पर्वत पर अगस्त्य मुनि को देखोगे। उसके निकट ही कावेरी नदी मिलेगी उसके आगे समुद्र है। समुद्र में महेन्द्राचल पर्वत और सौ योजन विस्तीर्ण एक द्वीप है, जहाँ पर प्रायः रावण रहता है। इसी दक्षिण समुद्र में अङ्गारका नाम की राक्षसी है जो आकाशचारी प्राणियों की छाया पकड़ कर, उन्हें खा जाती है। उसके आगे सौ योजन पर ऋषभ नामक एक पर्वत है उसकी चोटी के समीप होकर सूर्य जाते हैं। उसके आगे सूर्य्यवान नामक पर्वत है जो पहले पर्वत से

चौदह योजन के अन्तर पर है। उसके आगे वैद्युत नामक पर्वत है। उसके आगे कुञ्जर पर्वत है। उसी पर भगवान् अगस्त्य की पुरी है। वहीं सर्पों की पुरी भोगवती है; जिसका राजा वासुकि है। इसके आगे ऋषभ नामक पर्वत मिलेगा, जो ठीक बैल के आकार का है। उस पर गोशीर्षक पद्मक और हरिश्याम नामक चन्दन उत्पन्न होते हैं; जिनकी रक्षा रोहित नामक गन्धर्व करते हैं। वे पाँच हैं। उनके नाम हैं—शैलूष, ग्रामणी, शिक्ष, शुक और बभ्रु। वहीं तक तुम लोगों की गति है। आगे पृथ्वी का अन्त है। उसके आगे यम की राजधानी पितृलोक है। तुम लोग उक्त स्थानों को भली भाँति ढूंढना और महीने भर के भीतर लौट आना।

फिर सुग्रीव ने तारा के पिता सुषेण को पश्चिम दिशा को जाने का आदेश दिया और उसके साथ अर्चिष्मान और अर्चिमाल्य को भेजा। साथ ही इनके साथ दो लाख बन्दर कर दिये और कहा, तुम सौराष्ट्र, वाल्हीक, चन्द्र चित्र देशों के बड़े बड़े नगरों में, नारिकेशर के जङ्गलों में, पश्चिम प्रवाह वाली नदियों के तट पर, तपोवनों में दुर्गम पर्वतों पर और वहाँ के निर्जल देशों में, जहाँ अत्यन्त ऊँची और ठण्डी शिलाएँ हैं—सीता को ढूंढना। मुरची नगर, जटापुर, अश्लेपा, अवन्ती, आलक्षित नामक वन बड़े बड़े राष्ट्र और वहाँ के नगर और सिन्धु सागर के सङ्गम में सोम नामक पर्वत पर सीता को ढूँढना, सोम पर्वत पर पक्षधारी सिंह रहते हैं। उसके आगे समुद्र में तुम्हें पारियात्र नामक पर्वत दीख पड़ेगा। यहीं पर विष्णु भगवान् ने पञ्चजन और हयग्रीव नामक-दानवों को मार कर चक्र और शङ्ख लिया था। उसके आगे चौंसठ योजन विशाल वाराह नामक पर्वत मिलेगा। इसी पर प्राग्ज्योतिष नामक नगर है, जहाँ पर नरक नामक दानव रहता है। उसके आगे मेघों का पर्वत मिलेगा। यहीं पर देवताओं ने इन्द्र का राज्याभिषेक किया था। इसके आगे सुमेरु पर्वत मिलेगा। इससे आगे दस सहस्र योजन पर अस्ताचल है। उस पर वरुण का स्थान है। इन दोनों पर्वतों के बीच में एक ताड़ का पेड़ है। वहाँ पर मेरु सावर्णि नामक ऋषि रहते हैं। इस अस्ताचल के आगे कोई नहीं जा सकता, अतएव तुम लोग इन स्थानों को अवश्य ढूँढना और ढूँढकर एक मास के भीतर ही चले आना।

उत्तर दिशा में एक लाख वानरों के साथ शतवलि नामक वानर भेजा गया। उसे सुग्रीव ने आदेश दिया कि तुम म्लेच्छ, पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, भरत, दक्षिण कुरु, मद्र, काम्बोज, यवन देशों, शकों के नगरों, अश्वीदय तथा सौरवरद देशों, हिमवान के लोध, पद्मक, देवदारु वनों में जाकर सीता को खोजो। सोमाश्रम में होते हुए काल पर्वत पर जाना, इसके आगे क्रम से हेमगर्भ, सुदर्शन और देवसखा पर्वत मिलेंगे। इनके आगे सौ योजन विस्तीर्ण एक निर्जन स्थान मिलेगा। उसको नाँघने पर कैलास पर्वत मिलेगा। वहीं पर कुवेर का स्थान है और वहीं एक सरोवर भी है। इसके बाद क्रौंच नामक पर्वत मिलेगा। वहीं पर कामदेव के जलाये जाने का स्थान है और वह काम शैल के नाम से प्रसिद्ध है। उसके आगे मैनाक पर्वत है। वहीं पर मय नामक दानव का घर है। वहीं पर घोड़े के मुख जैसी आकार वाली स्त्रियाँ हैं। उसके आगे बालखिल्य और वैखानस तपस्वी रहते हैं और वहाँ एक सरोवर भी है। उसके आगे एक देश मिलेगा जहाँ पर सूर्य आदि का प्रकाश नहीं है। वह केवल तपस्वियों के तेज से प्रकाशमान रहता है। उसके आगे शैलोदा नाम की नदी मिलेगी। उसके आगे कुरु नामक देश है। उसके आगे उत्तर समुद्र है, जिसके बीच में सोमगिरि नामक पर्वत है। वहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं है। उसी पर्वत के प्रकाश से वह देश प्रकाशमान रहता है और वहीं पर ब्रह्मा रहते हैं। तुम लोग सोमगिरि तक जाना और सीता का अनुसन्धान करना। उसके आगे तुम लोगों की गति नहीं है।

इस प्रकार चारों दिशाओं में सीता का अनुसन्धान करने के लिये जासूसों की टोलियाँ नियत कर, सुग्रीव ने हनुमान को फिर बुलाया।

कारण यह था कि हनुमान दक्षिण जाने के लिये चुने गये थे और उसी दिशा में रावण की राजधानी लङ्का थी। साथ ही सुग्रीव, हनुमान के चातुर्य्य और पराक्रम से भी अभिज्ञ थे। अतः उनको और राम को विश्वास था कि सीता का पता हनुमान द्वारा ही लगेगा। अतः राम ने हनुमान को अपनी चिन्हानी अँगूठी दी और यह कह भी दिया कि इसको देखते ही सीता जान जायगी कि तुम हमारे भेजे हुए हो।

जब सब वानर चले गये तब राम ने सुग्रीव से पूँछा कि तुम सब देशों को कैसे जानते हो? उत्तर में सुग्रीव ने कहा वालि के डर से मैं चारों दिशाओं में दौड़ा दौड़ा फिरा, पर सुरक्षित स्थान कहीं न मिला। वालि भी मेरे पीछे लगा था तब मुझे थका देख हनुमान ने मातङ्गाश्रम में रहने का परामर्श दिया और मैं तब से यहाँ रहने लगा था।

कुछ दिनों बाद विनत, शतवलि और सुषेण ने आकर कहा कि पूर्व, उत्तर और पश्चिम में सीता का पता नहीं चला। पर दक्षिण दिशा की खोज को जो वानर दल भेजा गया था—वह नहीं लौटा। अतः अब उस दल का कुछ वृत्तान्त लिखा जाता है?

तार और अङ्गद को लेकर, हनुमान ने दक्षिण दिशा में जा अनुसन्धान करना आरम्भ किया। विन्ध्याचल को मझा कर, वे लोग एक ऐसे देश में पहुँचे, जो निर्जन था। इसका कारण यह था कि वहाँ कुण्ड नामक एक महर्षि रहते थे। उस वन में उनका दस वर्ष का एक पुत्र खो गया और मिला नहीं। अतः मुनि ने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि इस वन में आज से कोई जीव जन्तु न रहेगा। उस वन में खोज लगाकर वानर मण्डली आगे बढ़ी। रास्ते में एक असुर दीख पड़ा, जो अङ्गद के एक ही थप्पड़ की मार से यमलोक सिधार गया। आगे चलकर इनको ऋक्षबिल मिला। प्यास से आतुर यह वानर दल उस बिल में घुस गया। उसमें एक तपस्विनी दीख पड़ी। हनुमान ने उससे पूँछा कि तू कौन है और यह घर किसका है। उसने कहा—मय दानव का। मयने तप किया था और ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर उनसे, शुक्र की रचित शिल्पविद्या माँगी थी। वह विद्या उसे प्राप्त हुई और उस विद्या के सहारे उसने यह भवन बनाया और वह यहीं रहने लगा। कुछ दिनों बाद जब वह दानव हेमा नाम की अप्सरा पर मोहित हुआ; तब इन्द्र ने उसे वज्र से मार डाला। उसकी मृत्यु के पश्चात् ब्रह्मा ने यह वन हेमा को दिया। मैं मेरु सावर्णि की पुत्री और हेमा की सहेली हूँ। मेरा नाम है स्वयंप्रभा। हेमा नाचने गाने में बड़ी चतुर है। उसकी रक्षा के लिये उसने मुझे यहाँ नियत किया है। तुम लोग मनमाने फल खा सकते हो और जल पी सकते हो।

जब वानर खा पीकर सन्तुष्ट हुए तब उसने उनसे उनका वृत्तान्त पूँछा। अपना वृत्तान्त सुना वानरों ने बिल के बाहर जाने का उपाय तपस्विनी से पूँछा। तब स्वयंप्रभा ने उन सब से आँखें बन्द करने को कहा। उनके ऐसा करते ही स्वयंप्रभा ने निमेष भर में उन सब को बिल के बाहर निकाल दिया। बाहर निकल उन्होंने समुद्र का तट पाया। इतने दिन हो गये पर सीता की सुध न मिली। अतः सब वानर हताश होकर समुद्र के तट पर बैठ गये, क्योंकि सुग्रीव का नियत किया हुआ समय १ मास भी निकल चुका था। सब बन्दर भूख प्यास से सताये हुए, थके माँदे निराश और मृत्यु दण्ड से त्रस्त, उदास बैठे थे। उस समय युवराज अङ्गद ने और सेनापति तार ने सब बन्दरों को सुग्रीव के विरुद्ध उभारने के लिये एक उत्तेजना पूर्ण व्याख्यान दिया। जिसका मर्म यह है:—

अङ्गद ने कहा:—

यदि हम लोग लौट कर किष्किन्धा जाँय, तो निर्दयी सुग्रीव हमारे प्राण लिये बिना न मानेगा। आओ हम लोग इसी तराई में सुख से रहें। अब स्वदेश लौटने की आवश्यकता नहीं।

अङ्गद और सम्पाति

क्योंकि सुग्रीव का स्वभाव उग्र है, उधर रामचन्द्र स्त्री के वियोग में दुःखी हैं। अवधि भी बीत चुकी है। रामचन्द्र को प्रसन्न करने के लिये सुग्रीव अवश्य हमें मार डालेगा। सुग्रीव बड़ा नीच है। जो कोई अपने बड़े भाई के जीते जी माता के समान उसकी स्त्री को अपनी स्त्री बना लेता है—उससे बढ़ कर, नीच और कौन हो सकता है। बालि इन दुराचारी को रखवाली के लिये उस गुफा के द्वार पर छोड़ गया था; किन्तु यह दुष्ट उस गुफा का द्वार पत्थरों से बन्द कर चला आया। सुग्रीव पापी है, कृतघ्न है और चपल है। श्रीरामचन्द्र जी के साथ प्रतिज्ञा करके भी वह भूल गया था। लक्ष्मण के डर से जानकी जी को खोजने के लिये हमें भेजा है। अब हमारी जाति में उसका कोई विश्वास न करेगा। वह चाहे गुणवान हो, चाहे निर्गुण, मुझे वह अवश्य मार डालेगा। क्योंकि मैं उसके शत्रु का बेटा हूँ।

अङ्गद का यह उत्तेजना पूर्ण भाषण सुन, समस्त वानर सेना में उत्तेजना फैल गयी और वे सब बार बार बालि की प्रशंसा और सुग्रीव की निन्दा करने लगे। अकेले हनुमान ही अङ्गद की बातों में न आये। उन्होंने पूर्वापर का विचार कर और गम्भीर होकर कहा—

हनुमान का उत्तर।

युवराज! आप अपने मन में यह न सोच लेना कि इस वानर मण्डली को लेकर, यहाँ आप सुख पूर्वक राज्य कर सकेंगे। क्योंकि वानरों का स्वभाव चञ्चल होता है। अतः वे अपने बाल बच्चों को छोड़, यहाँ कभी आपके अधीन न रहेंगे। मैं साफ साफ कहता हूँ कि जाम्बवान, सुहोत्र, नील और मुझको आप लोभ, अथवा भय दिखला कर कभी अपने वस में नहीं कर सकेंगे। तार के बहकाने से कदाचित् आपने सोच रखा है कि यहाँ रहने से कोई भय नहीं है; किन्तु याद रखिये लक्ष्मण के बाणों के सामने ठहरना साधारण बात नहीं है।

हनुमान का भाषण सुन गरमा गरम तवे पर मानों किसी ने जल छिड़क दिया। अङ्गद का भाषण सुनने से जो सनसनी फैली हुई थी वह अब दूर हुई। हनुमान जी का व्याख्यान सुन सब वानरों की बुद्धि फिर गयी और अन्न जल छोड़ कर वे मरने की तैयारी करने लगे। वानर आपस में राम के वनवास का वृत्तान्त कह सुन रहे थे। उसके अन्तर्गत जटायु के मरण का संवाद सुन अचानक जटायु के छोटे भाई सम्पाति ने उनको सीता का पता बतलाते हुए कहा—

"जटायु मेरा छोटा भाई था। मैं वृद्ध और पक्षहीन हूँ; नहीं तो उसका बदला लेने के लिये रावण को मार डालता। पूर्व काल में वृत्रासुर वध के समय हम दोनों भाई एक दूसरे से आगे निकल जाने की कामना से उड़े। सूर्य को छूने के अर्थ जब हम उसके निकट पहुँचे, तब सूर्य्य के तेज से हम जलने लगे। छोटे भाई को पीड़ित देख कर मैंने उसे अपने पंखों के नीचे दबा लिया। पर मेरे पङ्ख जल गये। अतएव मैं विवश हो विन्ध्य पर्वत पर गिर पड़ा। तब से आज ही उसका पता सुना है। जब मैं जल कर गिरा तो मुझे निशाकर मुनि मिले, उनसे मेरा परिचय पहले का था। मेरा सारा वृत्तान्त सुन उन्होंने कहा —कि आगे राम का जन्म होगा। उनकी स्त्री को रावण हर लेजायगा और नाना प्रकार का भोजन देगा, पर वह न लेगी। तब इन्द्र भोजन भेजेंगे, उसे वह खायगी। इसके अनन्तर राम के दूत सीता को ढूँढ़ने के लिये यहाँ आवेंगे, तुम उनको मैथिली का पता बतलाना। तब तुम्हारे पङ्ख हो जायँगे। यह कह मुनिवर्य्य स्वर्ग को चले गये। मैं आप लोगों की प्रतीक्षा करता रहा। अब सुनो एक बार रावण एक स्त्री को हरे लिये जाता था। वह राम लक्ष्मण के नाम लेकर पुकारती थी, इससे मैं जानता हूँ कि वही सीता थी। वह राक्षस विश्वश्रवा मुनि का पुत्र और कुबेर का भाई है। इस समुद्र के तट से ४०० कोस पर एक द्वीप है, जिसका नाम लङ्का है, उसीमें वह रहता है और वहीं सीता भी हैं। मैं उसे देखता

हूँ। जाओ तुम लोग देख कर लौट आओ। इस समुद्र के पार एक तो कुलिङ्ग पक्षी जा सकते हैं, दूसरे काक जो फल खाते हैं। तीसरे मास क्रौंच कुरर, बाज, गृद्ध, हंस, गरुड़ जा सकते हैं। मैं यहाँ से रावण और जानकी दोनों को देख रहा हूँ। श्रम करो तो तुम लोग सफल मनोरथ होओगे।

मुझे समुद्र के तट पर पहुँचा दो, मैं अपने भाई को तिलाञ्जलि दूँ।" बानरों ने उसे उठा कर समुद्र तट पर रख दिया। जब वह तिलाञ्जलि दे चुका, तब जाम्बवान के पूँछने पर उसने कहा—"जब मैं इस पर्वत पर गिरा और पराक्रमहीन हो गया, तब मेरा पुत्र सुपार्श्व मुझे आहार दे कर मेरा पालन करता था। एक दिन वह कुछ आहार न लाया। तब मैंने उससे कठोर वचन कहे। इस पर उसने क्षमा माँग कर कहा कि एक राक्षस एक स्त्री को हरे लिये जाता था। उसको मैंने आपके आहार के लिये पकड़ना चाहा। पर जब उसने विनती की तब मैंने उसे छोड़ दिया। वह चला गया। तदनन्तर आकाशचारी और ऋषि गण कहने लगे कि बड़ी कुशल हुई जो सीता जीती जागती बचगयी और सिद्धों ने मुझे बता दिया कि वह राक्षस, राक्षसराज रावण था। और वह स्त्री रामपत्नी सीता थी। यह बात मैंने अपने पुत्र सुपार्श्व से सुनी, पर मैं उस समय सुन कर भी कुछ न कर सका और पुत्र को बहुत धिक्कारा कि सीता को छीन क्यों नहीं लिया। यह कहते कहते सम्पाति के पङ्ख निकल आये। अतएव वह उनको खोजने की बात कह और धीरज बँधा उड़ गया।"

अनन्तर वानर सेना समुद्र के तट पर खड़ी होकर, अगाध और गरजते हुए समुद्र को देख कर विस्मित हुई। शरभ, मैन्द, द्विविद आदि सेनापति एक एक बार हिम्मत करके उठे, पर उस अगाध जलधि को देख चुप चाप बैठ गये। तब अङ्गद ने कहा—"मैं समुद्र पार जा तो सकता हूँ, किन्तु लौट कर आसकूँगा कि नहीं इस में सन्देह है। इसी प्रकार सब ने अपना अपना पराक्रम प्रकट किया, किन्तु यह किसी ने न कहा कि हम काम सिद्ध करेंगे। तब जाम्बवान ने हनुमान से कहा—पुञ्जिकस्थला जिसका दूसरा नाम अञ्जना है, अप्सरा थी। शापवश कुञ्जर नायक वानर की कन्या होकर केशरी को व्याही गयी। वायु के संयोग से उसी अञ्जना के गर्भ से तुम पैदा हुए हो। तुम जन्मते ही सूर्य्य को पकड़ने के लिये तीन सो योजन उड़ गये। तब इन्द्र ने तुम पर वज्र चलाया। तुम गिर पड़े और तुम्हारी ठुड्डी (हनु) टेढ़ी पड़ गयी। इसीसे तुम्हारा नाम हनुमान पड़ा। तुमको गिरा देख कर वायु ने अपनी गति बन्द कर दी। तब ब्रह्मा ने वर दिया कि संग्राम में तुम्हारा घात न होगा। इन्द्र ने वर दिया कि तुम अपनी इच्छा से मरोगे। सो तुम ही इस कार्य को कर सकते हो। अतएव उद्योग करो। बामन के पृथिवी नापने के समय मैंने इस सम्पूर्ण पृथिवी की २१ बार प्रदक्षिणा की थी और उस देव की आज्ञा से अनेक औषधियाँ इकट्ठी कीं, जिनको समुद्र में डाल देवताओं ने मथा और अमृत पाया। पर अब मैं पराक्रम-हीन सा हो गया हूँ। अतः तुम समुद्र को फलाङ्ग कर कार्य सिद्ध करो।

यह सुन हनुमान समुद्र लाँघने को कटिबद्ध हुए।

॥ इति किष्किन्धा काण्ड ॥

सुन्दर काण्ड

हनुमान समुद्र पार करने की इच्छा से, निकटस्थ एक पर्वत पर चढ़े और वहाँ से वे कूदे। उनको जाते देख कर समुद्र ने विचारा कि मेरी वृद्धि सगर के द्वारा हुई है अतएव उनके कुल में उत्पन्न श्रीराम के दूत की सहायता करना मेरा कर्त्तव्य है। इस प्रकार सोच, समुद्र ने मैनाक नाम के पर्वत से कहा कि तुम यहाँ पर इन्द्र की आज्ञा से, राक्षसों के पाताल से आने जाने का मार्ग रोके हुए हो, अतः तुम श्रीरामचन्द्र के दूत को विश्राम देने की चेष्टा करो। समुद्र के इन वचनों को सुन मैनाक ने सहर्ष जल के बाहिर अपना सिर निकाला किन्तु राजदूत हनुमान ने उसे राम-कार्य में विघ्नकारक समझ, और अपनी छाती का धक्का दे उसे गिरा दिया। तब वह अति प्रसन्न हो और मनुष्य रूप धारण कर बोला—"हे कपि! तूने बड़ा कठिन कार्य्य किया है। तेरे ऊपर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। आ मेरे शृङ्ग पर विश्राम कर, तब आगे जाना श्रीरामचन्द्र के पूर्वपुरुषों द्वारा ही समुद्र की इतनी वृद्धि हो सकी है। अतः उसने इस उपकार को स्मरण कर, मुझे तुम्हारे पास भेजा है और तुम्हारा आदर करने को कहा है। इसके अतिरिक्त मेरा आपका और भी एक सम्बन्ध है।"

अर्थात् सत्ययुग में सब पर्वत पक्षधारी थे और उड़ा करते थे। उनके उड़ने से देवता और ऋषि सदा सशङ्कित रहते और यह डर सब को लगा रहता था कि यदि वे कहीं किसी बस्ती पर गिरे तो सब लोग दब कर मर जायंगे। इस डर को मिटाने के लिये इन्द्र ने सब के पर काटने आरम्भ किये और काटते काटते मेरे पास तक आये। तब आपके पिता पवन ने उड़ा कर मुझे समुद्र में गिरा दिया। इस कारण मेरे पक्ष बच गये। उस उपकार के बदले में आज आपका सत्कार करना चाहता हूँ और इसके लिये सागर की भी प्रेरणा है। इस प्रकार मैनाक की बात सुन हनुमान बोले—"मुझे आवश्यक और शीघ्रता का काम है। तुम्हारा सत्कार होगया।" यह कह और उस पर्वत को हाथ से स्पर्श कर, वे फिर आकाश में उड़े। यह देख मैनाक से इन्द्र ने कहा—"अब तुम निर्भय रहो—क्योंकि तुमने हनुमान का सत्कार किया है।"

इसके अनन्तर देव गन्धर्व सिद्ध और महर्षियों ने सुरसा नामकी नाग माता से कहा कि—"हम लोग हनुमान के पराक्रम की परीक्षा लेना चाहते हैं। अतएव तू जा कर बीच में विघ्न डाल।" तदनुसार सुरसा विकराल रूप धारण कर और हनुमान के मार्ग को रोक उनसे बोली—"तुझको देवों ने मेरे आहार के लिये बनाया है—क्या तुझे खाऊँ? इस पर हनुमान जी ने कहा—मैं राम के कार्य से जा रहा हूँ, तू उनके देश में रहती है। तुझे भी उनकी सहायता करनी चाहिये। यदि तू

मेरे इस कार्य में सहायता करेगी, तो मैं सीता की खोज का हाल रामचन्द्र को सुना कर, तेरे मुख में प्रवेश करूँगा।" यह सुन सुरसा ने कहा कि तुम मुझसे बच कर कहीं जा नहीं सकते, क्योंकि ब्रह्मा का ऐसा ही वर है, तब हनुमान ने कहा—"अच्छा अपना मुख इतना बड़ा कर कि मैं उसमें समा सकूँ।" जब सुरसा ने उनके शरीर को निगलने योग्य मुख बढ़ाया तब कपि ने अपना शरीर उसके मुख से अधिक बड़ा कर लिया। इस प्रकार जितना जितना मुख सुरसा बढ़ाती उससे अधिक कपि अपना शरीर बढ़ा लिया करते थे। जब सुरसा ने अपना मुख सौ योजन बढ़ाया, तब तो हनुमान ने अपना बड़ा छोटा शरीर बना उसके मुख के भीतर प्रवेश किया और तुरन्त बाहिर निकल तथा प्रणाम कर नाग माता से कहा—"ब्रह्मा का वर सत्य हो गया—अब मैं सीता के पास जाता हूँ।" सुरसा ने जब देखा कि हनुमान मेरे मुख से निकल गये, तब पूर्व रूप धारण कर कहा—"जाओ, मेरे आशीर्वाद से तुम अपने उद्योग में कृतकार्य हो।"

यही एक विघ्न नहीं था, किन्तु हनुमान जी को अभी एक और भी विघ्न का सामना करना था। वह यह था सुरसा से छुटकारा पा; कुछ ही दूर हनुमानजी आगे बढ़े थे कि सिंहिका नाम की एक राक्षसी ने उनकी छाया को पकड़ कर, उनकी गति को स्तम्भित कर दिया। यह देख हनुमान जी पहले तो घबराये, पर कुछ ही क्षणों में सुग्रीव की बात स्मरण कर उन्होंने अपने शरीर को बढ़ाया। तब वह भी बढ़ी। यहाँ भी हनुमान जी ने वही चाल खेली, जो सुरसा के साथ खेली थी। अर्थात् जब सिंहिका ने अपना शरीर बहुत फैलाया तब हनुमान जी सिकुड़ कर छोटे हो गये और उसके पेट में घुस कर, उस राक्षसी का उदर विदीर्ण कर डाला। और बाहिर निकल फिर अपने गन्तव्य स्थान के मार्ग को पकड़ा। सिंहिका का विनाश देख, आकाशचारी जीव—जो उसके मारे त्रस्त ही न थे—किन्तु नित्य उनमें से अनेक मारे जाते थे—बहुत प्रसन्न हुए और हनुमान की प्रशंसा करने लगे।

अन्त में हनुमान समुद्र के उस तट पर पहुँच गये और उस पर्वत पर पहुँचे जिस पर लङ्का बनी हुई थी। वहाँ पहुँच आपने अपना शरीर छोटा कर किया। पर्वत की चोटी पर बनी हुई, दृढ़ परकोटे से घिरी हुई और अनेक दुर्गों से रक्षित लङ्का को देख हनुमान जी अचम्भे में आ गये। हनुमान को खर्जूर और कर्णिकार वृक्षों से पूर्ण वेलाभूमि के समीप ही रक्तवर्ण की प्राचीर के ऊर्द्धभाग में समतल हर्म्यावली के उच्च शिखर दिखलाई पड़े। पर्वत शिखर स्थित दुर्गम लङ्कापुरी के अतुल वैभव और पराक्रम एवं दुर्ग आदि के संस्थान दृश्य को देख कर, हनुमान भीत और चकित हुए। उनका पहला उत्साह सहसा जाता रहा। सुरक्षित लङ्का का प्रभाव देख कर, उनको बड़ी चिन्ता हुई। उनके मुख से सहसा निकल पड़ा—"इस लङ्कापुरी को युद्ध में देवता भी नहीं जीत सकते। रावण रक्षित इस दुर्गम और भीषण लङ्कापुरी में महाबाहु श्रीरामचन्द्र आकर ही क्या कर सकेंगे।[१]"

हनुमान को यह दृढ़ विश्वास था कि "देवताओं में भी श्रीरामचन्द्र जी के तुल्य कोई नहीं है।"[२] किन्तु लङ्का की दृढ़ निर्माणशैली देख हनुमान का यह अटल विश्वास न जाने किधर चला गया। लङ्का के बहिर्देश में सुगन्धित नींव, प्रियङ्गु और करवीर के वृक्षों की श्रेणी जिधर शोभायमान थी हनुमान ने एक बार उस ओर देख कर, दीर्घ निश्वास परित्याग किया।

हनुमान जी की यह धारणा बहुत देर तक न रही। उनको फिर ज्ञान हुआ और रात होने पर मच्छर जैसा छोटा रूप धारण कर वे लङ्का में घुसने लगे[३]। लङ्का के आकार पर चढ़ हनुमान उसकी

१ "नहि युद्धेन वै लङ्का शक्याजेतुं सुरैरपि।
इमान्त्वविषमां लङ्कां दुर्गां रावणपालिताम्॥
प्राप्याऽपि सुमहाबाहुः किं करिष्यति राघवः॥"
सुन्दर काण्ड।

२ "नहि रामसमः कश्चित् विद्यते त्रिदिवेष्वपि।"

३ × × देहं संक्षिप्य मारुतिः।
पृषदंशकमात्रः सन्बभूवाद्भुत दर्शनः॥
स० २ श्लोक ४९ सु० का०।

शोभा देखने लगे और उसे रक्षकों से रक्षित देख फिर कहने लगे—"कुमुद, अङ्गद, सुषेन, मयन्द, द्विविद, सुग्रीव, ऋक्ष और मेरी तो इसमें गति हो तो हो पर और किसी के विषय में अभी नहीं कहा जा सकता, किन्तु इतने ही में रामचन्द्र जी के पराक्रम और लक्ष्मण के विक्रम को स्मरण कर हनुमान जी प्रसन्न हो गये। वे नगरी देखने के लिये आगे बढ़े ही थे कि उसी समय लङ्का नाम की राक्षसी ने हनुमान का मार्ग रोक कर उससे पूँछा—"तू कौन है और यहाँ किस लिये आया है? जब तक तेरे शरीर में प्राण है, तब तक तू ठीक ठीक सब बातें कह दे। रावण पालित लङ्का में अरे बन्दर तेरा मजाल नहीं कि तू घुस जाय।" यह सुन हनुमान ने कहा—"अच्छा मैं तो तुझे अपना हाल बताऊँगा पर तू तो यह बतला कि तू विरूप नयन वाली कौन है जो नगरद्वार पर बेधड़क खड़ी है और मेरा मार्ग रोक कर मुझे पहो टेढ़ी बातें सुना रही है?" हनुमान की बातें सुन, काम रूपिणी लङ्का ने क्रोध में भर परुष वचन कहे और बोली—"मेरा नाम लङ्का है, रावण पालित इस नगरी में बिना मेरी अनुमति के कोई नहीं घुस सकता।" यह सुन हनुमान ने कहा—

कुतूहलवश मैं तो प्राकार तोरणयुक्त लङ्का नगरी की शोभा देखने आया हूँ। मैं यहाँ के मुख्य मुख्य घरों और वाटिकाओं को देखूँगा।" यह सुन उस राक्षसी ने कहा—"अरे वानराधम! मुझे जीते बिना—राक्षसराज पालित इस नगरी में तू नहीं जाने पावेगा। यह कह और बड़ी जोर से गरज कर लङ्का ने हनुमान के एक थप्पड़ मारा! तब तो हनुमान के शरीर में भी गर्मी चढ़ गयी, किन्तु उसे स्त्री समझ उन्होंने बाएँ हाथ से उसके एक मुक्का जमाया। मुक्का के लगते ही वह भूमि पर लोटने लगी। यह देख हनुमान को दया आई और उसकी जान न ली। तब उसने कहा—"मैं लङ्का नामक नगरी हूँ। तुमने मुझे जीत कर केवल मुझे ही नहीं जीता—किन्तु ब्रह्मा के वर के अनुसार लङ्का निवासिनी सारी राक्षस मण्डली को जीत लिया है, क्योंकि ब्रह्मा ने मुझ से यह कह रखा है कि जब तुझे कोई वानर जीत ले, तब समझ लेना की अब राक्षसों पर भय आने वाला है। अतः अब तुम अपना काम करो।"

तदनन्तर नगरी का प्राकार नाँघ कर हनुमान जी नगरी में पैठे। रास्ते में उन्होंने अनेक रङ्ग ढङ्ग के राक्षसों को अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित देखा। हनुमान ने अनेक राक्षसों के घर देखे, परन्तु सीता से भेंट न हुई। तब हनुमान ने क्रमशः प्रहस्त, महापार्श्व, कुम्भकर्ण, विभीषण, महोदर, विरूपाक्ष, विद्युज्जिह्व, विद्युन्माली वज्रदंष्ट्र, शुक, सारण, मेघनाद, जम्बुमाली, सुमाली, रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, वज्रकाय, धूम्राक्ष, सम्पाती, विद्युद्रूप, भीम, घन, विघन, शुकनाभ, चक्र, शठ, कपट, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्ररोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, रसाद्री, द्विजिह्व, हस्तिमुख, कराल, विशाल और शोणिताक्ष के भवनों को देख के फिर रावण के भवनों में गये। वहाँ पर हनुमान ने पुष्पक विमान और नाना प्रकार के वेष भूषण धारण किये नाना प्रकार के रङ्ग ढङ्ग की स्त्रियाँ देखीं। परन्तु सीता न दिखलाई पड़ी।

एक भवन में हस्तिदन्त निर्मित उज्ज्वल सुवर्ण मण्डित सुन्दर पीठ पर बहुमूल्य आस्तरण बिछा हुआ था। उसके एक पार्श्व में शुभ्रचन्द्र मण्डल जैसा एक छत्र था और उसके नीचे महापराक्रमी उग्रमूर्ति रावण सो रहा था। उसको देख हनुमान डरे और उद्विग्न हो कुछ दूर पीछे सरक आये।[1] तब उनका भ्रम दूर हुआ। हनुमान ने फिर ढूँढ़ना आरम्भ किया। अन्तःपुर, शयन-गृह, पुष्पगृह, चित्रशाला, क्रीड़ागृह, गृहवाटिका की गलियाँ और विमान सब ही तो ढूँढ़े पर सीता का कहीं पता न चला। इस खोज के समय हनुमान ने रावण के अन्तःपुर में जो कुछ देखा उसका उल्लेख करना भी आवश्यक प्रतीत होता है। हनुमान ने उस विशालपुरी में रमणी समूह के विचित्र आमोद प्रमोद

---

१ परमोद्विग्नः सोऽपासर्पत् सुभीतवत्।

की सामग्री देखी। पानशाला में, शर्करासव, फलासव, पुष्पासव, प्रभृति भाँति भाँति की मदिराओं से भरे हुए बड़े बड़े सुवर्ण पात्र सजे हुए थे। रावण और उसकी स्त्रियों ने कुक्कुट मांस, और दीर्घ मिश्रित वराहमांस कुछ खा लिया था और कुछ छोड़ दिया। अम्लवस्तु और लवणपात्र एवं अनेक प्रकार के अर्द्धभक्षित फल चारों ओर बिखरे पड़े थे। नृत्य गीत से थकी हुई अनेक ललनाएँ आलस्य में इधर उधर लुढ़कपुढ़क रही थीं, और वस्त्र उनके शरीर से उतर गये थे। नाना स्थानों से आहरण किया हुआ रमणी समुदाय परस्पर भुजसूत्रों को ग्रथित कर विचित्र पुष्प खचित माला का दृश्य दिखला रहा था। हनुमान ने दूर से देखा कि एक ऐसी सर्वाधिक सुन्दरी स्त्री सो रही है, जो लङ्कापुरीश्वरी मन्दोदरी की स्वर्ण प्रतिमा जैसी कान्ति को धारण किये हुए थी। हनुमान ने अपने मन में सोचा यही सीता है। अपने यत्न को सफल जान वे बहुत प्रसन्न हुए। उनके नेत्रों से आँसू गिर पड़े। किन्तु वह आनन्द बहुत देर तक न ठहरने पाया। क्योंकि उन्हें झट यह ध्यान आया कि श्रीरामचन्द्र के विरह में सीता इस प्रकार नहीं सो सकती ऐसे भूषण और परिच्छंद का धारण करना एवं इस प्रकार का सौम्य शान्तिमय भाव पति परायण सीता के पक्ष में असम्भव है। इस विचार के उत्पन्न होते ही हनुमान जी फिर उदास हो गये और फिर सीता को ढूँढ़ने लगे, पर सीता किसी स्थान में न मिली। रावण के अन्तःपुर में नग्न स्त्रियों को देख हनुमान जी के मन में धर्म का बड़ा भय उत्पन्न हुआ। वे सोचने लगे—यह परस्त्रीदारावलोकन अवश्य मेरे धर्म को लुप्त कर देगा। यह विचार उनके मन में बड़े वेग से घूमने लगा, किन्तु धीरता के साथ उन्होंने अपने हृदय को ढूँढ़ा, वहाँ उन्हें कोई कलङ्क की रेखा न दिखलाई दी।

फिर हनुमान सोचने लगे, हा! जब सीता को रावण हर कर ले जा रहा था, तब क्या वे स्वर्ग के एक स्खलित मुक्ताहार की तरह समुद्र में गिर पड़ीं? अथवा पिञ्जरावद्ध सारिका की तरह अनशन से प्राण त्याग दिये। हो सकता है रावण के उत्पीड़न से उन्होंने आत्महत्या कर ली हो। जो राम सीता के शोक से उन्मत्त हो अशोक पुष्प-गुच्छक को आलिङ्गन करने के लिये दौड़ते हैं, रात दिन जिनके नेत्रों में निद्रा नहीं आती; स्वप्न में भी जिनके मुख से "सीता"—यह मधुर शब्द निकलता रहता है, उस विरह विधुर प्रभु के सामने जा कर हनुमान कहेंगे क्या? उत्ताल तरङ्ग क्रीड़ोन्मत्त महासमुद्र की वेलाभूमि पर जो विशाल वानरवाहिनी इसके मुख से सीता का संवाद पाने के लिये उत्कण्ठित चित्त से आकाश की ओर देख रही है, उसके पास जाकर यह क्या कहेंगे? अनुसन्धान श्रान्त हनुमान के मन के ऊपर निराशा की एक धवल घटा छा गई, किन्तु ज़रा सी देर के बाद ही आशा ने हाथ पकड़ कर उन्हें उठा लिया। उन्होंने कहा—"काम को अधूरा छोड़ कर, इस प्रकार निराश हो बैठना कापुरुषत्व का लक्षण है। मैं फिर अनुसन्धान करूँगा। कदाचित् मेरे देखने ही में त्रुटि रह गयी हो!"

हनुमान लङ्का के विचित्र समूह और विचित्र काननराजि को दुबारा घूम घूम कर देखने लगे। आशा के मृदुमन्त्र ने मानों उनमें पुनर्वार नवजीवन का सञ्चार कर दिया। राक्षस-प्रासादों के प्रत्येक कोने में उन्होंने अच्छे प्रकार खोज की, किन्तु सीता के दर्शन न पाये। राक्षसपुरी की विशालता उनके निकट शून्यमय बोध होने लगी। कहीं भी सीता नहीं! सीता जीवित नहीं! हा! गम्भीर नैराश्य फिर उनके हृदय में आ गयी। थके हुए पैरों से धीरे धीरे वे चलने लगे, पर स्थिर न कर सके कि किधर चलना होगा।

दोनों राजकुमार और वानर मण्डली मेरी प्रतीक्षा में हैं। मैं उद्यत आशा मञ्जरी को छिन्न नहीं करूँगा। प्रभु रामचन्द्र निराश होने पर, प्राण त्याग कर देंगे और लक्ष्मण अपने अग्नि तुल्य वाणों से अपने को भस्मीभूत करेंगे, सुग्रीव की मैत्री निष्फल होगी। मैं अकृत कार्य्य होकर, यदि

वापिस जाऊँगा तो यह सकल विभ्राट अवश्यम्भावी है। यह विचार हनुमान विषण्ण हो गये। कभी वे रावण को मारने के लिये क्रोध से उन्मत्त हो उठते, कभी निश्चित करते—

"चितां कृत्वा प्रवेद्यामि।"

अर्थात् मैं प्रज्ज्वलित चिता में प्राण विसर्जन करूँगा—अथवा सागर तट पर पहुँच कर अनशन से प्राण त्याग दूंगा।

"शरीरं भक्षयिष्यन्ति वायसाः श्वापदानि च।"

मेरे शरीर को काक और श्वापदगण भक्षण करेंगे।" कभी सोचते—मैं तपस्वी हो कर वन में जीवन व्यतीत करूँगा।"

अपने विपुल शारीरिक परिश्रम को सम्पूर्णरूप से व्यर्थ देख, हनुमान अध्यात्म शक्ति के उद्बोधन में चेष्टावान हुए।

"मेरे निराश होने से बहुत व्यक्तियों की आशा निष्फल हो जायगी; क्योंकि बहुत व्यक्तियों का शान्ति-सुख मेरी सफलता पर निर्भर है। इसलिये चिता में प्रवेश करना, अथवा तपस्वी बन बैठना"—हनुमान ने विचारा—"मेरे लिये ठीक नहीं है। मेरे ऊपर जिस महान् कार्य का भार न्यस्त है, उसके पूरा करने में, मैं कोई बात उठा न रखूँगा। सुतराम्—

"इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः।"

अर्थात् मैं इसी जगह इन्द्रियों को दमन कर के और संयताहारी बन कर समय की प्रतीक्षा करूँगा। उस समय हनुमान जी हाथ जोड़ कर ध्यान में मग्न हो गये, उनके मृदु विकम्पित मुख से यह श्लोक निकला—

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो,
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः॥

अर्थात् हनुमान ने राम, लक्ष्मण, सीता, रुद्र, यम, इन्द्र आदि को प्रणाम, सुग्रीव को नमस्कार किया और वे ध्यानों की तरह स्थिर होगये। जब उनकी निर्मल कर्त्तव्यबुद्धि और कष्ट सहिष्णुप्रकृति में इस प्रकार धर्म के प्रति निर्भरता का भाव सम्पूर्ण रूप से जागृत हो गया, तब अचानक अशोकवन सम्बन्धी तरु श्रेणी की श्यामायमान दृश्यावली की ओर उनके नेत्र पहुँच गये।

इस बार वे बहुत प्रसन्न हुए। उनका सकल श्रम अब सार्थक हुआ। सफलता की पूर्व छाया उनके मन पर पड़ी। वे अशोक वाटिका में घुसे और वहाँ पर एक पर्वत के निकट एक नदी देखी। उसके पास एक शिंशपा वृक्ष दीख पड़ा। उस पर चढ़ कर हनुमान देखने लगे तो एक गोलगृह दिखलाई पड़ा। उसमें राक्षसियों से घिरी सीता को देखा कि वे सुखार्हा होने पर भी दुःख सन्तप्ता हैं, मण्डनार्हा होने पर भी-अमण्डिता हैं। वे उपवासों से कृश हो रही हैं और पङ्कदग्धा पद्मिनी की तरह ("विभाति न विभाति च") प्रकाशित होने पर भी प्रकाशित नहीं हैं। उनके दोनों नेत्र अश्रुपूर्ण हैं। फटा हुआ कौशेय वस्त्र उनके शरीर पर है, उनके चारों ओर भयानक स्वप्न की तरह एकाक्षी, शङ्कुकर्णा, लम्बितस्तनी और ध्वस्तकेशी आदि विकट राक्षसियों की टोली बैठी हुई है। मानों नारकीय परिवार ने एक स्वर्गीय सुषमा का परिवेष्टन कर रखा है; किन्तु सीता की उस दीन और तापस मूर्त्ति में भी एक अपूर्व धैर्य्य विराजमान था।

नात्यर्थं क्षुभ्यते देवी गङ्गेव जलदागमे।

अर्थात् वर्षाकाल में गङ्गा की तरह ये बहुत क्षोभ को प्राप्त नहीं होती हैं। इतने में चन्द्रोदय हुआ। रात थोड़ी रह गई। रावण जागा और रात्रि ही में स्त्रियों को साथ ले कर सीता के पास आया। उसको आते देख हनुमान डरे और वृक्ष की सघन शाखाओं में छिप गये।[1] सीता रावण को देख उसी प्रकार छटपटाने लगी जिस प्रकार

[1] "स तथाप्युग्र तेजाः सन् निर्धूतस्तस्यतेजसा।
पत्रे गुह्यान्तरे सक्तो मतिमान् संवृतो भवत्॥"

खूँटे में बँधी गाय सिंह को देख छटपटाती है। रावण ने आकर सीता को बहुतेरा समझाया; किन्तु सीता ने अपने और रावण के बीच में तिनके को ओट कर और नीची गरदन करके कहा:—

सीता—अरे दुष्ट! क्या तू नहीं जानता कि मैं वीर शिरोमणि राम की पत्नी हूँ। तुझसे शृगालों का आँख उठा कर, अपनी ओर देखना भी, मैं अपना अपमान समझती हूँ। यह न समझ कि मेरा यहाँ रहना रामचन्द्र को न मालूम होगा। थोड़े ही दिनों में देखना तेरी क्या दुर्दशा होती है। अरे नीच! तेरा शीघ्र ही नाश होने वाला है। इसीसे तेरी बुद्धि पर परदा पड़ा हुआ है।

सीता के ऐसे कड़े शब्द सुन कर रावण ने सीता से कहा "इस तिरस्कार के लिये तो तू मार डालने ही योग्य है। परन्तु मैं दो महिने की अवधि तुझे और देता हूँ। यदि दो महिने में तू मेरा कहा न मानेगी तो तू अवश्य मारी जायगी।" इस पर सीता ने कहा—

सीता—तूने मुझे चोरी से हरा है। मैं तुझ को नष्ट कर सकती हूँ, पर एक तो राम की आज्ञा नहीं और दूसरे मैंने तपस्या की रक्षा की है।

यह सुन रावण ने घूँसा उठा कर सीता को मारना चाहा।

धान्यमालिनी राक्षसी रावण से लिपट कर बोली—"आओ मेरे साथ विहार करो। इस मानुषी का ध्यान छोड़ दो। यह तुम्हें नहीं चाहती। यह सुन रावण सब स्त्रियों के साथ लौट गया और राक्षसियों से कहा कि तुम लोग समझा बुझा कर, सीता को मेरे वस में लाओ।

रावण के चले जाने पर राक्षसियाँ सीता को समझाने लगीं पर सीता ने कहा—

सीता—जैसे सुवर्चला का सूर्य में, शची का इन्द्र में, अरुन्धती का वशिष्ठ में, रोहिणी का चन्द्र में, लोपामुद्रा का अगस्त्य में सुकन्या का च्यवन में, मदयन्ती का सौदास में, केशिनी का सगर में और दमयन्ती का नल में अनुराग था, उसी प्रकार मेरा अनुराग राम में है।

यह सुन सब राक्षसियाँ धमकाने लगीं। हनुमान पेड़ पर से सुन रहे थे। सीता वहाँ से उठ कर शिंशुपा वृक्ष के नीचे चली गई।

किसी ने शूल उठा कर सीता की प्लीहा को उत्पाटन करना चाहा, किसी ने उसको घूँसा दिखा कर गर्जन किया, किसी ने बड़ा भारी शूल घुमा कर उसको डराया और कोई कोई माँस लोलुप श्येन पक्षी की तरह उसके सम्मुख ताण्डव लीला प्रकट करने लगीं। उधर लम्बस्तनी विकटा राक्षसी घूँसा दिखा और डरा कर बोली—इन्द्र की ताब नहीं कि यहाँ आकर तुझे बचावे। स्त्रियों का यौवन सदा नहीं रहता। जब तक यौवन है, तब तक सुख लूट ले। रावण के सुरम्य उद्यान, उपवन और पर्वतों पर विचरण कर। यदि न मानेगी तो तेरा कलेजा काढ़ कर हम सब तुझे खा डालेंगी।[१]

क्रूरदर्शना चण्डादेवी "भ्रामयन्ती महच्छूलम्" सीता के मुख के सामने बड़े त्रिशूल को तान कर बोली—"इस त्रासोत्कम्पपयोधरा हरिण शावाक्षी को देख कर मेरा बड़ा मन चलता है कि इसकी यकृत प्लीहा और कलेजा चीर कर खा जाऊँ।" प्रघसा ने इसका अनुमोदन किया और अजामुखी बोली—"पहले जाकर मैं मदिरा ले आऊँ, तब हम सब मिल बाँट कर इसे खा डालेंगी।" यह सुन शूर्पणखा ताण्डव नृत्य करके बोली—"बहुत ठीक, मदिरा शीघ्र ला।[२]"

इन सब हाव भावों को देख सुन कर सीता की, उस सुगम्भीर धीरता का बाँध टूट गया। वह धैर्य्य छोड़ कर रोने लगी।[३] राक्षसियों द्वारा अपमानिता सीता धूलि-लुण्ठित हो, रोने लगी।

१ उत्पाट्य वा ते हृदयं भक्षयिष्यामि मैथिली।

२ सुरा चानीयतां क्षिप्रम्।

३ "धैर्य्यमुत्सृज्य रोदिति।"

किन्तु इस उत्कट विपद् राशि में भी वह पवित्र यज्ञाग्नि की भाँति अपनी पुण्यप्रभा से प्रदीप्त थी।

उसके अश्रुसिक्त मुख पर स्वर्गीय तेज झलकता था। हनुमान इस विपद्गता साध्वी की ओर पूजक की तरह भक्ति भरे नेत्रों से दृष्टिपात कर रहे थे। उनके दोनों नेत्र आँसुओं से छल छल करने लगे।

हनुमान उसी शिंशपा वृक्ष पर बैठे थे जिसके नीचे सीता आ कर बैठ गई थी। वृक्ष पर बैठ कर वे सोचने लगे कि किस उपाय से सीता के साथ वार्तालाप करना होगा। बहुत सोचने पर भी वे कोई सिद्धान्त स्थिर न कर सके। इतने ही में सीता को ताकने वाली चेरियों में से त्रिजटा राक्षसी ने अपने स्वप्न की बातें कहीं। उसने कहा—

त्रिजटा—मैंने स्वप्न में देखा है कि हाथी दाँत के बने और सहस्र घोड़ों से जुते विमान पर श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण किये रामचन्द्र चढ़े हैं और लक्ष्मण उनके साथ हैं। फिर सागर से घिरे हुए श्वेत पर्वत पर श्वेत वस्त्र धारण कर सीता बैठी हैं और रावण सपरिवार ऊँट, गधा आदि सवारियों पर चढ़ नङ्गे सिर नङ्गे बदन दक्षिण की ओर चला जा रहा है।

उधर सीता रावण की कही बातें विचार विचार कर मन ही मन विकल हो उठीं और त्रिजटा से बोलीं—"अब बहुत हो चुका। मुझसे अधिक नहीं सहा जाता। तू जाकर लकड़ियाँ बीन ला और एक चिता तैयार कर दे, जिसमें बैठ कर मैं जल जाऊँ।"

हनुमान उस वृक्ष पर अभी बैठे ही थे। शेष रजनी में निद्रारहिता सीता अशोक वृक्ष की शाखा का सहारा ले खड़ी हो गई। सुकेशी सीता का कुटिल केशगुच्छ हनुमान के कर्ण प्रान्त के पास ही झूल रहा था। उधर सीता की रखवाली करने वाली राक्षसियाँ वहाँ से कुछ दूर हट कर त्रिजटा को घेर कर बार बार स्वप्न की बातें पूँछ रही थीं, इतने में सीता के वाम अङ्ग फड़के। इसे शुभ की पूर्व सूचना समझ सीता के मुखमण्डल का भाव बदला। तब हनुमान ने इसको सुअवसर समझ कहा:—

हनुमान—हे पद्मपलाशाक्षि! क्लिन्न कौशेयवासिनि! अनिन्दिते! आप कौन हैं? पुण्डरीक पलाश दल से जलबिन्दु के पतन की तरह आपके दोनों सुन्दर नेत्रों से अश्रु क्यों गिर रहे हैं।

हनुमान के आगमन से सीता की निविड़ विपद् राशि का अन्त होगा—इस प्रकार की आशा की सूचना सीता के मन में होगई थी। अन्धकारमय अशोक वन के चित्र को मानों एक प्रकार की किरण रेखा ने अपने प्रवेश द्वारा उज्ज्वल कर दिया, किन्तु हनुमानको निकटवर्ती देख कर पहली बार रावण के भय से सीता आतङ्कित हो गयीं। आशङ्का से उन्होंने अपनी कुन्दशुभ्र अंगुलियों द्वारा पकड़ी हुई अशोक की शाखा छोड़ दी। वे खड़ी हो गई और भय से उनका शरीर अवसन्न हो गया; किन्तु उस भय के बीच में भी मानों उन्होंने एक प्रकार का आनन्द पाया। वह बार बार मन में सोचने लगी—इस वानर को देख कर मेरे चित्त में उल्लास क्यों उत्पन्न होता है?

हनुमान ने इस समय सीता के विश्वास के लिये श्रीरामचन्द्रजी का समस्त इतिहास उनको सुनाया। श्यामवर्ण राम और "सुवर्णच्छवि" लक्ष्मण की देह का समस्त सौष्ठव वर्णन किया। तब सीता को विश्वास हुआ कि हनुमान श्रीरामचन्द्रजी के भेजे हुए दूत हैं। रोते रोते सीता ने हनुमान से सैकड़ों प्रश्न किये। श्रीरामचन्द्रजी का कार्य्यकलाप कैसा है, उनके चिन्ह कौन कौन हैं? राम तथा सुग्रीव का मिलाप क्यों कर हुआ? आदि अनेक प्रश्न सीता जी ने पूँछे। इन सब प्रश्नों के यथोचित उत्तर देकर हनुमान बोले:—

हनुमान—माल्यवान् पर्वत और गोकर्ण पर्वत पर मेरे पिता केसरी जाते थे। उनको देवर्षियों ने आज्ञा दी कि समुद्र के किसी पवित्र तीर्थ में

शम्बसादन नामक दैत्य रहता है। उसे तुम मारो। मेरे पिता ने उसे मारा। उसी केसरी के क्षेत्र अञ्जना नामक पत्नी में वायु के औरस से मेरी उत्पत्ति है और अपने कर्म से, मैं हनुमान नाम से प्रसिद्ध हूँ। यह कह कर हनुमान ने सीता को राम की अँगूठी दी।

सीता—भला! यह तो बतलाओ राम मेरे लिये यत्न क्यों नहीं करते?

हनुमान— उनको तुम्हारा पता नहीं है।

सीता—मुझे यहाँ आये दस मास बीत गये हैं और अब केवल दो ही महीने शेष रह गये हैं। रावण ने दो महीने का समय दिया है। यदि इतने में राम न आवेंगे तो मुझे जीवित न पावेंगे। विभीषण ने रावण से कहा था कि सीता रामचन्द्र को दे डालो। पर उसको यह बात न भाई। यह बात विभीषण की स्त्री ने अपनी बड़ी लड़की कला से मेरे पास कहला भेजी थी। अविन्ध्य नामक एक वृद्ध राक्षस ने भी यही कहा था; परन्तु उस दुष्ट ने उस स्त्री का कहना न माना।

हनुमान—जब रामचन्द्र यह संवाद पावेंगे तब तुरन्त यहाँ आ कर और रावण का नाश कर तुम्हें ले जावेंगे। अथवा तुम चाहो तो मेरी पीठ पर चढ़ो। मैं तुमको आज ही राम के पास पहुँचा दूँगा।

सीता—तुम कैसे मुझे ले जा सकते हो। यह बात तो तुम अपने वानरी स्वभाव के वशवर्ती होकर कह रहे हो। यद्यपि तुम मुझे ले तो चल सकते हो, तथापि मेरी समझ में मेरा तुम्हारे साथ चलना ठीक नहीं।

हनुमान—अच्छा जो साथ नहीं चलतीं तो मुझे कोई ऐसा अपना चिन्ह दो जिससे तुम्हारी खोज मिलने का राम को विश्वास हो।

सीता—हनुमान! रामचन्द्र से कहना कि चित्रकूट पर्वत के पास वाले तापसाश्रम वाली घटना को स्मरण करें।

यह कह कर सीता ने उस गुप्त घटना का वृत्तान्त हनुमान को सुनाया। सीता बोली मन्दाकिनी नदी के तटवर्ती आश्रम में राम लक्ष्मण और मैं—तीनों रहते थे। एक दिन की बात है राम जल क्रीड़ा कर मेरी गोद में सो रहे थे। उस समय इन्द्रपुत्र जयन्त काक का भेष धारण कर, मुझे चोंचों के आघात से विकल करने लगा। मैंने उसे ढेले से मारा। वह वहीं छिप गया और फिर मुझे असावधान देख चोंचें मारने लगा। जब इस प्रकार कई बार मुझे बहुत दुःखी किया तब मुझे क्रोध आया जिससे मेरी करधनी नीचे खसक पड़ी। जब मैं उसे ऊपर चढ़ाने लगी, तब मेरा वस्त्र भी खसक गया। यह देख रामचन्द्र हँस पड़े और मैं लज्जित हुई। मैं पहले से थकी हुई थी। अतः मैं उनकी गोद में सो गई। उन्होंने मेरा समाश्वासन किया, मैं देर तक उनकी गोद में सोती रही। फिर वे मेरी गोद में सोये। जब मैं उनकी गोद से सो कर उठी तब वह काक फ़िर आया और उसने मेरे स्तनों को विदीर्ण कर डाला जिससे रक्त बह चला। इस पर राम ने कोप कर चटाई से कुश निकाल ब्रह्मास्त्र से उसे अभिमंत्रित कर, काक पर चलाया। इन्द्र का पुत्र भागा और उस अस्त्र ने उसका पीछा किया।—तीनों लोकों में घूम फिर कर भी जब कहीं उसकी रक्षा न हुई, तब वह अपने पिता के पास गया। जब उन्होंने भी उसे शरण न दी तब वह राम ही की शरण में आया और चरणों पर गिर पड़ा। रामचन्द्र ने उसकी दहिनी आँख फोड़ कर उसे क्षमा कर दिया।" यह कह कर सीता ने हनुमान से फिर कहा:—

सीता—जिन रामचन्द्र ने चोंच मारने वाले कौए पर ब्रह्मास्त्र चलाया, वे मेरे हरने वाले को क्यों क्षमा कर रहे हैं?

हनुमान—अभी तक उनको विदित न था—अब अवश्य ही यत्न करेंगे।

फिर सीता ने राम को प्रणाम और लक्ष्मण से कुशल कहने के लिये कह कर, अपना चूड़ामणि उतार हनुमान को दिया। सीता ने कहा:—

सीता—कौए का परिचय बतला कर, उनसे फिर कहना कि एक बार जब मेरा तिलक मिट गया था ; तब राम ने मैनसिल को घिस कर मेरे तिलक लगाया था।

हनुमान सीता के पास से अभिज्ञान स्वरूप चूड़ामणि और परिचय के लिये जयन्त काक का आख्यान सुन विदा हुए ; किन्तु रावण का सैन्य-बल उसकी सभा, उसका मंत्रणा बल, आदि कैसे हैं—इन बातों के जानने के लिये हनुमान ने उपाय सोचा। इस विषय में सुग्रीव अथवा राम ने उन-से कुछ भी नहीं कहा था। तो भी अपने दूतकर्म को सब प्रकार से सफल करने के लिये, रावणके साथ भेंट करना उन्हें परमावश्यक प्रतीत हुआ। यदि हनुमान तस्कर की तरह लङ्का से भाग आते तो यह कार्य उनके जगद्विजयी महाप्रतापशाली प्रभु श्रीराम के भृत्य की योग्यता के अनुरूप न होता। अतः वे अशोकवन के वृक्षों और लताओं को चीर फाड़ कर लङ्कावासियों की दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करने लगे। कोलाहल सुन कर राक्षसियाँ जागीं और विकराल देहधारी वानर को देख सीता से पूँछने लगीं:—

राक्षसियाँ—यह वानर कौन है जिसने तुम से बात चीत की है ?

सीता—मैं क्या जानूँ। इसे तो तुम्हीं सब जान सकती हो।

तब तो वे सब रावण के पास गईं और समाचार दिया कि एक वानर आया है। उसने सीता से बात चीत की है और उनके स्थान को छोड़, सम्पूर्ण प्रमदावन को उसने विध्वंस कर डाला है। यह नहीं मालूम वह है कौन ?

यह सुन रावण बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने अस्सी हज़ार राक्षसों की सेना भेजी। हनुमान एक बड़े भारी वृक्ष से उन सब का नाश कर फिर वहीं जा बैठे। उनमें से एक दो राक्षस जो बच गये थे—उन्होंने रावण से जा कर सारा हाल कहा। तब तो कुपित हो रावण ने प्रहस्तपुत्र जम्बुमालि को भेजा। तब तक हनुमान ने चैत्य-प्रासाद अर्थात् राक्षसों के देव मन्दिर को भी ढहा दिया और आग लगा कर वहाँ के रक्षक राक्षसों को मार डाला। इतने में जम्बुमालि पहुँचा और हनुमान को देख उन पर बाणों की वर्षा करने लगा। तब हनुमान ने एक शिला और एक साखू का वृक्ष उसके ऊपर फेंका। पर उस ने मारे बाणों के उन दोनों को चूर चूरकर दिया। तब हनुमान ने वृक्ष के आघात से उसे उसके रथ सहित नष्ट कर डाला। जम्बुमालि के मारे जाने के समाचार सुन रावण ने मंत्री के सात पुत्रों को भेजा। वे भी हनुमान द्वारा मारे गये। तब बहुत सोच विचार कर रावण ने विरूपाक्ष यूपाक्ष, दुर्द्धर्ष और भासकर्ण नाम के पाँच सेना-नायकों को भेजा। उनसे यह कह दिया कि सावधानी से उसका शासन करना, क्योंकि मैंने वालि, सुग्रीव, जाम्बवान, नील, द्विविद आदि वानरों को देखा है, पर ऐसा पराक्रमी किसी को नहीं पाया। न जाने यह कौन है। यह सुन वे सब अस्त्र शस्त्र ले ले कर निकले और तोरण पर बैठे हनुमान को देख दुर्द्धर्ष बाणों से हनुमान पर वर्षा करने लगे। हनुमान आकाश को उड़ चले। उनके पीछे पीछे दुर्द्धर्ष भी उन्हें मारते मारते चला। तब हनुमान उसके रथ पर कूदे और उसे रथ सहित चूर चूर कर डाला। उसको मरते देख उसके साथी यूपाक्ष और विरूपाक्ष दोनों ही मुग्दर ले कर हनुमान को मारने के लिये झपटे। तब हनुमान ने साखू का पेड़ उखाड़ कर, उससे उन दोनों को भी मार डाला। यह देख प्रघस ने पटा और भासकर्ण ने शूल से हनुमान पर आक्रमण किया। तब हनुमान ने एक शृङ्ग उखाड़ कर उसीसे उन दोनों को भी मार डाला। उन पाँचों के मारे जाने का संवाद सुन कर, रावण ने अपने पुत्र अक्षयकुमार को भेजा। उसने जाकर हनुमान को तोरण पर बैठा देख उन पर तीन बाण चलाये, पर उन तीनों के लगने पर भी हनुमान विचलित न हुए। तब उस ने तीन बाण और चलाये और फिर तो वह बाणों की वर्षा करने लगा। हनुमान आकाश की ओर उड़े। वह भी बाण चलाता उनके पीछे पीछे हो—

लिया। यह देख हनुमान चकित हुए और उसके घोड़ों को मार डाला। तब वह धनुष और तलवार ले पैदल युद्ध करने लगा। हनुमान ने उसके दोनों पैरों को पकड़ कर और बड़े ज़ोर से घुमा कर, पृथिवी पर दे पटका और आप भी उसके ऊपर कूद पड़े, जिससे वह तुरन्त वहीं मर कर रह गया।

अक्षय कुमार का मरना सुन रावण ने मेघनाद को भेजा। दोनों में घोर युद्ध हुआ। जब मेघनाद ने देखा कि मेरे सब बाण निष्फल हो रहे हैं, तब वह समझ गया कि यह वानर अवध्य है, पर किसी प्रकार इसे चेष्टा रहित करना चाहिये। ऐसा सोच उसने हनुमान के ऊपर ब्रह्मास्त्र चलाया उसके चलाने से हनुमान पितामह के सम्मान के लिये, निश्चेष्ट हो कर गिर पड़े। तब राक्षसों ने सन की रस्सी आदि बन्धनों से उन्हें बाँधा। रस्सियों से बाँधते ही ब्रह्मास्त्र का बन्धन छूट गया, क्योंकि वह बन्धन दूसरे का अनुसरण नहीं करता। यह देख मेघनाद पछता कर कहने लगा—"इन राक्षसों ने मेरे अस्त्रबन्धन को व्यर्थ कर दिया। अब हम लोगों को यह फिर झगड़े में डाल देगा। यह विचार मेघनाद ने हनुमान को लेजाकर रावण के सामने उपस्थित किया। रावण उस समय प्रहस्त, निकुम्भ नामक मंत्रियों के साथ सभा में बैठा था। हनुमान को देख उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। हनुमान को देखते ही रावण के मन में बड़ी भारी शङ्का उत्पन्न हुई। वह सोचने लगा, कहीं यह नन्दी तो नहीं है जिसने हँसने के कारण कैलास पर मुझे शाप दिया था। अथवा यह बाणासुर तो नहीं है। इस सन्देह में पड़ रावण ने प्रहस्त द्वारा हनुमान से वृत्तान्त पूँछा। प्रहस्त ने उनसे उनका नाम और बाग़ उजाड़ने और राक्षसों के मारने का कारण पूँछा। साथ ही यह भी पूँछा कि वे विष्णु, इन्द्र, किम्वा कुबेर में से किस के दूत हैं।

इन प्रश्नों के उत्तर में हनुमान ने कहा—न तो कुबेर के साथ मेरी मैत्री है, न मैं विष्णु का भेजा हुआ हूँ। मैं तो श्रीरामचन्द्र के काम के लिये यहाँ आया हूँ। आप से मिलने के लिये मैंने उपवन उजाड़ा और अपने शरीर की रक्षा के लिये राक्षसों को मारा। मुझे कोई भी बाँध नहीं सकता। देखो ब्रह्मास्त्र से छूटने पर भी मैं इसीलिये बन्धा हुआ हूँ जिससे मैं रावण को देखूँ।" रावण की सभा में रावण के अतुल ऐश्वर्य और विपुल प्रताप को देख कर हनुमान विस्मित हो गये थे, किन्तु निर्भयता के साथ उन्होंने रावण को धर्म सङ्गत उपदेश दिया। वे बोले:—

हनुमान—रावण! मेरा कहना मान कर जानकी राम को दे दो। नहीं तो तुम्हारा काल आ पहुँचा।

यह सुन रावण ने हनुमान को प्राणदण्ड की आज्ञा सुनाई। तब बीच में विभीषण पड़े और बोले:—

विभीषण—दूत को मारना नीति के विरुद्ध है। दूत को अङ्ग भङ्ग कर देना, कोड़े मारना, सिर मुड़ा देना और शरीर के किसी चिन्ह का नाश कर देना ही बहुत है।

रावण के मन में विभीषण का कहना आगया और उसने हनुमान की पूँछ जलाने की आज्ञा दी। राक्षसों ने उनकी पूँछ में कपड़ा लपेट कर, उसे फूँक दिया और उन्हें नगर में घुमाने के लिये ले चले।

सीता की रखवाली के लिये जो राक्षसियाँ नियुक्त थीं—उन्होंने सीता से कहा कि जिस बन्दर से तुम बातचीत करती थीं—उसकी पूँछ जलाकर राक्षस उसे नगर में घुमा रहे हैं। यह सुन हनुमान के मङ्गलार्थ सीता ने अग्निदेव की प्रार्थना की। अग्निदेव ने हनुमान की रक्षा की। तब तो हनुमान प्रसन्न हुए और अपना बन्धन तोड़ वे फाटक पर चढ़ गये। वहाँ से एक परिघ उठा कर उन्होंने राक्षसों को मारना आरम्भ किया। उन सब को मार और लङ्का को भस्म करने के विचार से उन्होंने प्रहस्त, महापार्श्व, वज्रदंष्ट्र, शुक, सारण, इन्द्रजीत, जम्बुमाली, सुमाली, रश्मिकेतु,

हनुमानजी का लंका दहन करना

सूर्य्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, दंष्ट्ररोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, ध्वजग्रीव, विद्युज्जिह्व, घोर, हस्तिमुख, कराल, विशाल, शोणिताक्ष, कुम्भकर्ण, मकराक्ष, नरान्तक, निकुम्भ, यज्ञशत्रु, और ब्रह्मशत्रु के घरों को फूँका। केवल विभीषण का घर छोड़ दिया। लङ्का फुक गयी, तब हनुमान ने रावण के घर में भी आग लगा दी। जैसे महादेव के द्वारा त्रिपुर जलाया गया था; वैसे ही हनुमान के द्वारा लङ्का जलाई गयी। राक्षस और स्त्रियाँ रोती भींकती इधर उधर फिरने लगीं।

(जब लङ्का जली तब हनुमान के मन में सन्देह हुआ कि कहीं हड़बड़ी में सीता भी न जल गयी हों। इस विचार के मन में उत्पन्न होते ही हनुमान अपने को बहुत धिक्कारने लगे। वे मन ही मन कहने लगे—"क्रोध से बढ़ कर मनुष्य का दूसरा शत्रु कोइ नहीं है। ऐसा कोई अनकरना काम नहीं जो क्रोधी मनुष्य न कर सके। यहाँ तक कि क्रोध में भर कर मनुष्य मित्रों को भी कुवाच्य कह डालते हैं और यहां क्यों—गुरु तक को मार डालते हैं। क्रोधी के लिये न तो कोई अनकरना काम है और न कोई अनकहनी बात है। क्रोधी सभी कुछ कर सकता है और सभी कुछ कह सकता है। मनुष्य वही है जो क्रोध उत्पन्न होने पर भी बेवश न हो जाय, किन्तु क्रोध के वेग को रोक ले। मुझसे बढ़ कर दुर्बुद्धि और निर्लज्ज कौन हो सकता है जिसने क्रोध के वशीभूत होकर बनावनाया काम मिट्टी कर दिया और सीता को भस्म कर डाला। हा! लङ्का जलाते समय मुझे जानकी का ध्यान क्यों न रहा। अब मैं लौट कर सुग्रीव और राम को अपना मुख क्योंकर दिखाऊँ? क्योंकि सीता के विनष्ट होने का संवाद सुन कर दोनों भाई राम लक्ष्मण कभी जीवित नहीं रह सकते और उन दोनों के न रहने से बान्धु बान्धवों सहित सुग्रीव भी नहीं रह सकते। फिर रामलक्ष्मण के न रहने का समाचार सुन भरत और शत्रुघ्न भी न रहेंगे। अब इक्ष्वाकु कुल का नाश निश्चित हो जान पड़ता है और इस सर्वनाश की जड़ मैं ही अभागा हूँ।" इतने में हनुमान को स्मरण हुआ कि जिस अग्नि ने मेरी पूँछ को नहीं जलाया वह भला सीता को कैसे भस्म कर सकता है। इसी बीच में चारणों का शब्द सुन पड़ा कि बड़े आश्चर्य की बात है कि हनुमान ने सारी लङ्का फूक दी, पर सीता न जली। ऋषियों के इन वाक्यों को सुनकर हनुमान के मन की सारी उदासी दूर हुई और उन्होंने पूर्ववत् प्रसन्न हो सीता के समीप जाकर उनको प्रणाम किया। फिर बोले—"यह बड़े आनन्द की बात हुई कि आप बच गयीं।"

तदनन्तर हनुमान सीता जी से विदा हो अरिष्ट नाम पर्वत पर—जो दस योजन के विस्तार का था और ऊँचाई में तीन योजन था, कूद कर चढ़ गये तथा उत्तर की ओर चले हनुमान के बोझ से वह पर्वत भूमि में धँस गया और भूमि के बराबर होगया। मार्ग में मैनाक का आतिथ्य ग्रहण करते वे इस पार आ गये।)

ज्यों हीं हनुमान सागर को लाँघ, स्वमार्ग-प्रेक्षी वानर मण्डली के निकट सीता का संवाद ले कर पहुँचे, त्यों हीं वह निराशामग्न मृतकल्प कपिकुल एक विशाल आनन्दकलरव से सहसा जाग उठा और उनकी अभ्यर्थना के लिये नाच और गीत मे मग्न हो गया।

उन्हें दूर ही से देख कर जाम्बवन्त ने जान लिया और कहा कि हनुमान कार्यसिद्ध करके आ रहे हैं। इतने में हनुमान उनके पास पहुँच गये और अङ्गद तथा जाम्बवान आदि वृद्ध वानरों को प्रणाम कर, संक्षेप में उनसे सीता का समाचार कह सुनाया। हनुमान ने रावण से यह भी कहा था कि वानर लोग निमंत्रण मे देवताओं के यहाँ भी जाते हैं। समाचार सुनाकर हनुमान ने कहा कि चलो राक्षसों को मार सीता को लेकर रामचन्द्र से मिलें। अङ्गद ने भी हनुमान के प्रस्ताव का अनुमोदन किया, किन्तु समझदार वृद्ध जाम्बवान् ने कहा :—

जाम्बवान्—हमको तो केवल सीता का पता लगाने की आज्ञा मिली है। यदि हम सीता को लेकर चलें, तो राम के अप्रसन्न होने की

सम्भावना है। प्रथम हम लोग चलकर सन्देसा दें, फिर जैसी आज्ञा हो वैसा किया जायगा।

जाम्बवन्त का यह प्रतिवाद सब को पसन्द आया।

सारी वानर मण्डली किष्किन्धा की ओर प्रस्थानित हुई। नगरी के पास पहुँच कर मार्ग में सुग्रीव का मधुवन मिला जो सुग्रीव की आज्ञा से सुरक्षित था। किन्तु सुग्रीव की आज्ञा और अप्रसन्नता का कुछ भी विचार न कर वानरों का वह अथाह समूह अङ्गद के आज्ञानुसार उसमें घुस पड़ा। उस वन के रक्षक दधिमुख को उनके कार्य में बाधा देने के कारण प्रहारों से जर्जरित ही वहाँ से भागना पड़ा। अर्थात् उपवन के रक्षक वानरों ने जब इनके समाचार उस वन के प्रधान रक्षक दधिमुख से जाकर कहे तब वह अपने रक्षक दल को साथ ले तथा एक वृक्ष उखाड़ अङ्गद के दल के वानरों पर प्रहार करने के लिये दौड़ा। अङ्गद ने पकड़ कर उसे भूमि पर दबोच दिया। दधिमुख मूर्छित हो कुछ काल तक पड़ा रहा—फिर सचेत होने पर वहाँ से भागा और फरियाद लेकर सुग्रीव के पास गया।

इधर हनुमान एक दिन के लिये उस मधुवन में बन्धु मण्डली के सङ्ग मधुफलास्वादन में प्रमत्त हो गये। उनका वह उत्सव का दिन क्योंकर बीता, उसे वाल्मीकि जी ने बड़े विस्तार से लिखा है। उन आनन्दोन्मत्त वानरों की जो दशा थी उसका उल्लेख करते हुए कविकुल गुरु लिखते हैं :—

"गायन्ति केचित् प्रहसन्ति केचित्
नृत्यन्ति केचित् प्रणमन्ति केचित्"

अर्थात् कोई वानर तो गाने में लगा तो गाता ही रहा है, किसी के हँसी छुटी तो वह हँस हँस कर ही उस उपवन को भरे देता है, किसी पर नाचने की धुन सवार हुई तो वह उपवन भर में नाचता ही फिरता है और किसी पर प्रणाम करने की झक चढ़ी तो वह प्रत्येक को प्रणाम ही करता हुआ घूम रहा है। कहने का सारांश यह कि किसी बड़े कठिन कार्य की सफलता होने पर जो आनन्द मनुष्य को प्राप्त होता है उसका सोलहों आना आनन्द हनुमान की अनुगता वानर मण्डली को उस समय हो रहा था। वे आनन्द में निमग्न हो अपने आपको भूल गये थे। वाल्मीकि जी का खींचा यह आनन्द चित्र आहा! कर्त्तव्य की कठोर शान्ति के पीछे कितना सुन्दर प्रतीत होता है।

उधर दधिमुख ने रोकर सारा हाल सुग्रीव को सुनाया। सुग्रीव उस समय रामचन्द्र ही के पास थे। दधिमुख ने जाकर जो रोना सुग्रीव के पास रोया वह अपनी वानरी भाषा में रोया। अतः रामचन्द्र और लक्ष्मण उसकी बात न समझ सके। पर रामचन्द्र द्वारा दधिमुख के रोने का कारण पूँछे जाने पर सुग्रीव ने सारा वृत्तान्त कहा। जान पड़ता है वे सीता का पता लगाने में समर्थ हुए हैं। सुग्रीव के मुख से यह सुसम्वाद सुन कर दोनों भाई बहुत प्रसन्न हुए। सुग्रीव ने दधिमुख से कहा :—

सुग्रीव—उन सफल मनोरथ वानरों ने मधुवन को उजाड़ डाला यह सुन कर मैं उन पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम अब मधुवन ही को तुरन्त लौटो और हनुमान प्रभृति प्रमुख वानरों को शीघ्र मेरे पास भेजो।

दधिमुख ने लौट कर मधुवन में युवराज अङ्गद से हाथ जोड़ कर सुग्रीव का संदेसा कहते हुए उनसे कहा :—

दधिमुख—सौम्य! आप लोग रोष न करें। अज्ञानवश वनरक्षों ने आपको रोका था। आप लोग बहुत दूर की यात्रा करके आये हैं। सो थकावट मिटाइये और मनमाने मधुफल खाइये। युवराज तुमही तो उस वन के स्वामी हो। मूर्खता वश हम लोगों से जो अपराध बन पड़ा है, उसे आप क्षमा करें। मैंने यहाँ का जब सारा हाल हे युवराज! आपके चाचा से कहा—तब वे अप्रसन्न होने के बदले प्रसन्न हुए और आप लोगों को तुरन्त बुलाया है। इस पर अङ्गद ने अपनी मण्डली के वानरों से कहा :—

अङ्गद—भाइयो! अब तो चाचा और राम तक हमारे आने का संवाद पहुँच गया। हम अब एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकते।

फिर सब वानर आनन्द में मग्न हो और किलकारियाँ मारते सुग्रीव के समीप गये। आगे आगे अङ्गद थे और उनके पीछे हनुमान आदि वानर थे। सब ने सुग्रीव, राम और लक्ष्मण को प्रणाम किया। तब रामचन्द्र के पूँछने पर हनुमान ने सीता को प्रणाम कर कहा।

हनुमान—मैं सौ योजन चौड़ा समुद्र लाँघ कर लङ्का में पहुँचा, लङ्का दक्षिण समुद्र के तीर पर दक्षिण में है। वहीं पर रावण की पुरी में मैंने सीता देखी। माता की दशा अच्छी नहीं है। राक्षसियाँ रात दिन उसे घेर कर बैठी रहती हैं और उसे डराया करती हैं। एक वेणीधरा सीता को अहर्निशि आपका ध्यान बना रहता है। केवल आपके दर्शन की लालसा से वह जीवित है। आपको विश्वास दिलाने के लिये यह चूड़ामणि सीता ने भेजा है और गोदावारी के तट की काक वाली घटना, जिसे आप और सीता जी ही जानती थीं मुझसे कही है। चलते समय यह भी मुझसे कह दिया है कि यदि दो मास के भीतर मेरा उद्धार न हुआ तो मैं प्राण दे दूँगी। अब आप ऐसा यत्न करें जिससे अगाध समुद्र वानरी सेना के लङ्का में पहुँचने में बाधा न दे।

हनुमान के मुख से सीता का सन्देसा सुन रामचन्द्र और लक्ष्मण के नेत्र सजल हो गये और उस मणि को राम ने बार बार छाती से लगाया। फिर सुग्रीव से बोले—यह मणि जल से उत्पन्न हुआ है। इसे जनक ने मेरे पिता को दिया था और मेरे पिता से इसे सीता ने पाया था। इसके बाद रामचन्द्र ने फिर हनुमान से सीता का हाल पूँछा। हनुमान ने फिर अपनी यात्रा का और लङ्का की सारी घटनाओं का हाल कह कर रामचन्द्र जी का ध्यान फिर समुद्र की अड़चन की ओर आकर्षित किया।

॥ इति सुन्दरकाण्ड ॥

युद्ध काण्ड

हनुमान से सीता का हाल सुन कर, रामचन्द्र ने कहा कि हनुमान ने बड़ा भारी कार्य किया है। यह इतना बड़ा काम है कि इसका समुचित पारितोषिक मैं नहीं दे सकता। अतः हनुमान को छाती लगा कर ही मैं उसे सन्तुष्ट कर सकता हूँ। यह कह कर वे उठे और हनुमान को गले लगाया। तदनन्तर लङ्का के मार्ग में अगाध समुद्र की बड़ी अड़चन को स्मरण कर रामचन्द्र उदास हुए। पर सुग्रीव ने उनको समझा बुझा कर उनका समाधान किया। तब रामचन्द्र ने लङ्का की बनावट, रावण के ऐश्वर्य और वहाँ के निवासियों का वृत्तान्त हनुमान से पूँछा। उत्तर में हनुमान ने लङ्का के सम्बन्ध में श्रीरामचन्द्र जी को जो सब बातें सुनाईं, उनसे उनकी मंत्रिजनोचित सूक्ष्म दृष्टि का परिचय मिलता है। हनुमान ने कहाः—

हनुमान—लङ्कापुरी हाथी, अश्व और रथों से भरी पूरी है। उसके किवाड़ दृढ़बन्धन युक्त और अर्गलबद्ध हैं। उसकी चारों दिशाओं में चार प्रकाण्ड द्वार हैं। इन द्वारों में बड़े बड़े पत्थरों अस्त्रों और यंत्रों का संग्रह हैं। उनके द्वारा, शत्रु आने पर, तुरन्त रोके जा सकते हैं। इन द्वारों पर यंत्रसज्जित लोहमय शत शत शतघ्नी रखी हुई हैं। लङ्का के चार ओर सुवर्ण प्राचीर है और वह प्राचीर मणिरत्न जड़ित एवं दुर्लङ्घ्य है। उसके चारों ओर एक भयङ्कर परिखा है। वह अगाध जल पूर्ण एवं नक्र कुम्भीर परिपूरित है। प्रत्येक द्वार के सामने एक एक विशाल सेतु देखने में आता है। ये सेतु यंत्र द्वारा लटकते हैं। शत्रु सेना के उपस्थित होने पर, इन सेतुओं की रक्षा यंत्रों से होती है और यत्रों द्वारा ही समस्त शत्रु सैन्य परिखा में गिरादी जाती है। लङ्का में नदी-दुर्ग, पर्वतदुर्ग, और चारो प्रकार के कृत्रिम दुर्ग हैं। यह पुरी दूर तक फैले हुए समुद्र के उस पार है। समुद्र में नौका के आने जाने का मार्ग नहीं है और उसके चारों भाग शून्यमय हैं।

फिर रावण की चर्चा चलने पर हनुमान ने कहा था :—

हनुमान—रावण युद्धाकाङ्क्षी अवश्य है। पर धीर स्वभाव और सावधान है। वह अपनी समस्त सेना का निरीक्षण स्वयं करता है।

रामचन्द्र ने सुग्रीव से कहा :—

रामचन्द्र—इस समय सूर्य मध्य आकाश में आ गये हैं। अतः यही विजय मुहूर्त्त है। आज उत्तराफालगुनी है। कल इसका संयोग हस्त से होगा। अतएव अभी यात्रा करनी चाहिये। देखो शकुन भी अच्छे हो रहे हैं।

फिर श्रीराम ने नील को सम्बोधन कर कहा :—

श्रीरामचन्द्र—तुम एक लाख वानर लेकर अच्छे मार्ग से सब सेना को ले चलो। सावधान रहना मार्ग में राक्षस कोई उपद्रव न करें।

आज्ञा पाते ही सेना तैयार हुई। कूच की आज्ञा होते ही वे प्रस्थानित हुए। गज गवय और गवाक्ष सेना के आगे आगे चले। दक्षिण पार्श्व की रक्षा करता हुआ ऋषभ और वाम भाग की रक्षा करता हुआ गन्धमादन चला। अङ्गद की पीठ पर

लक्ष्मण और हनुमान की पीठ पर स्वयं राम चढ़ कर सुग्रीव सहित सेना के बीच में चले। जाम्बवान, सुषेण और वेगदर्शी को सेना के पिछले भाग और मध्य भाग की रक्षा का काम सौंपा गया।

गज गवय और गवाक्ष बहुत से बन्दरों को साथ लेकर मार्ग का शोधन करते जाते थे। शतवलि नामक वानर के साथ दस करोड़ वानर थे। केसरी, पनस और गज इन तीनों वानरों के साथ सौ करोड़ बन्दर थे। सुषेण और जाम्बवान् के साथ बहुत से भालू थे। वे चलते चलते सह्य पर्वत के समीप पहुँचे। उसे लाँघने पर मलय पर्वत मिला। फिर मलय पर्वत को लाँघने पर महेन्द्राचल मिला और महेन्द्राचल को पार करने पर वे समुद्र तट पर जा निकले। सेना को तीन भागों में विभक्त हो कर वह तीन स्थानों में ठहरी। नील उसके अधिकारी हुए और मयन्द रक्षणार्थ चारों ओर घूमने लगे। इतने में सन्ध्या हुई।

अब हम राम को सेना सहित समुद्र तट पर छोड़, फिर लङ्का की ओर मुड़ते हैं।

हनुमान के लङ्का को भस्मसात् करके चले आने पर, रावण ने अपने मंत्रियों को बुलाया और उनसे कहा:—

रावण—तुम लोगों ने देखा है कि एक वानर आकर यहाँ कैसा उपद्रव कर गया। सो तुम विचार कर बतलाओ कि राम के बारे में अब क्या करना चाहिये। देखो मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं। एक तो वे हैं जो विचार को निश्चित करने के लिये हितकारी और समर्थ मंत्रियों के साथ अथवा तादृश बन्धुओं अथवा अपने से अधिकों के साथ विचार करके कार्य को आरम्भ करते हैं और भाग्य के सहारे चेष्टा करते हैं। ऐसे लोग उत्तम कोटि के होते हैं। मध्यम श्रेणी के वे लोग हैं जो अकेले ही विचार करके और धर्म में बुद्धि लगा कर किसी काम को स्वयं अकेले ही करते हैं। अधम पुरुष वे हैं जो गुण दोषों का विचार किये बिना ही और भाग्य की भी परवाह न करके हाथ पर हाथ रख चुपचाप बैठ जाते हैं और मन ही मन कहा करते हैं—इसे मैं कर डालूँगा।" इसी प्रकार मंत्र या परामर्श भी तीन प्रकार के होते हैं। (१) उत्तम मत तो वह है जो शास्त्र के अनुकूल हो और जिस पर सब मंत्री सम्मत हों (२) मध्यम मत वह है जिसके निर्णय में अनेक मत होकर, अन्त में मंत्री एक मत हों। (३) अधम मत वह कहलाता है जिसका विचार उपस्थित होने पर प्रत्येक विचारक का भिन्न मत हो और जिसके अनुसार एक मत होकर कार्य्य न हो सके। यदि एक मत हो कार्य किया भी जाय तो उसकी सिद्धि होने पर भी कल्याण की आशा न हो।

रावण के इन वचनों को सुन कर सब राक्षस पूर्वापर विचारे बिना ही, राक्षस-राज को प्रसन्न करने के अभिप्राय से खुशामदी बातें कहने लगे:—

सब मंत्री—श्रीमान का चिन्ता करना व्यर्थ है। आपने भोगवती में जाकर नागों को वश में किया। कैलास पर जाकर शिव के मित्र कुबेर को हराया। उनके विमान को हर लिया। मय दैत्य ने डर कर आपको अपनी कन्या दी। आपने कुम्भीनसी के पति मधुनामक दैत्य को जीता। रसातल में जाकर नागों को जीता। वासुकि तक्षक, शङ्ख, और जटी नामक प्रसिद्ध नागों को आपने अपनी मुट्ठी में किया। अक्षय, बलवन्त, शूर, प्रासवर—जैसे पराक्रमी और दैवी बल से वरिष्ठ दानवों को वर्ष भर युद्ध कर अपने वश में किया। मायावी दैत्य और वरुण के पुत्रों को आपने जीता। यम को जीता, पृथिवी के अनेक वीर क्षत्रियों को जीता। आप तो आप—आपके पुत्र मेघनाद ने इन्द्र को पकड़ कर कैद किया। सो वही मेघनाद वानरों सहित दोनों भाइयों को बात की बात में मार डालेगा। आपको तो हाथ में अस्त्र लेने तक का अवसर न आने पावेगा।

इनके बाद प्रहस्त नामक सेनापति ने कहा :—

प्रहस्त—हम लोग जब देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और नागों को जीते जिताये बैठे हैं तब बानरों की बिसात ही क्या है? उस समय हम सतर्क न थे नहीं तो बेचारे हनुमान की मजाल थी कि वह लङ्का को इस प्रकार फूँक डालता! हमारी असावधानी का लाभ हनुमान ने उठाया।

तदनन्तर दुर्मुख आदि राक्षस बोले :—

दुर्मुख—मैं अभी जाकर समस्त बानर सेना को मार गिराता हूँ।

वज्रदंष्ट्र—सहस्र राक्षस मनुष्य का रूप धर, राम के पास जावें, और बोलें कि हम लोगों को भरत ने भेजा है और वे भी सेना सहित आ रहे हैं। तब तक आकाश मार्ग से हम लोग भी वहाँ पहुँच कर बानरों को विध्वस्त कर डालेंगे। राम आदि को भी मार गिरावेंगे।

इसके पश्चात् कुम्भकर्ण का पुत्र निकुम्भ, वज्रहनु, रभस, सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर, अग्निकेतु, दुर्द्धर्ष रश्मिकेतु, इन्द्रशत्रु, प्रहस्त, विरूपाक्ष, वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष, दुर्मुख आदि सभी अपनी अपनी बेसिर पैर की बातें बकने लगे। उनके कथन का सारांश यह है :—

"हम अकेले ही राम सहित सब बानरों को मार गिरावेंगे।"

इन लोगों की विचार-सङ्कीर्णता पर दुःखी होकर, रावण के सब से छोटे भाई धर्म्मात्मा विभीषण से न रहा गया। रावण को सम्बोधन कर उन्होंने कहा :—

विभीषण—हे रावण! यह नीति है कि जहाँ पर तीन उपायों से काम न चले, वहाँ पराक्रम दिखलाना ही चाहिये। सो भी पराक्रम उसी पर दिखाया जा सकता है जो असावधान हो, जो दूसरे दूसरे कामों में फँसा हो और रोगादि दैव विपत्तियों से आपाद मस्तक ग्रस्त हो। ऐसों के साथ पराक्रम दिखाने पर कुछ फल भी होता है। राम को तुम लोगों में से कोई नहीं जीत सकता। क्योंकि वे निर्दोष हैं। अतएव उनकी स्त्री सादर उनको लौटा दो।

यह सुन रावण ने कुछ भी उत्तर न दिया और सभा विसर्जन कर चुपचाप अन्तःपुर में चला गया।

अगले दिन जिस समय रावण मंत्रियों सहित सभा में बैठा था, उसी समय विभीषण उसके पास गये और पिछले दिन की बातों की चर्चा चला कर रावण से बोले :—

विभीषण—महाराज! जब से वैदेही लङ्का में आयी है, तब से बड़े बड़े अशुकुन देख पड़ते हैं। अतएव उसे राम को दे डालना ही उत्तम है।

इसके उत्तर में रावण ने कहा—"कोई भय की बात नहीं है" और यह कह कर विभीषण को विदा किया।

तीसरे दिन रावण की सभा फिर समवेत हुई। उसमें सब बड़े बड़े राक्षस बुलाये गये। आज की सभा में कुम्भकर्ण भी उपस्थित था। पहले रावण ने प्रहस्त से कहा कि—सब से पहले जाकर तुम नगर की रक्षा के लिये विशेष सेना नियुक्त करो।

जब प्रहस्त यह काम कर आये तब रावण ने सब से कहा :—

रावण—रामचन्द्र सेना सहित समुद्रतट पर आ गये हैं। अब क्या करना चाहिये?

इसके उत्तर में कुम्भकर्ण ने कहा :—

कुम्भकर्ण—जब तुम सीता हरने गये थे; तब हम लोगों से सलाह क्यों नहीं पूँछी? अब पूँछते हो-अस्तु, जो किया सो किया हम तुम्हारे साथ हैं। हम तुम्हारे शत्रुओं का नाश कर. तुम्हारे शोक को मिटा देंगे।

कुम्भकर्ण का उत्तर सुन रावण क्रुद्ध हुआ और उसे कुपित देख, महापार्श्व हाथ जोड़ कर बोला :—

महापार्श्व—आप सीता के साथ रमण कीजिये। जब शत्रु आवेंगे, तब हम उनसे लड़ेंगे।

रावण—मैं किसी रमणी पर बलात्कार नहीं कर सकता; क्योंकि बहुत दिन हुए एक बार पुञ्जिकस्थली नाम की अप्सरा ब्रह्मलोक को जाती थी। मैंने उस पर बलात्कार किया। जब मैंने उसे छोड़ा तब वह ब्रह्मलोक को चली गयी। यद्यपि उसने मेरी शिकायत नहीं की, पर ब्रह्मा को इसकी खबर लग गयी और उन्होंने कोप में भर, मुझे शाप दिया कि—यदि रावण आज से किसी अन्य स्त्री पर बलात्कार करेगा तो उसके सिरों के टुकड़े टुकड़े हो जांयगे। उसी शाप के डर से मैं सीता पर बलात्कार नहीं कर सकता।

सभास्थ लोगों की और रावण की बातों को सुन कर धर्मात्मा विभीषण से न रहा गया। वे बोल ही तो उठे और बोलते हुए कहा :—

विभीषण—देखो, कहा मान कर सीता को दे डालो। ऐसा करने से सारा झगड़ा टण्टा टूट जायगा। क्योंकि राम के सामने कोई भी वीर ठहर नहीं सकता।

इस पर प्रहस्त ने कहा :—

प्रहस्त—जब हमको देवता, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, मघवा और गरुड़ तक से भय नहीं है, तब दो सामान्य मनुष्य हमारा कर ही क्या सकते हैं।

विभीषण—राम के सम्मुख समर में कोई भी नहीं ठहर सकता। अतएव तुम लोग इस बुद्धि को छोड़, राक्षसराज को बलात्कार से बचाओ।

मेघनाद—राक्षसकुल में एक मात्र हमारे चाचा साहब विभीषण ही ऐसे उत्पन्न हुए हैं जो राम से स्वयं भयभीत हैं, और हमको भी राम के डर से डराया चाहते हैं।

विभीषण—मेघनाद! तुम बालक हो, दुष्ट और बुद्धिहीन हो। इसीसे ऐसा बक रहे हो।

मेघनाद को झिड़क विभीषण ने फिर रावण से कहा—"महाराज! सीता को आदर पूर्वक राम को लौटा दीजिये।"

विभीषण की हित भरी बातों को सुन रावण उबल पड़ा। उसने कहा—

रावण—शत्रु के साथ अथवा विषधर सर्प के साथ रहना अच्छा है, पर मित्ररूपी शत्रु सेवक के साथ रहना भला नहीं। यह प्रकृतिसिद्ध स्वभाव है कि ज्ञाति के लोग ज्ञातिवालों को विपत्ति में फँसा देख प्रसन्न होते हैं। ज्ञातिवाले सदा प्रधान साधक, वैद्य और धर्मशीलों का अनादर किया करते हैं और यह चाहते हैं कि हमारी ज्ञाति के शूर का किसी न किसी प्रकार पराभव हो। चाहे वैसे नित्य ही प्रसन्न रहें, पर ज्ञाति वाले पर विपत्ति आते ही वे आततायी हो जाते हैं और अपने मन के यथार्थ अभिप्राय को कभी प्रकट होने नहीं देते। अतएव ज्ञाति-जन बड़े भयङ्कर होते हैं।

हे विभीषण! मैं जानता हूँ कि सम्पूर्ण भयों की अपेक्षा ज्ञातिभय अधिक कष्टदायी होता है। देखो यह प्रत्यक्ष है कि गौओं में हव्यकव्य का साधन, ज्ञाति से भय, स्त्रियों में चपलता और ब्राह्मण में तपस्या अवश्य पाई जाती है।

अरे विभीषण तुझे धिक्कार है।

यह सुन विभीषण अपने चार गदाधारी अनुचरों सहित, राजसभा को छोड़ आकाश में गये और वहाँ से बोले :—

विभीषण—मैंने तो ज्ञातिविद्रोह वश तुम से नहीं कहा था—जो कुछ कहा था सो तुम्हारे हित के लिये। पर अब जब तुमको मेरे ऊपर इतना सन्देह है, तब मैं जाता हूँ। आप मेरे कहने सुनने को क्षमा करना। मैं जाता हूँ। अब आप सुख चैन से रहें।

यह कह विभीषण आकाश मार्ग से चल कर समुद्र के इस पार आये और वहीं खड़े खड़े चिल्ला कर कहने लगे।

विभीषण—हे वानरों! मैं राक्षसराज रावण का छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। रावण जटायु को मार, जनस्थान से सीता को हर लाया है और लङ्का में उन्हें राक्षसियों के बीच रखा है।

मैंने बहुत चाहा कि रावण सीता को लौटा दे, पर रावण काल के वश में है। वह अच्छी सलाह क्यों मानने लगा। मानना एक ओर रहा—उसने मुझसे बड़े कड़े कड़े शब्द कहे हैं और क्रीतदास की तरह मेरा अनादर किया है। अब मैं श्रीरामचन्द्र की शरण में आया हूँ। मेरे आने का समाचार महाराज से जा कर निवेदन करो।

विभीषण की इन बातों को सुन वानरराज सुग्रीव ने रामचन्द्र से कहा :—

सुग्रीव—रावण का छोटा भाई विभीषण चार अनुचरों सहित आया है। इसके द्वारा हमारा अनिष्ट हो सकता है। क्योंकि यह शत्रु का भाई है अतः इसको न रखना चाहिये। क्योंकि मित्रसैन्य, स्वकीयसैन्य और भृत्यसैन्य का ग्रहण ही शास्त्रानुकूल है। शत्रुसैन्य सर्वथा त्याज्य है।

यह कह सुग्रीव चुप हो गये। तब रामचन्द्र ने अन्य मंत्रियों से पूँछा। उत्तर में अङ्गद ने कहा :—

अङ्गद—विभीषण शत्रु के पास से आया है। इससे तर्क करना तो उचित ही है। किन्तु इसके ऊपर सहसा विश्वास न कर लेना चाहिये। क्योंकि धूर्त जन अपने मन की बात कभी प्रकट नहीं होने देते। अतएव अपरिचितों के गुण दोषों पर विचार करके उनका संग्रह और त्याग करना चाहिये। यदि विभीषण में गुण अधिक और दोष कम पाये जाँय, तो उसे मिला लेना चाहिये, अन्यथा वह त्याज्य है।

अङ्गद के बाद सेनापति शरभ ने यह सम्मति दी :—

शरभ—किसी निपुण दूत को भेज कर इस का भेद लिया जाय। यदि यह निर्दोष ठहरे तो इसको ग्रहण करना चाहिये।

जाम्बवन्त—यह अपने शत्रु और पाप बुद्धि रावण के पास से आया है; सो भी कुसमय और कुदेश में, अतएव इस पर सन्देह होना स्वाभाविक बात है।

मयन्द—यह रावण का भाई है अतः मधुरता से इससे पूँछ कर, इसके मन के भाव जानने का यत्न किया जाय।

हनुमान—महाराज! बिना प्रश्न किये मन का भाव प्रकट नहीं हो सकता और सहसा प्रश्न करना भी ठीक नहीं। बिना प्रयोजन दूत भेजना भी अनुचित है। यह रावण की दुष्टता और आपका पराक्रम देख कर आया है। अतएव देश काल सब ठीक है और इसका आना उचित और बुद्धि के अनुसार ही है। अज्ञात पुरुष से प्रश्न करना भी एक प्रकार का दोष है। क्योंकि यदि कोई किसी बुद्धिमान से कुछ पूँछे तो उत्तर देने में उसे सङ्कोच होता है और यदि वह मित्रभाव से कपट छोड़ कर आया हो तो उसके मन में सन्देह उत्पन्न हो जाता है और वह भाव नहीं रहता।

हे महाराज! एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। दूसरे के मन में क्या है—यह जान लेना सहज नहीं है—पर जो चतुर होते हैं—वे बोलचाल के ढङ्ग को देख तथा कण्ठध्वनि ही से दूसरे के मन के भावों को पहचान लेते हैं। अतः मेरी समझ में तो इसकी कण्ठध्वनि से इसके मन में कोई दुष्ट भाव नहीं जान पड़ता। इसका मुख भी प्रसन्न है। अतः इस पर सन्देह न करना चाहिये। जो धूर्त होते हैं—वे सदा सशङ्क रहते हैं और उनकी बुद्धि स्वस्थ नहीं रहती। आकार से अभिप्राय स्वयं प्रकट हो जाता है। देश और काल का विचार करके भली भाँति आरम्भ किया हुआ काम, शीघ्र फल देता है। यह रावण को मिथ्याचारी और आपको उद्योगी समझ कर आया है। वालि का वध और सुग्रीव के राज्याभिषेक का संवाद सुन कर, राज्य पाने की अभिलाषा से आपके पास आया है। अतएव विभीषण को मिला लेना उचित प्रतीत होता है।

श्रीराम—यदि विभीषण मित्र भाव से आया है तो मैं उसे न त्यागूँगा।

सुग्रीव—चाहे यह साधु हो या असाधु; पर है तो राक्षस ही। फिर जब इसने अपने विपद्ग्रस्त

सहोदर भाई ही का साथ नहीं दिया : तब इसका भरोसा ही क्या है ?

श्रीरामचन्द्र—(सब की ओर देख और लक्ष्मण को सम्बोधन करके) देखो बिना शास्त्र पढ़े और वृद्धों की सेवा किये—ऐसी दूरदर्शिता की बात, जैसी की वानरराज ने कही है—कहना कठिन है। पर एक बात ध्यान देने योग्य है। शत्रु दो प्रकार के होते हैं। एक तो अपने ही कुल के, दूसरे किसी निकटस्थ देश में बसने वाले। ये दोनों ही विपत्ति ही में प्रहार करते हैं। सो कदाचित् विभीषण, रावण के विपद्ग्रस्त देख. सम्भव है उस पर प्रहार करना चाहता हो अथवा रावण ही ने उस पर सन्देह कर, उसे निकाल दिया हो और उस अनादर के न सह कर बदला लेने के लिये यह शत्रु पक्ष में मिलना चाहता हो। हम न तो विभीषण के कुल के हैं और न उसके निकटस्थ किसी देश के रहने वाले हैं। अतः हमें उससे डर ही किस बात का है। यह राज्य के लालच से आया है। एक कुल में उत्पन्न लोग, परस्पर विश्वास रखते और हर्ष पूर्वक मिले रहते हैं—यह ठीक है, पर विपत्ति के समय परस्पर भेद हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। जान पड़ता है विभीषण के आने का यही कारण है। सुनो सब भाई भरत ही के सदृश, सब पुत्र मेरे ही तुल्य और सब मित्र आप ही के तुल्य नहीं होते।

यह सुन कर लक्ष्मण सहित सुग्रीव ने उठ कर कहा :—

सुग्रीव—महाराज! यह रावण का भेजा हुआ आया है। अतएव इसको मार डालना ही समुचित है।

श्रीराम—यह हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता। पृथिवी के सब राक्षस, पिशाच और और यक्षों को मैं उङ्गली के अग्रभाग से विनष्ट कर सकता हूँ। सुना है एक कबूतर ने अपनी स्त्री को हरनेवाले शत्रु का सत्कार ही नहीं किया था; किन्तु अपना मांस खिलाने का निमन्त्रण दिया था। फिर कण्व ऋषि के पुत्र कण्डु ने कहा है कि हाथ जोड़े, गिड़गिड़ा कर और दीन शरणागत शत्रु को भी न मारना चाहिये। चाहे, आर्त्त हो चाहे अहङ्कारी, यदि शत्रु के पक्ष से कोई शरण पुकारता आवे, तो उचित है कि अपने प्राणों को भी त्याग कर उसकी रक्षा करे। जो शरणदाता भय, मोह अथवा काम से शक्ति रहते रक्षा नहीं करता वह निन्द्य कहलाता है। साथ ही यदि रक्षक के देखते शरणागत नष्ट हो जाय, तो वह नष्ट होने वाला, उस रक्षक के सारे पुण्यफल को ले लेता है। फिर शरण आये हुए प्राणी मात्र को अभय देना मेरा तो व्रत है।

सुग्रीव—महाराज! ऐसा उदारभाव आपको छोड़ और कौन दिखा सकता है। मैं भी उसे शुद्ध समझता हूँ। अतः मैं भी अनुरोध करता हूँ कि वह हमारा मित्र हो।

श्रीराम से अभय पा कर विभीषण आकाश मार्ग को छोड़ पृथिवी पर आये और राम के चरणों में अपना मस्तक रख दिया। श्रीराम ने उन्हें ढाढस बँधाया। फिर लङ्का का वृत्तान्त पूँछा। इस पर विभीषण ने कहा :—

विभीषण—ब्रह्मा के वरदान से रावण प्राणीमात्र से अवध्य है। उसका छोटा भाई कुम्भकर्ण बड़ा बली है। उसका सेनापति प्रहस्त है, जिसने कैलास पर मणिभद्र को हराया था। प्रहस्त के अतिरिक्त महापार्श्व, अकम्पन और महोदर भी रावण के सेनापति हैं। इन्द्रजीत उसका पुत्र है—जो अदृश्य हो कर लड़ता है। लङ्का में दस करोड़ राक्षस हैं।

श्रीराम—हे विभीषण! इन सब के सहित रावण को मार मैं तुमको लङ्का का राजा बनाऊँगा। मैं अपने तीनों भाइयों की शपथ खा कर कहता हूँ कि बिना रावण को मारे मैं अयोध्या न जाऊँगा।

विभीषण—मैं यथाशक्ति आपकी सहायता करूँगा।

रामचन्द्र—(लक्ष्मण से) भाई, विभीषण को लङ्का का तिलक कर दो।

यह सुन लक्ष्मण ने उनके तिलक कर दिया। इसके अनन्तर हनुमान और सुग्रीव ने पूँछा कि समुद्र पार होने का क्या उपाय है? इस प्रश्न के उत्तर में विभीषण ने कहा—'समुद्र राम के पूर्व पुरुष सगर का खुदवाया हुआ है। अतः राम उसकी उपासना कर, यह अवश्य उनका काम करेगा। तब सुग्रीव ने यह बात राम से कही। उन्होंने सुग्रीव और लक्ष्मण को सम्बोधन कर कहा—"मुझे तो विभीषण की बात ठीक जान पड़ती है। तुम लोगों की इस पर क्या सम्मति है? उन दोनों ने भी विभीषण के प्रस्ताव का समर्थन किया।

इतने में रावण के भेजे हुए शार्दूल नामक राक्षस ने उससे जा कर कहा कि वानरों की असंख्य सेना लिये, रामचन्द्र समुद्र के तीर पर पड़े हैं। जो करना हो सो कीजिये। यह सुन शुक नामक राक्षस को रावण ने राम के शिविर में भेजा और कहा कि सुग्रीव से मेरा यह सन्देसा कह दो :—

सन्देसा।

"आप कुलीन और वानरराज के पुत्र हैं। इस झगड़े से आपका न तो कुछ अर्थ साधन होगा और न अनर्थ ही का निवारण होगा। फिर आप तो हमारे भाई हैं। अतएव आप किष्किन्धा लौट जाइये। आप लङ्का को किसी प्रकार नहीं जीत सकते।

शुक ने पक्षी रूप धारण कर, आकाश मार्ग में खड़े खड़े ही रावण का उक्त सन्देसा सुग्रीव से कह सुनाया।

इतने में वानरों ने पकड़ कर उसे मारना आरम्भ किया। तब तो उसने राम की दुहाई दे कर कहा :—

शुक—महाराज! अनुकवादी, दूत हो मारने योग्य हैं। मैं तब मारने योग्य होता, यदि मैं प्रभु के सन्देसे को छोड़ अपने मन से बना कर कुछ कहता। मैं मारे जाने के योग्य नहीं।

राम ने उसे छुड़वा दिया। तब वह आकाश में खड़ा हो कर सुग्रीव से पूँछने लगा कि आप की ओर से मैं रावण को क्या उत्तर दूँ? तब सुग्रीव ने कहा :—

सुग्रीव—रावण मेरा कोई नहीं लगता, मैं उसके सर्वस्व का नाश करूँगा। वह रामचन्द्र के हाथ से अब जीता न बचेगा।

इतने में अङ्गद ने कहा :—

अङ्गद—अरे यह सन्देसा लाने वाला दूत नहीं; किन्तु सेना की संख्या जानने वाला चर है।[१] अतएव इसे पकड़ना चाहिये?

यह सुनते ही वानरों ने पकड़ कर फिर उसे मारना आरम्भ किया। इस पर वह फिर राम की दुहाई देने लगा। रामचन्द्र को उस पर दया आई और राम ने उसे छुड़वा दिया।[२]

तदनन्तर राम समुद्र के तट पर कुश बिछा, पूर्व मुख हो, हाथ जोड़ और बाहु का तकिया बना कर, लेट गये। साथ ही तीन दिन तक वे निराहार निर्जल ही पड़े रहे। पर समुद्र देव के दर्शन न हुए। तब रामचन्द्र ने क्रोध में भर लक्ष्मण से कहा :—

---

१ स्वामी का सन्देसा छोड़ अपने मन से बातें कहने वाले।

२ किसी ग्रन्थकार का मत है कि शुक पूर्व जन्म का धार्मिक ब्राह्मण था। एक बार भूखे प्यासे अगस्त्य ऋषि, क्षुधा से पीड़ित शुक के आश्रम में गये। वहाँ वज्रदंष्ट्र नामक राक्षस की गुण्डई के कारण, इनकी थाली में नरमांस रींध कर परोसा गया। इसे देखते ही शुक को अगस्त्य ने शाप दिया कि तुम राक्षस योनि में जन्म ग्रहण करो। फिर पीछे से उसे निरपराध जान यह वरदान भी दिया कि लङ्कापुरी आक्रमणकारी रामचन्द्र के दर्शनों से तेरी मुक्ति हो जायगी। कहा जाता है कि राक्षसराज का दौत्यकर्म करने पर, धर्मपरायण शुभ पाप से मुक्त हुआ।

रामचन्द्र—शान्ति, दया, क्षमता, मृदुता और कोमल वचन, ये सब सज्जनों के गुण हैं। पर जो दुष्ट हैं—वे ऐसी प्रकृति के मनुष्य को असमर्थ और बोदा समझते हैं। दुष्ट, ढीठ, इधर उधर दौड़ने वाला, सर्वत्र दण्डप्रहारी जो अपनी प्रशंसा सर्वत्र करता फिरता है—उसका सब लोग सत्कार करते हैं। यह समुद्र हमको असमर्थ समझ कर प्रकट नहीं हो रहा है—अतएव धनुष लाओ तो हम इसे समझा दें।

यह कह धनुष बाण ले, राम समुद्र का जल सुखाने को उद्यत हुए। धनुष पर बाण रखते ही समुद्र का जल खौलने लगा। यह देख लक्ष्मण ने राम का हाथ पकड़ लिया। उधर गगनचारियों ने भी राम की स्तुति कर बाण न चलाने की विनती की। पर राम ने उनकी बातों पर ध्यान न दे कर, धनुष पर दिव्य ब्रह्मास्त्र चढ़ाया। तब समुद्र ने प्रकट होकर और हाथ जोड़ कर कहा:—

समुद्र—नाथ! क्षमा कीजिये आपकी सेना के उतरने का उपाय मैं बतलाता हूँ।

रामचन्द्र—यह अस्त्र धनुष पर चढ़ाकर रीता नहीं उतर सकता। यह तो अमोघ है—किसी न किसी पर यह चलेगा अवश्य। तुम्हीं बतलाओ कि यह कहाँ चलाया जाय?

समुद्र—यहाँ से उत्तर द्रुमकुल्य नामक एक स्थान है। वहाँ के बसने वाले चोर और पापी हैं।

रामचन्द्र ने बाण वहीं फेंका। जिस देश में वह बाण गिरा, वहाँ पर एक कूप सा बन गया जो व्रण नाम से प्रसिद्ध है। फिर राम ने साथ ही साथ यह वरदान भी दिया कि यह देश पशुओं के लिये हितकर और रोग विवर्जित, फल एवं रस से युक्त, अनेक प्रकार के घृतादि रसों से पूर्ण, और अनेक प्रकार की ओषधियों से भर पूर होगा।

अनन्तर समुद्र ने कहा:—

समुद्र—यह नील वानर विश्वकर्मा का पुत्र सेतु बाँधे; मैं उसे धारण करूँगा। यह कह समुद्र चल दिया।

समुद्र के चले जाने पर नल ने कहा:—

नल—मेरे पिता विश्वकर्मा ने मेरी माता को मन्दराचल पर वर दिया था कि तुझमें मेरे समान पुत्र होगा। मैं उन्हीं का पुत्र हूँ और सेतु बना सकता हूँ।

यह सुन रामचन्द्र ने पुल के काम में सहायता देने के लिये वानरों को आज्ञा दी। वे लोग वृक्ष और पर्वत उखाड़ उखाड़ कर समुद्र में पटकने लगे।[1] पहले दिन १४ योजन, दूसरे दिन २०, तीसरे दिन २१, चौथे दिन २२ और पाँचवें दिन २३ योजन बना—नल ने १०० योजन लम्बा और दस योजन चौड़ा पुल तैयार कर दिया।[2] तब विभीषण गदा हाथ में ले अपने सचिवों सहित, शत्रुओं को बतलाने के लिये पार जा कर खड़े हुए। तदनन्तर राम ने सुग्रीव से कहा—आप हनुमान की पीठ पर और लक्ष्मण अङ्गद की पीठ पर चढ़ लें। ऐसा ही किया गया। तब उन दोनों के पीछे पीछे सुग्रीव चले। सारी सेना पार उतर गयी। उस पार पहुँच कर राम ने सुवेल नामक पर्वत पर, अपनी सेना का शिविर स्थापित किया। शिविर स्थापित कर उसकी रक्षा के लिये एक व्यूह रचा। नील सहित अङ्गद सेना के वक्षःस्थल स्थानीय हुए, ऋषभ नामक वानर अपने यूथ

---

१ कहते हैं नल ने तीन योजन नित्य के हिसाब से एक मास में ९० योजन पुल बनाया था। अवशिष्ट दस योजन, हनुमान द्वारा लाये हुए पर्वत और वृक्षों से एक दिन ही में पुल बन कर तैयार कर दिया गया था।

२ तुलसीदास जी की रामायण में लिखा है कि समुद्र तट पर, राम ने एक शिव का लिङ्ग स्थापित कर और उसका पूजन कर, महादेव जी को प्रसन्न किया था पर वाल्मीकि रामायण में इस कथा का तिल भर भी अस्तित्व नहीं है। किसी किसी का मत है कि राम ने रावण को शङ्कर का भक्त समझ शिवलिङ्ग की थापना की थी—जिससे शिव जी विघ्न न करें। पर यह बात भी कोरी कल्पना मात्र जान पड़ती है, क्योंकि इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता।

को ले कर, दाहिनी ओर हुए। गन्धमादन बाईं ओर हुआ। लक्ष्मण सहित रामचन्द्र सेना के मस्तक देशीय स्थान पर बैठे। जाम्बवान, सुषेण और वेगदर्शी उदर स्थानीय हुए। सुग्रीव को सेना का जङ्घा भाग सौंपा गया। जब सेना की व्यूह रचना होगयी तब राम ने शुक को छुड़वा दिया। उसने रावण के पास जा कर सूचना दी कि सेना सहित राम समुद्र के इस पार आ गये अब या तो सीता लौटा दो, या युद्ध करो।

शुक का वचन सुन रावण ने इसी नाम के एक दूसरे शुक और सारन दो मन्त्रियों को सेना की संख्या जानने तथा भेद लेने के लिये भेजा। वे दोनों वानर का रूप धर कर सेना में घुमे, पर विभीषण द्वारा तुरन्त पहचान लिये गये और पकड़े जा कर राम के सम्मुख उपस्थित किये गये। राम ने उनसे कहा:—

श्रीरामचन्द्र—यदि तुम अपने स्वामी का काम कर चुके हो तो अब यहाँ से चल दो और पूरा न कर पाया हो तो अब कर लो। रावण से जा कर कहना कि अब वह अपना बल हमें दिखलावे।

उन दोनों मन्त्रियों ने जाकर राम का संदेसा रावण को सुना दिया।

शुक और सारन के मुख से राम का सन्देसा सुन कर, रावण उन दोनों के सहित अटारी पर चढ़ा और वहाँ खड़े खड़े उन दोनों से राम की सेना का वृत्तान्त पूँछने लगा। तब सारन ने कहाः-

सारन—महाराज! वह नील नामक यूथपति है, जो लङ्का के सामने गरज रहा है और इसके अधीन एक लाख यूथपति हैं। वह जो भुजा उठा कर टहल रहा है और जिसका रङ्ग कमल और केसर के तुल्य है, वह युवराज अङ्गद है। उसके पीछे नल नाम का वानर है। इसीने समुद्र पर पुल की रचना की है। देखिये वह श्वेत नामक वानर है। इसके अधीन करोड़ों वानर हैं। ये सब नन्दन वन के निवासी हैं। वानरी सेना को विभक्त करनेवाला वह कुमुद नामक वानर है। इसके अधीन एक लाख वानर हैं यह पहले गोमती नदी के तटवर्ती पर्वत पर रहता था। पर अब सरोचन नामक पर्वत पर रहता है। यह चण्ड नाम वानर है। वह शरभ नाम का वानर है। यह विन्ध्य, कृष्णागिरि, सह्य और सुदर्शन पर्वतों का अधिकारी है। इसके अधीन लाखों वानर हैं। साल्वेय नामक पर्वत पर रहने वाला यह रम्भ वानर है। इसके अधीनस्थ वानर विहार कहे जाते हैं और गिनती में चालीस लाख हैं। यह पनस नामक वानर है। यह पारियात्र पर्वत पर रहता है। इसके साथ पचास लाख वानर हैं। वह विनत नामक वानर है। इसके साथ आठ लाख वानर हैं। यह वेणा नाम की नदी के तट पर रहता है। यह क्रम है, वह गवय है। गवय के साथ सत्तर लाख वानर हैं। वह तार वानर है; यह धूम्राक्ष नाम का भालू है। यह ऋक्षवान पर्वत पर जो नर्मदा के तट पर रहता है। जाम्बवान इसका छोटा भाई है। इसने देवासुर संग्राम में इन्द्र की सहायता की थी और उनसे अनेक वर पाये थे। वह दम्भ नामक वानर है; जो सदा इन्द्र के पास रह कर उनकी सेवा किया करता है। वह देखिये सन्नादन वानर है जो वानरों का पितामह है। यह इन्द्र के साथ लड़ चुका है और इन्द्र इसे हरा नहीं सके। यह क्रथन नाम वानर है गन्धर्व कन्या में अग्नि के औरस से, देवासुर संग्राम में देवताओं की सहायता के लिये उत्पन्न हुआ था। यह उसी पर्वत पर रहा करता है, जिस पर कुबेर रहते हैं। इसके अधीन सहस्र कोटि वानर हैं। यह गङ्गा के तीरवर्त्ती हाथियों को त्रास दिया करता है। यह हाथी और वानरों का प्राचीन वैर स्मरण कर, मन्दराचल के उशीरबीज नामक पहाड़ पर रहता है। इसके अधिकार में एक लाख वानर हैं।

पूर्वकाल में एक असुर हो गया है, जिसका शम्बसादन था। वह हाथी का रूप धर कर मुनियों को बड़ा कष्ट दिया करता था। तब मुनियों ने केसरी वानर से उसका वध कराया। हाथी और वानरों के परस्पर वैर का यही मूल कारण है।

वह प्रमाथी नाम वानर है। यह गवाक्ष नाम वानर है। यह केसरी है। वह सावर्णमेरु पर्वत पर रहने वाला शतवलि नाम वानर है। हे महाराज! गज, गवाक्ष, गवय, नल और नील—इनमें

से प्रत्येक दस दस करोड़ वानरों का अधिकारी है।

रामचन्द्र की सेना का इतना परिचय जब शुक दे चुका ; तब सारन ने कहा :—

सारन—महाराज सब मिलाकर ७५६ सहस्र कोटि वानर हैं और ये सब कामरूपी हैं। ये सब सुग्रीव के सचिव हैं और सर्वदा किष्किन्धा में रहते हैं। इनकी उत्पत्ति देवताओं और गन्धर्वों से है। ये दोनों द्विविद और मयन्द नामक वानर हैं। इन्होंने ब्रह्मा की अनुमति से अमृतपान किया था। वायुपुत्र के नाम से प्रसिद्ध केसरीनन्दन वह हनुमान हैं। इन्होंने लङ्का को जलाया था। बाल्यावस्था में क्षुधित हो और बालसूर्य्य को फल समझ, उसे खाने के लिये ये तीन सहस्र योजन ऊपर को उछल गये थे। तो भी वहाँ तक न पहुँच कर, नीचे पहाड़ पर गिरे, गिरने से इनकी ठोड़ी टूट गयी तभी से इनका नाम हनुमान पड़ा।

हनुमान के पास लक्ष्मण हैं जो राम की दहिनी ओर हैं। राम की दाईं ओर विभीषण हैं। ये सुग्रीव हैं जो इतने वानरों को साथ लिये युद्ध के लिये प्रस्तुत हैं।

अपने नौकरों के मुख से शत्रु के वीरों की प्रशंसा सुन रावण के शरीर में आग सी लग गयी। उस समय और तो कुछ उसे करते धरते बन न पड़ा—उन बेचारे दोनों मन्त्रियों (शुक—सारन) को वहाँ से तिरस्कार पूर्वक निकाल कर, महोदर द्वारा चार दूतों को बुलवाया। जब वे आये तब उनको राम के शीविर के संवाद लाने के लिये भेजा।

वे चारो शार्दूल को आगे कर सुवेल पर्वत पर पहुँचे और सेना को देखने भालने लगे। वानरों ने उन्हें पहचान लिया और पकड़कर उन्हें वे पीटने लगे। किन्तु दयालु चित्त रामचन्द्र ने उन्हें छुड़वा दिया। लौट कर वे रावण से बोले :—

गुप्तचर—महाराज! वानरी सेना असंख्य है और आपके समीप आ पहुँची है। सो अब या तो आप युद्ध करें या सीता को दे कर—सन्धि कर लें।

रावण—यह तो बतलाओ उनमें बड़े बड़े वानर कौन कौन से हैं। उनके नाम और उनकी शक्ति का वर्णन करो।

गुप्तचर—ऋक्षराज का पुत्र सुग्रीव दुर्जय है। अङ्गद के पुत्र जाम्बवान् और धूम्र हैं। बृहस्पति का पुत्र केसरी है, जिसका पुत्र हनुमान है। धर्म का पुत्र सुषेण, चन्द्र का पुत्र दधिमुख, सुमुख, दुर्मुख और महाबली वेगदर्शी हैं। अग्निपुत्र नील सब का स्वामी है। इन्द्र का पौत्र अङ्गद है। अश्विनी कुमारों के पुत्र द्विविद और मयन्द, गवाक्ष, शरभ, गन्धमादन, गज और गवेय ये पाँच पुत्र यमराज के हैं। इनमें से दस करोड़ वानर देवताओं से उत्पन्न हैं। शेष वानरों का वर्णन करने की शक्ति मुझ में नहीं है। संसार में रामचन्द्र के समान कोई नहीं है। उनके गुणों का वर्णन करने वाला भी कोई नहीं है। लक्ष्मण के सामने युद्ध में इन्द्र भी नहीं टिक सकते। श्वेत और ज्योतीर्मुख—ये दोनों सूर्य्य के पुत्र हैं। हेमकूट नाम का वानर कुबेर का पुत्र है। नल नाम वानर विश्वकर्मा का और दुर्दर नामक वानर वसु का पुत्र है।

अनन्तर रावण ने अपने मन्त्रियों को बुलाकर आगे का कार्य्यक्रम निश्चय कर उन्हें विदा किया। लङ्का में विद्युज्जिह्व नामक एक सैनिक बड़ा चतुर कारीगर था। रावण ने उससे राम का बनावटी सिर और उन्हीं जैसा एक धनुष बनवाया। वह सिर ऐसी सफ़ाई के साथ बनाया गया था कि सहसा उसे देख सभी को यह विश्वास हो जाता कि सचमुच यह राम का कटा सिर और राम ही का धनुष है। उस सिर और धनुष को लिये हुए दुष्ट रावण अशोकवाटिका में पहुँचा और राम का सिर तथा धनुष सीता के सामने रख कर सीता से बोला—मेरे सेनापति प्रहस्त ने ससैन्य राम को मार डाला। यह सुन और राम के सिर को देख—सीता को विश्वास हो गया और वे विलाप करने लगीं। इतने में एक राक्षस ने रावण से जा कर कहा कि आपसे सेनापति प्रहस्त मिलना

चाहते हैं। यह सुन रावण तुरन्त वहाँ से चला गया, उसके जाते ही सिर और धनुष बाण भी अदृश्य हो गये।

इतने में विभीषण की स्त्री सरमा सीता को देखने आयी और उसने रामचन्द्र की राज़ी खुशी के समाचार सुना कर सीता को धीरज बँधाया और कहाः—

सरमा—राम मारे नहीं गये, यह रावण की सारी माया थी। लक्ष्मण सहित राम समुद्र के दक्षिण तट पर, सेना लिये पड़े हैं। कहो तो तेरा सन्देशा उन तक पहुँचा दूँ और उनका तुमको।

सीता—यदि तुझ पर तेरी ऐसी ही कृपा है तो गुप्त रूप से रावण का क्या विचार है—यह संवाद ला दे।

सरमा "बहुत अच्छा" कह कर वहाँ से गुप्त-रूप से रावण के पास गयी और रावण की सारी बातें सुन आयी। लौट कर उसने सीता से कहा—

सरमा—रावण की माता और वृद्ध मन्त्रियों ने रावण को बहुत समझाया कि सीता को दे डाल, पर वह नहीं मानता, जब तब वह मारा नहीं जाता, तब तक तुम उसके पास से नहीं जा सकतीं। साथ ही उसकी मृत्यु भी अति निकट है।

सीता और सरमा में ये बातें हो ही रही थीं कि इतने में राम के शिविर में दुन्दुभी का शब्द हुआ। उस शब्द को सुन रावण ने अपने मन्त्रियों से कहा कि तुम डर के मारे चुप चाप बैठे एक दूसरे का मुंह क्यों ताक रहे हो? इस पर रावण के नाना माल्यवान नामक राक्षस ने रावण से कहा—" अजी सीता को दे कर राम से मेल करलो।" पर यह शुभ परामर्श रावण के मन पर न चढ़ा। माल्यवान वहाँ से उठ कर अपने घर चला आया। तब रावण ने मन्त्रियों की सम्मति के अनुसार लङ्का की नाकेबन्दी की। लङ्का के पूर्व द्वार पर प्रहस्त को, उत्तर द्वार पर शुक और सारन को मध्य गुल्म पर विरूपाक्ष को, दक्षिणद्वार पर महापार्श्व और महोदर को, और पश्चिम द्वार इन्द्रजित को रहने को आज्ञा दी और यह भी कह दिया कि उत्तर द्वार पर मैं भी आऊँगा।

उधर रामचन्द्र की ओर विभीषण ने अपने अनुचरों को लङ्का में गुप्तचरों के रूप में रख छोड़ा था। उनके द्वारा रावण युद्ध की जो तैयारियाँ करता—उनका समाचर रामचन्द्र को पल पल पर मिलता रहता था। लङ्का की नाकेबन्दी का समाचार सुन श्रीरामचन्द्र भी सतर्क हुए। उन्होंने भी अपनी सेना के मुख्य मुख्य सेनापतियों से आक्रमण का काम निर्धारित करने के अर्थ, उनको एकत्र किया। उस परामर्शदात्री समिति में ये थे—सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान्, विभीषण, अङ्गद, लक्ष्मण, शरभ, बान्धवों सहित सुषेण, मयन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, कुमुद, नल और पनस। सब के एकत्र होने पर, विभीषण ने कहा—

विभीषण—अनल, पनस, सम्पति और प्रमति—ये चारों मेरे अनुचर पक्षी का रूप धर लङ्का का समाचार यह लाये हैं कि रावण ने लङ्का की चौकसी के लिये अपने चुने चुने सैनिकों का नियुक्त कर दिया है। अर्थात् उसने दक्षिण द्वार की रक्षा का भार महापार्श्व और महोदर को सौंपा है। उत्तर द्वार पर वह स्वयं है, पूर्व ओर की रक्षा प्रहस्त का सौंपी गई है। पश्चिम ओर इन्द्रजीत के आधिपत्य में सेना है और बीच में विरूपाक्ष नियुक्त किया गया है।

यह सुन कर राम ने कहाः—

राम—लक्ष्मण सहित मैं तो उत्तर की ओर रहूँगा, अङ्गद दक्षिण की ओर जाँय, नील पूर्व की ओर और हनुमान पश्चिम की ओर। सुग्रीव जाम्बवान् और विभीषण बीच में लड़ें। चारों अनुचरों सहित विभीषण और दो भाई हम—मनुष्य रूप में रहें—जिससे किसी प्रकार की गड़बड़ी न होने पावे।

इस प्रकार सेना का विभाग कर मन्त्रियों सहित श्रीराम सुवेल पर्वत पर जा बैठे। वहाँ से

लङ्का में रावण को देख सुग्रीव से न रहा गया। वे क्रोध में भर और एक ही छलाङ्ग में तुरन्त रावण के पास जा ही तो पहुँचे। दोनों में हत्थी हत्था और मुक्की मुक्का होने लगा। बहुत देर तक यह मल्लयुद्ध हुआ। अन्त में थक कर रावण ने ठगी करनी चाही। पर सुग्रीव ने ठगी का जवाब ठगी से दिया और वहीं से कुलाच मार फिर सुवेल पर्वत पर वे चले आये। तब रामचन्द्र ने सुग्रीव को शान्त कर और उनके पराक्रम तथा साहस की प्रशंसा कर आगे के लिये समझाया कि ऐसे जोखों के काम में कभी हाथ न डालना चाहिये। यह कह कर रामचन्द्र उस पर्वत से उतरे और सेना सहित लङ्का की ओर बढ़ कर, लक्ष्मण को लिये हुए लङ्का के उत्तर द्वार पर जा डटे। अङ्गद ऋषभ, गवाक्ष, गज, गवय, दक्षिण द्वार पर। नील मयन्द और द्विविद पूर्व द्वार पर और हनुमान और प्रजङ्घ पश्चिम द्वार पर गये। सुग्रीव बीच में रहे।

तदनन्तर विभीषण के परामर्श के अनुसार रामचन्द्र ने अङ्गद को लङ्का में भेजा। अङ्गद शून्य मार्ग से रावण की राजसभा में पहुँचे। वहाँ उन्होंने अपना परिचय देकर रावण को रामचन्द्र का सन्देशा सुनाया। दुर्मति रावण ने लाल लाल नेत्र कर, वालिपुत्र को पकड़वा कर, मरवा डालने के लिये, निकटस्थ चार राक्षसों को आज्ञा दी। उन राक्षसों द्वारा आक्रान्त होने पर, अङ्गद ने वहीं उन चारों को मार डाला। फिर पदाघात से रावण के भवन को गिराकर और अनेक कड़ी कड़ी बातों से रावण का तिरस्कार करके और राक्षस मण्डली को डरा कर, आनन्दित मन, अङ्गद राम के पास लौट आये और स्वामी को प्रणाम किया।

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र ने लङ्का को घेरा। ईशान कोण पर दस करोड़ वानर लेकर कुमुद गया। अग्निकोण पर शतवाली ने बीस कोटि वानरों को ले कर चढ़ाई की। नैऋत्यकोण पर करोड़ों वानरों को ले कर तारा का पिता सुषेण गया। वायव्य कोण पर लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ही ठहरे थे और दोनों दिशाओं पर अर्थात् उक्त और वायव्य पर राम ही की देखरेख थी। सुग्रीव करोड़ वानरों को ले और गवाक्ष कोटि भालुओं के साथ वहीं थे। धूम्र भी वहीं था और गज, गवय, शरभ और गन्धमादन सारी सेना का निरीक्षण कर रहे थे।

रावण ने भी वानरों से युद्ध करने के लिये राक्षसों को आज्ञा दी। वे लोग निकले और दोनों दलों में परस्पर युद्ध होने लगा।

इस युद्ध में मेघनाद लक्ष्मण के साथ, प्रजङ्घ सम्पाति नाम वानर के साथ, जम्बुमालि हनुमान के साथ, शत्रुघ्न विभीषण के साथ, यतन गज के साथ, निकुम्भ नील के साथ, प्रघस सुग्रीव के साथ, वज्रमुष्टि मयन्द के साथ, अशनिप्रभ द्विविद के साथ, प्रतपन नल के साथ, और विद्युन्माली सुषेण के साथ युद्ध करने लगे। इनके अतिरिक्त अनेक वानर और राक्षस परस्पर युद्ध करने लगे।

मेघनाद ने अङ्गद पर गदा चलाई। अङ्गद ने उसे बीच ही में पकड़ कर, उसीसे उसके रथ, घोड़े और सारथी को नष्ट कर डाला। प्रजङ्घ ने तीन बाण सम्पाति के मारे तब सम्पाति ने एक पेड़ उखाड़ कर, उससे प्रजङ्घ को मार डाला। जम्बुमालि ने हनुमान की छाती में शक्ति मारी। हनुमान कूद कर उसके रथ पर चढ़ गये और मारे थप्पड़ों के उसके प्राण वहीं ले लिये। नल ने तपन नामक अपने प्रतिद्वन्द्वी राक्षस की आँखें निकाल लीं। सुग्रीव ने प्रघस का काम तमाम किया। विरूपाक्ष लक्ष्मण के हाथ से मारा गया। अग्निकेतु, मित्रघ्न, रश्मिकेतु, और यज्ञकोप को राम ने मारा। वज्रमुष्टि को मयन्द ने मार गिराया। निकुम्भ जब नल और नील के बाण मार कर हँसा; तब नील ने उसीके रथ के पहियों को निकाल, उस पहिये से, निकुम्भ को उसके सारथि सहित यमलोक भेज दिया। अशनिप्रभ

राक्षस द्विविद् के हाथ से मारा गया। विद्युन्माली राक्षस को सुषेण वानर ने मार डाला।

रात होने पर भी युद्ध होता ही रहा। यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, वज्रदंष्ट्र, शुक और सारन श्री रामचन्द्र के हाथ से मारे गये। अङ्गद ने मेघनाद के रथ और सारथि को नष्ट कर डाला। तब मेघनाद वहीं अलक्षित हो गया। सब ने अङ्गद की बड़ी प्रशंसा की। इतने में मेघनाद छिप कर दोनों भाइयों पर बाण बरसाने लगा। उसको आकाश में ढूँढ़ने के लिये, रामचन्द्र ने, सुषेण के दोनों भाइयों को, शरभ, द्विविद, हनुमान, सानुप्रस्थ, ऋषभ और ऋषभस्कन्ध नामक दस वानरों को भेजा। पर इन लोगों को उसका कुछ भी पता न चला। मेघनाद ने दोनों भाइयों को और फिर सब वानरों को मूर्च्छित कर लङ्का में जा अपने पिता से सारा हाल कहा। उस समय रावण के आनन्द की सीमा ही न रही। उसने प्रसन्न हो मेघनाद को अपनी छाती से लगा लिया। फिर मेघनाद को विदा कर, सीता को पुष्पक विमान में त्रिजटा—उन्हें रामचन्द्र लक्ष्मण को दिखलाने के लिये भेजा। सीता उनकी दशा देख रोने लगी। तब त्रिजटा ने कहाः—

त्रिजटा—हे सीता! विलाप मत करो। ये दोनों भाइ मरे नहीं हैं। ऐसा कौन प्राणधारी है जो इन्हें जीत ले। यदि वे मरे होते; तो यह पुष्पक विमान तुम्हें धारण नहीं कर सकता था।

इस पर सीता ने कहा—"ऐसा ही हो।" तब त्रिजटा सीता को लेकर लङ्का में लौट गयी।

उधर राम को मूर्च्छित देख उनके मित्र सुग्रीव बहुत दुःखी हुए। तब विभीषण ने उन्हें समझाया फिर वानरी सेना सम्भाली गयी। प्रधान प्रधान वानर अपनी अपनी सेना और दोनों भाइयों की रक्षा करने लगे। इतने में रामचन्द्र की मूर्च्छा भङ्ग हुई। वे सचेत हुए। किन्तु लक्ष्मण अभी मूर्च्छित ही पड़े थे। उनको उस दशा में देख राम विलाप करने लगे। विलाप करते हुए वे बोले—

रामचन्द्र—मैं अब अयोध्या जा कर क्या करूँगा। मैं प्रतिज्ञा करके भी हा! विभीषण को लङ्का का अधीश्वर न बना सका। मेरी बात झूठी पड़ी। सुग्रीव! तुमको जो करना चाहिये था—सो तुमने किया। मैं तुम से सन्तुष्ट हूँ। अब तुम अपनी सेना ले कर किष्किन्धा को लौट जाओ।

इस प्रकार रामचन्द्र का विलाप सुन सारी वानर मण्डली रोने लगी। इतने में उस वानर मण्डली के भीतर हाथ में गदा लिये विभीषण दिखलाई पड़े। वानरों ने भ्रमवश उन्हें मेघनाद समझा और डर कर वे भागने लगे। इस पर सुग्रीव ने उनके भागने का कारण जानना चाहा। तब युवराज अङ्गद ने कहा—"राम और लक्ष्मण की यह दशा देख सब व्यथित हैं।" सुग्रीव ने कहा—"नहीं, इसका कुछ और कारण है।" इतने में विभीषण ही सुग्रीव के समीप जा पहुँचे। तब सुग्रीव ने कहा कि वानरों ने विभीषण को मेघनाद समझ लिया है। अतः डर कर वे भाग रहे हैं। उनको समझा कर लौटाओ। तब समझा बुझा कर सब वानर लौटाये गये। विभीषण ने सुग्रीव और राम को अशीर्वाद दिया और दोनों भाइयों की दशा देख वे रोने लगे। तब सुग्रीव ने उन्हें समझाया और अपने ससुर सुषेण से कहा कि जब दोनों भाइ सचेत हों; तब इन्हें किष्किन्धा में ले जाना। हम रावण को सपुत्र मार कर सीता को लावेंगे। सुषेण ने कहाः—

सुषेण—जब देव और असुरों में परस्पर युद्ध हुआ था, तब असुर भी इसी प्रकार छिप कर देवताओं को घायल किया करते थे। तब बृहस्पति घायलों को औषधियों से चङ्गा किया करते थे। उन औषधियों के नाम सञ्जीवकरणी और विशल्या है। ये समुद्र में चन्द्र और द्रोण पर्वत पर मिलती हैं और उनको सम्पाति और पनस पहचानते हैं। सो हनुमान को भेज कर उन दोनों को मँगवाइये।

मेघनाद ने वानरी सेना को नागपाश में बाँधा था। सो इतने में गरुड़ को आते देख—सब नाग

अपने आप भाग गये। गरुड़ ने दोनों भाइयों को हाथ से स्पर्श कर, उन्हें सचेत किया। देखते देखते ही उनके घाव भर गये। तब रामचन्द्र जी ने उनसे पूँछा—

राम—"आप कौन हैं जिन्होंने हम पर इतनी कृपा की है?"

गरुड़—मैं आपका मित्र गरुड हूँ। आपकी विपत्ति का हाल सुन, आपकी सहायता के लिये आया हूँ।

फिर वे उनकी प्रदक्षिणा कर चले गये।

दोनों भाइयों को चङ्गा देख, वानर प्रसन्न हुए और फिर लङ्का पर चढ़ाई की। रावण दूत के द्वारा समाचार पाकर बहुत पछताया और लड़ने के लिये धूम्राक्ष को भेजा। वह सेना सजा भेड़िये और सिंह मुखवाले खच्चरों के रथों पर सवार हो युद्ध के लिये लङ्का के पश्चिम द्वार से निकला। उस द्वार पर हनुमान थे। युद्ध होने लगा। राक्षसों को भगते देख धूम्राक्ष ने वानरों पर चोट की। तब हनुमान ने उसे मार डाला। उसके मरते ही उसके साथी राक्षस वहाँ से भाग कर लङ्का में पहुँचे।

धूम्राक्ष का मारा जाना सुन रावण ने वज्रदंष्ट्र को भेजा। वह सेना ले दक्षिण फाटक से निकला। वहाँ पर अङ्गद थे। दोनों में युद्ध होने लगा। दोनों में युद्ध बहुत देर तक होता रहा। अन्त में वज्रदंष्ट्र मारा गया और उसके साथी राक्षसों ने भाग कर—उसके मारे जाने का समाचार रावण को सुनाया।

वज्रदंष्ट्र का मारा जाना सुन रावण ने अकम्पन को भेजा। यह लड़ा तो बहुत देर तक, पर हनुमान के हाथ से यह भी मारा गया। तब उसके साथी राक्षस भाग गये।

उसकी मृत्यु का समाचार सुन रावण दीन और क्रुद्ध होकर लङ्का के सब गुल्मों को देखने के लिये स्वयं निकला। उन गुल्मों को वानरों द्वारा घिरा देख वह प्रहस्त से बोला:—

रावण—हम तुम, कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत और निकुम्भ को छोड़ और कोई भी इन वानरों को यहाँ से नहीं हटा सकता। अतः तुम जाओ और इन वानरों को मार कर, विजयी हो।

प्रहस्त अपनी सेना ले युद्ध के लिये बाहिर आया। उसके साथ उसके सचिव नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत भी चले। इन सब के साथ वह पूर्व ओर निकला। उसे आते देख राम ने विभीषण से उसका परिचय जानना चाहा। तब विभीषण ने कहा कि यह रावण का सेनापति प्रहस्त है। समूची राक्षस सेना के तीन भाग का यह अधिपति है। उसे आते देख वानर भी तैयार हो गये। दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हो गया। द्विविद ने नरान्तक को, दुर्मुख ने समुन्नत को, जाम्बवान् ने महानाद को और तार ने कुम्भहनु को मार डाला। फिर बड़ी देर तक लड़ने के बाद, नील के हाथ से प्रहस्त भी यम लोक सिधारा।

प्रहस्त के मारे जाने पर स्वयं रावण सेना सहित लड़ने के लिये रणक्षेत्र में उपस्थित हुआ। उसकी सेना को देख राम ने विभीषण से पूँछा।

राम—अब ये कौन २ लड़ने को आ रहे हैं?

विभीषण—यह दूसरा अकम्पन है। यह इन्द्रजीत है, यह अतिकाय है। यह महोदर है, यह पिशाच नाम का राक्षस है। यह त्रिशिरा है, यह कुम्भ है, यह निकुम्भ है। यह दूसरा नरान्तक है और यह स्वयं रावण है।

जब विभीषण उङ्गली के निर्देश से इस प्रकार सब का परिचय दे चुके, तब श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण सहित उनसे लड़ने को खड़े होगये। रावण ने राक्षसों से कहा कि तुम लोग जाकर नगर की रक्षा करो। कहीं ऐसा न हो कि नगर को सूना जान—ये वानर दूसरी ओर से नगर में आ पड़ें और वहाँ उपद्रव मचाने लगें। उनको लङ्का में भेज रावण वानरों को मारने लगा।

तब सुग्रीव ने उसके ऊपर एक पर्वत फेंका, जिसको बाणों द्वारा रावण ने बीच ही में चूर चूर कर डाला और एक बाण से सुग्रीव को घोटिल किया। वानर राज की यह दशा देख कर

गवाक्ष, गवय, सुषेण, ऋषभ, ज्योतिर्मुख और नल ने मिलकर रावण को घेरा। उसने इन सब को भी मूर्छित कर दिया और वह फिर वानरों को मारने लगा। वानरों को विकल देख स्वयं रामचन्द्र उसके साथ लड़ने को उद्यत हुए, पर लक्ष्मण ने उससे लड़ने के लिये, राम से आज्ञा माँगी। राम ने लक्ष्मण को युद्धोचित उपदेश देकर भेजा। इतने में हनुमान झपट कर रावण के पास पहुँचे और बोले—"मैं ही तेरे पुत्र अक्षय को क्षय करने वाला हूँ—क्या तू मुझे नहीं पहचानता?" सुनते ही रावण ने हनुमान के एक मूँका मारा, जिसके आघात से हनुमान का शरीर काँप गया। फिर कुछ ही क्षणों में सम्हल कर हनुमान ने ऐसे ज़ोर से रावण के एक घूँसा मारा कि रावण तिलमिला कर मूर्च्छित होगया और जब उसे चेत हुआ, तब उठ कर वह हनुमान के पराक्रम की प्रशंसा करने लगा। प्रशंसा सुन हनुमान ने झुंझलाकर कहा—"मुझे धिक्कार है कि मेरा घूँसा खाकर भी तू अभी जीवित है।"

तब तो क्रोध में भर रावण ने हनुमान को फिर मारा और उनको मूर्च्छित देख वह नील से जा भिड़ा। नील ने बड़ा कौतुक किया। वे रावण के बाणों की चोट खाकर, और लघु रूप धारण कर रावण के रथ की ध्वजा पर जा बैठे और वहाँ से उतर कभी रावण के मुकुट पर और कभी उसके धनुष पर दौड़ कूद मचा कर उसके काम में बाधा डालने लगे। इस चमत्कार को देख लक्ष्मण, हनुमान और रामचन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। रावण को भी यह देख बड़ा आश्चर्य हुआ और नील के वध के लिये उसने आग्नेयास्त्र चलाया। पर नील स्वयं अग्नि के पुत्र थे। अतः वे मरे तो नहीं पर पृथिवी पर गिर पड़े। नील को भूमि पर पटक रावण लक्ष्मण से लड़ने लगा। पर लक्ष्मण के बाणों से जब वह विकल हो गया, तब उसने लक्ष्मण पर शक्ति चलायी, जिससे वे मूर्च्छित हो गये। उनको मूर्च्छित देख, रावण उन्हें उठाने लगा, पर वह उन्हें हिला तक न सका। तब उसने दोनों हाथों से उन्हें दबा कर छोड़ दिया। यह देख हनुमान दौड़े और रावण के घूँसा मारा, जिससे वह मूर्च्छित हो भूमि पर गिर गया। इस बीच में हनुमान लक्ष्मण को उठा कर रामचन्द्र जी के पास ले गये। लक्ष्मण की मूर्च्छा भङ्ग हुई और वे सचेत हुए। उधर रावण भी सचेत हुआ। तब रामचन्द्र हनुमान की पीठ पर चढ़ कर उससे लड़ने को चले। रावण ने हनुमान को मारे बाणों के व्यथित कर डाला, तब रामचन्द्र ने उसको रथ, धनुष और मुकुट रहित करके कहा—"अब तू परिश्रान्त है, जा स्वस्थ हो आ और अस्त्र लेकर तथा रथ पर बैठ कर फिर आ। तब मैं तुझे अपना पराक्रम दिखाऊँगा।" रावण दीन मुख हो लङ्का में चला गया।

रावण लङ्का में जाकर राक्षसों के बीच में कहने लगा—

रावण—ब्रह्मा ने मनुष्य द्वारा मुझे भय बतलाया था। वही भय अब आकर उपस्थित हुआ है। इक्ष्वाकुकुलसम्भूत राजा अनरण्य ने भी शाप दिया था कि तेरे परिवार सहित मृत्यु का कारण मेरे कुल ही में जन्म लेगा। वेदवती ने भी मुझे शाप दिया था। जान पड़ता है वही वेदवती यह सीता है। फिर पार्वती, नन्दी, शिव, रम्भा और वरुण की कन्या ने भी जो कहा था, वह प्रत्यक्ष दीख पड़ता है। अतएव तुम लोग नगरी की रक्षा सावधानी से करना। नौ दिन हुए कुम्भकर्ण सोया है, उसे जाकर जगाओ। क्योंकि वह तो छः महीने तक सोता ही रहेगा। ऐसे गाढ़े समय में उसीकी सहायता से काम चलेगा।

राक्षसराज के आज्ञानुसार राक्षसों ने कुम्भकर्ण को जाकर जगाना आरम्भ किया। पर वह क्यों जागने लगा। तब लोगों ने उसकी छाती पर हाथी चढ़ाये। तब कहीं उसकी निद्रा भङ्ग हुई। उठते ही वह भोजन की सामग्री पर टूट पड़ा। जब पेट भरा तब उसने जगाने का कारण पूँछा। यूपाक्ष ने उसको सब कह सुनाया।

सब सुन सुनाकर कुम्भकर्ण ने कहा—हम सब को मार कर तब रावण से मिलेंगे। इस पर महोदर ने कहा—"प्रथम राजा से मिलिये, फिर जो कुछ करना हो कीजियेगा। कुम्भकर्ण रावण के पास गया।

कुम्भकर्ण को आते देख राम ने विभीषण से पूँछा कि—"यह कौन चला आता है; जिसे देख मारे डर के हमारे वानर भागे जा रहे हैं। उत्तर में विभीषण ने कहा :—

विभीषण—महाराज, यह कुम्भकर्ण है। जिस समय यह पैदा हुआ था, उस समय इसने सहस्रों प्राणियों को खा डाला। तब सब ने इन्द्र की शरण ली। इन्द्र ने तब इस पर वज्र चलाया जिससे यह काँप कर उठा किन्तु हानि इसको तिल भर भी न हुई। तदनन्तर इसने इन्द्र के हाथी का दाँत उखाड़, इन्द्र की छाती में मारा, उस दाँत के आघात से इन्द्र मूर्च्छित हो गये। तब इन्द्र अन्य देवों को साथ ले फरियाद करने ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने राक्षसों को बुला भेजा। उनके साथ कुम्भकर्ण भी गया। तब इसे देख ब्रह्मा ने शाप दिया कि तू मृतक की भाँति सोवेगा। भाई के इस दारुण शाप को सुन रावण ने बहुत कुछ अनुनय विनय की। तब ब्रह्मा ने अनुग्रह कर कहा कि यह छः महीने सोवेगा और एक दिन जागेगा। सो पितामह के उसी शाप से यह सोता था। सङ्कट पड़ने पर रावण ने इसे जगवाया है। उसीको देख वानर भाग रहे हैं। अतएव वानरों को समझा देना चाहिये कि यह एक यंत्र खड़ा किया गया है। तब वानरों का भय दूर होगा और वे मन खोल कर लड़ेंगे।

यह सुन राम ने नील को सेना सजाने की आज्ञा दी। जब सेना तैयार हो गयी—तब वे ससैन्य लङ्का के द्वार पर पहुँच गये और राक्षसों को मारने लगे।

इतने में कुम्भकर्ण रावण के पास पहुँच गया। रावण ने उसे अपने पास बिठाया और फिर उससे अपनी सारी दुःख कहानी कह सुनाई; जिसे सुन कुम्भकर्ण ने कहा :—

कुम्भकर्ण—भाई! मन्दोदरी और विभीषण ने जो कहा था वही हम लोगों के लिये हितकर था। वह तो तुमने माना नहीं। अब क्यों पछताते हो?

यह सुन रावण ने क्रोध प्रकट किया। तब कुम्भकर्ण ने कहा :—

कुम्भकर्ण—आप सोच विचार में क्यों पड़ते हैं। मैं अकेले ही आपके शत्रुओं को मार डालूँगा। यह सुन महोदर ने कहा :—

महोदर—यह तुम्हारी लड़कों जैसी बात है। तुम अकेले राम को नहीं मार सकते।

फिर रावण को सम्बोधन कर कहा :—

महोदर—हम द्विजिह्व, संहारी, कुम्भकर्ण, और वितर्दन राम को मारने जाते हैं। आप नगर में यही ढिंढोरा पिटवा दें। यदि हम लोगों का जय हुआ तब तो और कुछ करना धरना न पड़ेगा और यदि हम हारे, तो आकर आपका चरण गहेंगे और कहेंगे कि राम सेना-सहित मारे गये। तदनन्तर आप हम लोगों को पारितोषिक देकर नगर में समाचार फैला देना कि राम सेना सहित मारे गये। सीता जब औरों के मुख से राम का वध सुनेगी तब निश्चय ही आपके वश में हो जायगी। आप शत्रु के सामने न जायँ। यह सुन कुम्भकर्ण ने रावण से कहा :—

कुम्भकर्ण—मैं आज रामचन्द्र को मारूँगा, फिर महोदर की ओर घूम कर उससे कहा :— तुम्हीं लोगों ने तो यह सर्वनाश किया है। इस पर रावण ने कहा—"यह महोदर डर गया है। तुम युद्ध के लिये जाओ। कुम्भकर्ण विदा होकर लड़ने के लिये चला। रावण ने उसके साथ सेना भी कर दी। कुम्भकर्ण का विशाल शरीर देख और उसके गर्जन को सुन वानर भाग निकले। नील, नल, गवाक्ष और कुमुद को भागते देख अङ्गद ने कहा—"वाह! वाह! यह क्या करते हो?" यह सुन वे सब बड़े बड़े वृक्ष लेकर लौटे।

पर कुम्भकर्ण की मार के सामने वे न टिक सके। तब फिर अङ्गद के समझाने पर ऋषभ, शरभ, मयन्द, धूम्र, नील, कुमुद, गवाक्ष, रम्भ, तार, द्विविद, पनस और हनुमान लड़ने लगे।

राक्षसों और वानरों में युद्ध होने लगा। कुम्भकर्ण वानरों को खाने लगा। द्विविद ने एक पर्वत लेकर कुम्भकर्ण पर फेंका जिसके गिरने से राक्षस तो बहुत मरे। पर वह कुम्भकर्ण तक न पहुँचा। इसी प्रकार और बहुत से राक्षस पर्वतों के नीचे दब दब कर मरे। इस बार हनुमान ने उसके एक पर्वत मारा। उसके लगने से कुम्भकर्ण काँप उठा और उसके शरीर से लोहू निकलने लगा। इसके बदले में हनुमान के उसने एक त्रिशूल खींच कर मारा; जिसके लगने से हनुमान के बड़ी पीड़ा हुई और वे गरज उठे। तब नील ने एक पर्वत उस पर फेंका जिसे उसने मूँका मार कर तोड़ डाला। तब ऋषभ शरभ नल, गवाक्ष उस पर झपटे। उसने इन सब को भी विमुख कर मूर्च्छित कर दिया। तब अङ्गद ने एक पर्वत उठा कर उस पर फेंका। उसकी चोट से क्रुद्ध होकर उसने अङ्गद पर शूल चलाया। अङ्गद ने शूल के निशाने को बचा उसकी छाती में लात मारी। लात की चोट से कुम्भकर्ण मूर्च्छित हो गया पर सचेत होने पर उसने अङ्गद के एक मूँका जमाया। इस बार अङ्गद मूर्च्छित हुए। तब कुम्भकर्ण शूल लेकर सुग्रीव पर दौड़ा। सुग्रीव ने उसके एक बड़ा भारी पत्थर का ढोका खींच कर मारा जो उसकी छाती पर लग कर चूर चूर हो गया। तब उसने सुग्रीव के शूल खींच कर मारा। पर उस अढ़ाई हजार मन भारी लोहे के त्रिशूल को हनुमान ने बीच ही में पकड़ कर, उसके दो टूक कर डाले। तब तो सुग्रीव पर कुम्भकर्ण ने एक बड़ा भारी पर्वत फेंका जिसके लगते ही वह मूर्च्छित हो गये। सुग्रीव के गिरते ही कुम्भकर्ण ने उन्हें उठा लिया और वह लङ्का की ओर चला।

यह देख हनुमान सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये? मन ही मन वे कहने लगे कि यदि मैं सुग्रीव को चलकर छुड़ाऊँ भी तो वे मुझ पर कहीं अप्रसन्न न हो जाँय। वे अपने आप छूट आवेंगे। थोड़ी देर तक देखना चाहिये। यह निश्चय कर उन्होंने सेना को ठिकाने किया। इतने में खुली सड़क पर स्वच्छ शीतल पवन की ठण्डक से सुग्रीव की मूर्च्छा भङ्ग हुई। अपने को कुम्भकर्ण के वश में देख वे अपना कर्त्तव्य विचारने लगे। थोड़ी ही देर में उन्होंने हाथ के नखों से उसके कानों को, दाँतों से उसकी नाक को और पैरों के नखों से उसकी दोनों ओर की पसलियों को विदीर्ण कर डाला। कुम्भकर्ण का सारा शरीर रुधिर से रंग गया। तब तो उसने सुग्रीव को पृथिवी पर पटक कर पीटना आरम्भ किया। पर वे उसके पञ्जे से छूट आकाश मार्ग से तुरन्त रामचन्द्र के पास पहुँच गये अपने नाक और कानों को कटा देख कुम्भकर्ण लौटा और वानरों को मारने लगा। तब तो लक्ष्मण से न रहा गया और उन्होंने उसके एक बाण मारा। उस बाण की पीड़ा से व्यथित हो उसने कहा—"हम अब पहले राम ही को मारेंगे।" इस पर लक्ष्मण ने कहा—"राम ये हैं" तब तो वह उनकी ओर दौड़ा। वह रामचन्द्र के निकट पहुँच भी नहीं पाया था कि रामचन्द्र ने क्रमशः उसके दोनों हाथ, दोनों पैर और सिर काट कर, उसे यमपुर भेज दिया।

जब राक्षसों ने लौट कर रावण को कुम्भकर्ण के मारे जाने का समाचार सुनाया, तब तो रावण ने भाई के लिये बहुत विलाप किया। महोदर और महाकाय नामक रावण के भाई; देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय नामक रावण के पुत्र भी विलाप करके रोने लगे। कुछ देर बाद त्रिशिरा उत्तेजित हो बोला:—"मैं लड़ने जाऊँगा और शत्रु को मारूँगा।"

रावण ने अपने चारों बेटों को युद्ध करने के लिये भेजा और उनकी रक्षा के लिये युद्धोन्मत्त और मत्त भेजे गये। सुदर्शन नामक हाथी पर महोदर बैठा; किन्तु त्रिशिरा और अतिकाय रथ पर चढ़े। नरान्तक घोड़े पर सवार हुआ और

महापार्श्व गदा लिये हुए था। नरान्तक ने वानरी सेना को मार भगाया। तब सुग्रीव ने अङ्गद को भेजा उसने अङ्गद की छाती में प्रास मारी, पर वह उनकी छाती में लग कर टुकड़े टुकड़े हो गयी। तब अङ्गद ने लात मार कर उसके घोड़े को गिराया। उसने अङ्गद को, घूसा मार कर अचेत कर दिया। पर जब अङ्गद सचेत हुए तब तो उन्होंने उसे मार ही डाला।

नरान्तक को मरा देख, महोदर त्रिशिरा और देवान्तक—तीनों एक साथ अङ्गद पर झपटे। इन तीनों द्वारा घेरे जाने पर भी अङ्गद विचलित न हुए। उन्हों ने एक लात मार कर महोदर के हाथी को गिराया। इतने में इन तीनों राक्षसों से अङ्गद को घिरा देख, हनुमान और नील सहायता के लिये दौड़े। देवान्तक परिघ उठा हनुमान की ओर मुड़ा। पर परिघ चलाने की नौबत ही न आ पायी, हनुमान ने घूँसों ही घूँसों से उसका कचूमर निकाल डाला और वह मारा गया। उधर त्रिशिरा नील से भिड़ गये। त्रिशिरा की सहायता के लिये महोदर दूसरे हाथी पर बैठकर आया और नील को मारने लगा। मार के मारे नील अचेत हो गये। फिर तुरन्त ही सचेत होकर एक पर्वत से महोदर को उसके हाथी सहित नष्ट कर डाला। महोदर को मरा देख त्रिशिरा हनुमान जी को बाणों से घायल करने लगा। हनुमान ने उसके घोड़ों को मार डाला, तब उसने शक्ति चलायी। हनुमान ने वह शक्ति भी तोड़ डाली। तब उसने हाथ में खड्ग लेकर हनुमान पर आक्रमण किया। तब हनुमान ने उसकी छाती में लात मारी। वह मूर्च्छित हो गिर पड़ा। सचेत होने पर वह उठा और उठ कर उसने हनुमान के माथे पर एक घूँसा जमाया। तब हनुमान ने धड़ से उसका सिर ही अलग कर दिया।

महापार्श्व को मरा देख अतिकाय वानरों पर झपटा। उसको देख राम ने विभीषण से पूँछा—"यह कौन है"? उत्तर में विभीषण ने कहा—"यह रावण का पुत्र है। इसका नाम अतिकाय है" इसका जन्म धान्यमालिनी अर्थात् मन्दोदरी के गर्भ से हुआ है।" इतने में उसने राम के पास जाकर उन्हें ललकारा। यह देख लक्ष्मण उससे लड़ने को तैयार हुए। दोनों में युद्ध आरम्भ हुआ। लक्ष्मण ने जब उसे मूर्च्छित किया, तब उसने लक्ष्मण की प्रशंसा की। पर वह बहुत बाणों से चोटिल होने पर भी जब न मरा; तब वायु ने लक्ष्मण से जाकर कहा कि सिवाय ब्रह्मास्त्र के यह और किसी अस्त्र से नहीं मारा जायगा। यह जान लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। अतिकाय मारा गया। उसे मरा देख उसके साथी राक्षस लङ्का के भीतर भाग गये।

इन छहों के मरने का संवाद पाकर, रावण विलाप करने लगा। तब इन्द्रजीत ने कहा कि "जब तक मैं जीता हूँ आप विलाप क्यों करते हैं?" मैं उन दोनों भाइयों को मार कर अभी आता हूँ। ऐसा कह और सेना ले वह युद्ध भूमि में गया और चारों ओर राक्षसों को खड़ा कर हवन करने लगा। फिर अग्नि को तृप्त कर, रथ सहित आकाश में गुप्त हो वह वानरों पर बाण चलाने लगा। तब तो राक्षस और वानरों में भयङ्कर युद्ध हुआ। उसने गुप्त होकर सब वानरों और दोनों भाइयों को मूर्च्छित कर दिया। सब को मूर्च्छित कर वह लङ्का में चला गया। उसने बारह दण्ड में सरसठ करोड़ वानरों को मार गिराया। दोनों भाइयों को मूर्च्छित देख बचे हुए वानर शोकान्वित हुए। विभीषण ने उन सब को समझाया और बत्ती जला कर हनुमान सहित वानरों को आश्वासन प्रदान करने चले। तब उन्होंने देखा कि सुग्रीव, अङ्गद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवान, सुषेण, वेगदर्शी, मयन्द, ज्योतिर्मुख, और द्विविद मृतकों की तरह रणभूमि में पड़े हैं। तब उन लोगों ने प्रयत्न पूर्वक जाम्ववान् को जगाया। विभीषण ने उनसे पूँछा:—

विभीषण—आपके प्राण तो बचे हैं?

जाम्बवान्—मैं इतना घायल हुआ हूँ कि मुझे तुम दिखलाई नहीं पड़ते। तुम्हारे कण्ठ-स्वर

से मैंने तुम्हें पहचान पाया है। यह तो बतलाओ कि हनुमान तो जीता है?

सुग्रीव—राम, लक्ष्मण, अङ्गद और सुग्रीव को छोड़ आपने हनुमान को क्यों पूँछा?

जाम्बवान्—हनुमान यदि जीता है तो हम मरे हुए भी जीते हैं और यदि वह मर गया, तो हम सब जीते हुए भी मरे ही के बराबर है।

तब हनुमान ने पैर छूकर जाम्बवान् को प्रणाम किया; अनन्तर जाम्बवान् ने कहा:—

जाम्वान्—बेटा। तुम हिमालय पर्वत पर होकर, ऋषभ पर्वत पर जाना। वहाँ से तुम्हें कैलास पर्वत दीख पड़ेगा। इन दोनों के बीच में ओषधि नाम का एक पर्वत है। इसी पर मृत-सञ्जीवनी, विशल्यकरिणी, सुवर्णकरणी और सन्धानकरणी—ये चार बूटियाँ हैं। अतः तुम उन चारों को ले आओ।

हनुमान तुरन्त वहाँ से रवाना हुए और हिमालय पर पहुँचे। वहाँ अनेक ऋषि और देवों के स्थानों को देखा और ब्रह्मकोष, रजतालय, शक्रालय, रुद्रशर, प्रमोक्ष, हयानन,[१] ब्रह्मशिर, यमकिङ्कर और अग्निस्थान, कुवेर का स्थान, सूर्यों की बस्ती, ब्रह्मा का घर, शिवधनुष, पृथिवी की नाभि (जिसका दूसरा नाम भूमा भी ...श्वर भगवान् नन्दिकेश्वर, कार्तिकेय, ...हित पार्वती, (जो कन्याओं को लिये दुष्टों ...िया करती हैं) आदि को देखा। ... उन्हें वह पर्वत भी दीख पड़ा जिसका ...म्बवान् ने उन्हें बतलाया था और जिस ...बूटियाँ थीं और जिसका नाम वृष था। ... उस पर चढ़ कर उन ओषधियों को ... लगे, पर वे अर्थी को आया जान छिप ...। तब तो हनुमान क्रोध में भर, उस ...टी को उखाड़ और उसे लिये हुए ... की ओर चले। लङ्का में पहुँच उसे ... को अपनी सेना के बीच में रख दिया। ओषधियों से छूकर पवन के चलने और उसके उन मृतकों के शरीरों में छूने से सब के घाव अपने आप पुर गये और जो मर गये थे वे सब जी उठे। पर राक्षस कोई भी न जिया। इसका कारण यह था कि जब से यह युद्ध आरम्भ हुआ था। तभी से रावण मरे हुए राक्षसों को समुद्र में यह समझ कर फिंकवा दिया करता था कि ऐसा करने से शत्रु पक्ष वालों को मरे राक्षसों की संख्या जान पड़ जायगी और वे जान लेंगे कि इतने राक्षस मारे गये और अभी इतने लङ्का में और हैं। फल यह होगा कि लङ्का में थोड़े राक्षसों को जान वे सब लङ्का में आ पड़ेंगे। जब राम लक्ष्मण सहित सब वानर जी उठे तब हनुमान उस पर्वत को उठा कर जहाँ का तहाँ रख आये।[१]

जब सब वानर जी उठे और खड़े हो गये तब सुग्रीव ने आज्ञा दी कि रात्रि ही में सब कोई आग लेकर लङ्का में घुस पड़ो और लङ्का को फूँक दो और जहाँ कोई राक्षस दीख पड़े उसे तुरन्त मार डालो। उधर तो वानरों ने लङ्का को फूकना आरम्भ किया और इधर रामलक्ष्मण ने बाणों के मारे लङ्का को भर दिया। लङ्का को फुकते देख रावण ने कुम्भकर्ण के बेटे कुम्भ और निकुम्भ को भेजा और उन दोनों के साथ चार और प्रधान राक्षसों को कर दिया। उन चारों के नाम थे यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ और कम्पन। दोनों दलों में फिर लड़ाई छिड़ गयी। अङ्गद ने कम्पन का सामना किया। उसने युवराज अङ्गद के गदा मारी जिसकी चोट से वे मूर्च्छित हो गये। पर सचेत हो और पर्वत ले वे उस पर दौड़े और उसे मारडाला। उसको मरा देख शोणिताक्ष ने अङ्गद का सामना किया। अङ्गद ने उसके हाथ से खड्ग छीन कर, उसे ऐसा मारा

१ हयग्रीव का स्थान।

१ तुलसीदास ने इन ओषधियों का बताया जाना लङ्का के वैद्य विशेष द्वारा लिखा है और उन्होंने इनका काम उस समय पड़ा बतलाया है जब लक्ष्मण के शक्ति लगी थी सोभी रावण के हाथ से नहीं; किन्तु मेघनाद के हाथ से।

कि वह घायल हो गया। उसकी यह दशा देख प्रजङ्घ और युपाक्ष—दोनों अङ्गद पर दौड़े। इतने में शोणिताक्ष भी सचेत हो अङ्गद पर झपटा। उनके द्वारा अङ्गद को घिरा देख, द्विविद और मयन्द भी उनकी सहायता के लिये पहुँच गये और उन तीनों वानरों का उन तीनों राक्षसों के साथ युद्ध होने लगा। इतने में प्रजङ्घ को अङ्गद ने मार डाला। चाचा को मरा देख, युपाक्ष हाथ में तलवार ले रथ से उतर पड़ा। कारण यह था कि उसके बाण चुक गये थे। वह मयन्द वानर के द्वारा और शोणिताक्ष द्विविद के द्वारा मारे गये।

उन दोनों को मरते देख कुम्भ ने द्विविद और मयन्द को घायल किया। अपने दोनों मामाओं को चोटिल देख अङ्गद उससे लड़ने लगे। उसने उनको भी घायल किया। तब जाम्बवान्, सुषेण और वेगदर्शी उसके ऊपर टूटे, पर कोई भी उसका कुछ न कर सका। तब सुग्रीव ने उसके निकट जाकर उसके धनुष को तोड़ डाला और उसकी वीरता की प्रशंसा की। फिर उन दोनों में कुश्ती होने लगी। अन्त में सुग्रीव ने उसे मार डाला।

अपने बड़े भाई का वध देख निकुम्भ ने सुग्रीव पर परिघ चलाई। उसे हनुमान ने अपनी छाती पर रोप लिया जिससे वह टुकड़े टुकड़े हो गयी। हनुमान ने उसके मूँका मारा, जिसकी चोट से वह अचेत हो गया। थोड़ी देर बाद जब वह सचेत हुआ; तब वह हनुमान को उठा ले चला। तब तो हनुमान ने मारे मूँकों के उसे रास्ते ही में समाप्त कर डाला।

कुम्भ और निकुम्भ दोनों का मारा जाना सुन, रावण ने खर के पुत्र मकराक्ष को भेजा। वह रामचन्द्र ही से भिड़ा; क्योंकि उसने अपने पिता का बदला लेना चाहा। पर भला राम से क्योंकर जीत सकता था। राम ने तुरन्त ही उसे विरथ और धनुष-हीन कर दिया। तब उसने शिवप्रदत्त एक त्रिशूल चलाया। जिसे देखते ही देवताओं के छक्के छूट गये। पर राम ने उसे बीच में बाणों से काट दिया। अपने शूल का नाश देख वह घूसा तान कर, रामचन्द्र पर दौड़ा। पर वह रामचन्द्र द्वारा बीच ही में मार डाला गया।

मकराक्ष का मारा जाना सुन रावण ने फिर मेघनाद को भेजा। उसने अग्नि में आहुति दी और अग्नि को तृप्त कर और उनसे रथ पाकर, वह गुप्त रीति से आकाश में जा राम लक्ष्मण पर बाणों की वर्षा करने लगा। उस पर जो अटकल से बाण चलाये जाते थे—उनका उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। क्योंकि वे उसके लगते ही न थे। तब तो रोष में भर लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र से राक्षसमात्र को मार डालना चाहा। तब राम ने उन्हें यह कह कर रोका "एक के अपराध के लिये सब को नष्ट करना न्याय सङ्गत नहीं, ठहरो मैं अभी इसे मारता हूँ।" जब मेघनाद ने देखा कि राम अब अवश्य कोई अमोघ अस्त्र चलावेंगे; तब तो वह डरा और भाग कर लङ्का में जा छिपा। फिर अपने कुटुम्बियों के वध को स्मरण कर, पश्चिम द्वार से निकला और दोनों भाइयों को युद्ध में सन्नद्ध देख, उसने बनावटी सीता को सब वानरों को दिखा उसका झोंटा पकड़ा। तब तो वह बनावटी सीता रोने लगी। यह देख हनुमान ने उसे समझाया कि स्त्री को कभी न मारना चाहिये। इस पर मेघनाद ने कहा :—

मेघनाद—शत्रु को पीड़ा देने वाला काम कैसा ही क्यों न हो करना ही चाहिये। राम ने भी तो ताड़का को मारा था।

यह कह मेघनाद ने उसका सिर काट डाला। सिर काट कर वह गरजा।

हनुमान वानरों को लेकर उससे लड़ने लगे और राक्षसों को भगा दिया। फिर वानरों से कहा—"जिसके लिये हमने इतना श्रम उठाया वह वैदेही मारी गयी। चलो चलकर सुग्रीव और राम से यह वृत्तान्त कहें। फिर जैसा वे लोग कहेंगे, वैसा करेंगे। हनुमान को न देख,

मेघनाद निकुम्भिला देवी के मन्दिर में गया और वहाँ बैठ कर होम करने लगा।

उधर हनुमान ने राम से सारा हाल कहा, जिसे सुन राम दुखी हुए। तब लक्ष्मण उनको समझाने लगे। इतने में अपने सारी सेना को ठहरा कर अपने चारों अनुचरों को लिये हुए विभीषण आये। उस समय का शोक-पूरित दृश्य देख और आँखों में आँसू भर कर, उन्होंने शोक का कारण पूँछा। उत्तर में लक्ष्मण ने कहा कि हनुमान के मुख से मेघनाद द्वारा सीता का वध सुन महाराज शोक कर रहे हैं। यह सुन झट विभीषण ने कहा :—

विभीषण—ऐसा कभी नहीं हो सकता। सीता का मारना तो जहाँ तहाँ उन्हें कोई देख भी तो नहीं सकता। हम लोगों ने रावण को कितना ही समझाया बुझाया कि जानकी राम को लौटा दो; किन्तु जब उसने उन्हें नहीं लौटाया तब वह उन्हें मारने क्यों देगा। सच्च तो यह है कि उसने माया की सीता का सिर काट कर, वानरों को भुलावे में डाला है। जिससे तुम लोग तो सीता के शोक में निमग्न हो और वह निकुम्भिला देवी में बैठ कर निर्विघ्न अपना प्रयोग सिद्ध करे। ब्रह्मा ने उसे ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र और आकाशगामी घोड़ों को दिया। साथ ही यह भी कह दिया है कि जब तक तुम निकुम्भिला में हवन समाप्त न कर चुकोगे; तभी तक तुम अपने शत्रु से मारे जा सकते हो। अतएव लक्ष्मण को आप मेरे साथ भेजिये, जिससे वे उसे हवन पूरा करने के पहले ही मार डालें।

यह सुन रामचन्द्र ने लक्ष्मण को विभीषण के साथ भेजा और उनके साथ हनुमान, जाम्बवान् आदि प्रमुख वानरों को भी भेज दिया।

निकुम्भिला देवी के मन्दिर के चारों ओर राक्षसी सेना व्यूह बाँधे खड़ी थी। उसके साथ वानरों का युद्ध होने लगा। वानर निकुम्भिला देवी के मन्दिर में घुस कर मेघनाद को तङ्ग करने लगे और उसकी हवन की सामग्री को बिगाड़ दिया। तब तो वह क्रोध में भर उठा और रथ पर चढ़ कर युद्ध के लिये निकला, हनुमान को राक्षसों का वध करते देख, उसने उस पर बाण चलाये। इतने में विभीषण ने लक्ष्मण को एक वट वृक्ष को दिखा कर कहा कि जब तक वह उसके नीचे हवन करने को जाय, उसके पहले ही तुम उसका वध करो। इतने में वह राक्षस लक्ष्मण को दिखलाई पड़ा। विभीषण को देख, मेघनाद ने उन्हें बहुत धिक्कारा। विभीषण ने उसे उत्तर देते हुए कहा :—

विभीषण—पराये धन का हरना, पराई स्त्री पर हाथ डालना और अपने सुहृदों पर सन्देह करना—ये तीनों पाप, ऐसा करने वाले का सर्वनाश कर देते हैं। तुम्हारे बाप ने इनमें से कोई दुष्कर्म उठा नहीं रखा, इसलिये उनका मृत्युकाल भी अब बहुत दूर नहीं है। तुम भी अब लौट कर लङ्का का मुख नहीं देख सकोगे।

अनन्तर लक्ष्मण और मेघनाद में युद्ध आरम्भ हुआ। लक्ष्मण के धनुष की प्रत्यञ्चा की टङ्कार सुन मेघनाद के मुख का रङ्ग बदल गया। उसे बड़ा दुःख हुआ। उसकी यह दशा देख विभीषण ने लक्ष्मण से कहा :— "अब शीघ्रता करो; यह अब मरना चाहता है।" यह कह वे स्वयं राक्षसों को मारने लगे। साथ ही अन्य वानरों को सम्बोधन कर उन्होंने कहा:—

विभीषण—देखो प्रहस्त, निकुम्भ, कुम्भकर्ण, धूम्राक्ष, जम्बुमाली, तीक्ष्णवेग, अशनप्रिय सुप्तघ्न, यज्ञकोप, वज्रदंष्ट्र, सह्राद, विकट, अरिघ्न, तपन, मन्द, प्रघास, प्रघस, प्रजङ्घ, जङ्घ, अग्निकेतु, दुर्द्धर्ष, रश्मिकेतु, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व, सूर्य्यशत्रु, अकम्पन, सुपार्श्व, वक्रमाली, कम्पन, सत्ववन्त, देवान्तक, और नरान्तक मारे गये। अब केवल यह और थोड़ी सी सेना बची है। सो शीघ्र इसको भी नष्ट कर डालो। इन उत्साहवर्द्धक बातों को सुन वानर बड़े वेग से राक्षसों पर टूट पड़े। उधर लक्ष्मण ने मेघनाद के सारथी को भी मार डाला। प्रमाथी, रभस, शरभ और

गन्धमादन वानरों ने उसके घोड़ों को मार डाला और रथ को चूर चूर कर डाला। विरथ मेघनाद भूमि पर खड़ा खड़ा लड़ने लगा। अवसर पा और नगर में जा तथा दूसरे रथ पर बैठ कर फिर रणक्षेत्र में आया। फिर लक्ष्मण के साथ मेघनाद लड़ने लगा। लक्ष्मण ने फिर उसके सारथी को मारा और विभीषण ने उसके घोड़े मार डाले। इस पर उसने चाहा कि विभीषण के एक शक्ति मारे, पर उसका वार खाली गया। इतने में लक्ष्मण ने उसका सिर ही धड़ से अलग कर उसको मार डाला। यह वही मेघनाद था जिसने इन्द्र को जीता था। उस राक्षस का वध देख और सुन कर प्राणी मात्र प्रसन्न हुए और लक्ष्मण की स्तुति करने लगे। मेघनाद ने तीन दिन तक निरन्तर युद्ध किया था, अनन्तर वह मारा गया था।

मेघनाद को यमपुर भेज लक्ष्मण विभीषण सहित रामचन्द्र के पास गये और प्रणाम कर खड़े रहे। विभीषण ने मेघनाद की मृत्यु का समाचार दिया। रामचन्द्र ने लक्ष्मण को छाती से लगाया और सुषेण से चिकित्सा करने के लिये कहा। उन्होंने लक्ष्मण तथा और सब को चङ्गा किया। सब को बड़ी प्रसन्नता हुई।

रावण, पुत्र का मारा जाना सुन, विलाप करने लगा और क्रोध के आवेश में भर सीता को मारने चला। पहले तो उसने लोगों का कहना न माना, पर जब उसके मन्त्रियों ने उसे कई बार समझाया तब उसने सीता के मारने का विचार छोड़ दिया। अनन्तर वह सभाभवन में गया और वहाँ जो राक्षस उपस्थित थे उनको राम से लड़ने के लिये भेजा। दोनों सेनाओं में युद्ध आरम्भ हुआ। जब वानर, राक्षसों की मार से घबड़ाये, तब राम ने राक्षसों को मार गिराया। उस समय दिन के आठवें भाग में राम ने दस सहस्र रथ, अठारह सहस्र हाथी, चौदह सहस्र सवार, और दो लाख पैदलों को मारा। देव, गन्धर्व, किन्नर, महर्षि आदि श्रीरामचन्द्र की प्रशंसा करने लगे। इस पर रामचन्द्र ने कहा यह अस्त्र का प्रभाव मुक्त में है या शिव में। बचे बचाये राक्षस लङ्का में भाग गये।

सब राक्षसों का नाश देख कर राक्षसियाँ विलाप करने लगीं। तदनन्तर उस विलाप को सुन, रावण स्वयं क्रोध कर लड़ने को निकला। उसके साथ महापार्श्व, महोदर, विरूपाक्ष और दुर्द्धर्ष भी चले। लड़ाई छिड़ गयी। इस युद्ध में सुग्रीव ने विरूपाक्ष का सामना किया। सुग्रीव ने उसे मार डाला, उसका वध देख रावण ने महोदर को लड़ाया। उसको भी वानरराज ने यमपुर भेज दिया। महोदर का वध देख राक्षसों की सेना डरी और भागने लगी। उधर महापार्श्व और अङ्गद की मुठभेड़ हुई। अङ्गद ने उसकी भी जीवन लीला पूरी कर दी। अनन्तर रावण राम के पास गया। थोड़ी देर तक लक्ष्मण से युद्ध कर, वह फिर रामचन्द्र से जा भिड़ा। इतने में लक्ष्मण ने उसके हाथ का अनुपम धनुष काट सारथी को भी मार डाला। विभीषण ने उसके रथ के घोड़े भी मार डाले। यह देख विभीषण के ऊपर उसने एक शक्ति फेंकी। इस शक्ति को लक्ष्मण ने काट डाला। तब उसने मय नामक दैत्य की बनाई साँग उठाई और उसे लक्ष्मण पर चलाई। लक्ष्मण उसके लगने से मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े। उस शक्ति को लक्ष्मण के शरीर से कोई न निकाल सका। तब रामचन्द्र ने उसे निकाल वानरों से कहा कि तुम लोग लक्ष्मण की रक्षा करो, मैं रावण को मारता हूं। यह कह वे रावण से लड़ने लगे। पर लक्ष्मण का स्मरण कर उनसे न रहा गया। लड़ाई बन्द कर वे विलाप करने लगे। तब सुषेण ने रामचन्द्र को समझाया। फिर हनुमान को सम्बोधन कर कहा:—

सुषेण—जिस पर्वत को तुम जाम्बवान् के कहने पर लाये थे, उसके शृङ्ग पर विशल्यकरणी, सावर्णकरणी, सञ्जीवकरणी और सन्धानी नाम्नी चार जड़ियाँ हैं। तुम इन चारों को शीघ्र जा कर ले आओ।

हनुमान गये पर उन बूटियों को न पहचान सकने के कारण उस पर्वत को ही उठा लाये।

सुषेण ने लक्ष्मण की चिकित्सा कर लक्ष्मण को अच्छा किया। लक्ष्मण उठ खड़े हुए। लक्ष्मण को आरोग्य हुआ जान—सारी वानरी सेना में आनन्द टपकने लगा। श्रीराम ने उन्हें अपनी छाती से लगाया। तब लक्ष्मण ने कहा—"महाराज! इस दुष्ट को मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये।"

इतने में दूसरे रथ पर बैठ कर रावण ने फिर राम का सामना किया। यह देख देव, किन्नर, गन्धर्व कहने लगे कि यह युद्ध असम है। क्योंकि राम तो पैदल हैं और रावण रथ पर है। यह सुन इन्द्र ने अपने मातलि से कहा कि शीघ्र मेरा रथ राम के पास ले जाओ। मातलि ने तुरन्त अपने प्रभु की आज्ञानुसार कार्य किया और जुता हुआ रथ लिये हुए वह श्रीराम की सेवा में उपस्थित हुआ और हाथ जोड़ कर बोला:—

मातलि—महाराज! देवराज इन्द्र ने यह रथ आपकी सवारी के लिये भेजा है। साथ ही उसमें आपके लिये यह रथ, धनुष, कवच, शक्ति और बाण भी रख दिये गये हैं। अतएव आप इस रथ में बैठ कर शत्रु को मारिये।

रामचन्द्र रथ की प्रदक्षिणा कर उस रथ पर सवार हुए।

राम-रावण का युद्ध फिर आरम्भ हुआ। रावण के बाणों से राम शिथिल हो गये पर कुछ देर बाद ही सम्हल कर फिर बाण चलाने लगे। तब रावण ने बड़ा भारी शूल चलाया। राम ने बाणों से उसे रोकना चाहा पर जब वह न रुका; तब उसे उस शक्ति से रोका जिसे मातलि लाया था। फिर दोनों में घोर युद्ध होने लगा। मारे बाणों के राम ने रावण को ढीला कर दिया। रावण की यह दशा देख उसका सारथि रथ ले कर रणभूमि से भागा। रावण को जब चेत हुआ, तब उसने अपने सारथि को बहुत धिक्कारा। इस पर उसके सारथि ने कहा—"महाराज! मैंने तो उचित ही काम किया है। तब रावण ने उसे पारितोषिक दिया और फिर रणभूमि में पहुँचा।"

इतने में भगवान् अगस्त्य श्रीराम के पास आये और उन्हें रावण के वधार्थ—आदित्य हृदय स्तोत्र उपदेश दिया। वह स्तोत्र यह है:—

नामावली

आदित्य, सविता, सूर्य, खग, पूषा, गभस्तिमान्, सुवर्ण सदृश, भानु, हिरण्यरेता, दिवाकर, हरिदश्व, सहस्रार्चि सप्तसप्ति मरीचिमान्, तिमिरोन्मथन, शम्भु, त्वष्टा, मार्त्तण्ड अंशुमान्, हिरण्यगर्भ, शिशिर, तपन, भास्कर, अग्निगर्भ, अदितिपुत्र, शङ्ख, शिशिर नाशन, व्योमनाथ, तमोभेदी, ऋग्यजुःसामपारग, घनवृष्टि, अपांमित्र, विन्ध्यवीथीप्लवङ्गम, आतपी, मण्डली, मृत्युपिङ्गल, सर्वतापन, कवि, विश्व, महातेजा, रक्त, सर्वभवोद्भव, नक्षत्र ग्रह-ताराणाधिप विश्वभावन, तेजोमय, तेजस्वी।

स्तुति

हे द्वादश रूप! हे पूर्व गिरिरूप, हे पश्चिम गिरिरूप! हे ज्योतिर्गण के रूप! हे दिनाधिपते हे जय! हे जयभद्र! हे हर्यश्व! हे सहस्रांशो! हे आदित्य! हे उग्र! हे वीर! हे सारङ्ग! हे पद्मप्रबोध! हे प्रचण्ड! हे ब्रह्मन्! हे ईशान! हे अच्युत्! हे ईश! हे सूर! हे आदित्यवर्च! हे भास्वन्! हे सर्वभक्ष! हे रौद्रवपुः! हे तमोघ्न! हे शत्रुघ्न! हे अमितात्मन्! हे कृतघ्न! हे देव! हे ज्योतिषपते! हे तप्तचामीकराभ! हे हरे! हे विश्वकर्मन्! हे तमोनिघ्न! हे रुचे! हे लोकसाक्षिन्, तुमको नमस्कार है।

अगस्त्य मुनि ने कहा:—

अगस्त्य—हे राम! आपत्ति में, क्लेश में, वन में भय होने पर, भय के समय, आदित्य हृदय का पाठ करने से स्तुति करने वाला—सब विपत्तियों से छुट जाता है। अतः तुम भी दिवाकर का पूजन करो। तीन गुना इसे जप करने से तुम्हारी जीत होगी।

यह कह कर महर्षि चले गये और राम रावण के साथ युद्ध प्रारम्भ हुआ।

रामचन्द्र ने इन्द्र के भेजे हुए धनुष को उठा रावण पर बाणों की वर्षा की। रावण को अशकुन दीख पड़ने लगे। उन्हें देख वानरों को निश्चय हो गया कि अब रावण की मृत्यु समीप है। राम रावण के युद्ध को देख अप्सराएँ कहने लगीं कि इस युद्ध की उपमा यही युद्ध है।

अन्त में राम के बाण से रावण का सिर कटा, पर दूसरा सिर उसकी जगह तुरन्त निकल आया। उन्होंने उसे भी काटा, वैसा ही सिर फिर निकल आया। इस प्रकार राम ने सौ बार उसके सिर काटे और सौ बार उसके नये सिर उग आये पर उसके सिरों का अन्त न आया। तब रामचन्द्र ने युद्ध के समय सोचा जिन बाणों से हमने खर, दूषण, विराध, कबन्ध और बालि मारे हैं जिनसे अनेक साखू के पेड़ और पर्वत तक फोड़ डाले और समुद्र को क्षुब्ध किया, वे बाण आज क्यों मन्द हो गये। इसका कारण समझ में नहीं आता। इस प्रकार सोचते विचारते और लड़ते लड़ते सात रातें हो गयीं। लड़ाई एक मुहूर्त्त के लिये भी बन्द न हुई। तब मातलि ने कहा—"महाराज! ब्रह्मास्त्र से इस को मारिये।" यह सुनते ही राम को स्मरण हो आया और उन्होंने अगस्त्य मुनि के दिये हुए बाण को उठाया। यह बाण ब्रह्मा ने इन्द्र के लिये बनाया था और अगस्त्य मुनि को दे दिया था। राम ने वेदोक्त विधि के अनुसार उसे अभिमन्त्रित कर, रावण को मारा। उसके लगते ही रावण का सिर कट कर गिर पड़ा और रावण मारा गया। वह बाण इतना काम कर फिर राम के तरकस में आ गया। रावण के मारे जाने पर बचे हुए राक्षस लङ्का में गये। वानरों की प्रसन्नता का तो कहना ही क्या था। रामचन्द्र के ऊपर देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की, गन्धर्वों ने मङ्गल गीत गाये। ऋषियों ने आशीर्वाद दिये। पितरों ने अपने भाग्य को सराहा और राम को असीस दी। रामचन्द्र ने सब वानरों को बुला कर कहा—

तुलसीदास रचित छन्द

किये सुखी कहि बानी सुधा सम बल तुम्हारे रिपु हयो।
पायो बिभीषन राजु तिहुँ पुर जस तुम्हारे नित नयो॥
मोहि सहित सुभ-कीरति तिहारी परम प्रीति जे गाइ हैं।
संसार सिन्धु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइ हैं॥

भाई को मरा देख विभीषण विलाप करने लगे। तब रामचन्द्र ने उन्हें समझाया और धीरज बँधाया, तदनन्तर विभीषण ने भाई की प्रेत क्रिया करने की अनुमति माँगी। इतने में मन्दोदरी आदि रावण की स्त्रियाँ आकर विलाप करने लगीं। विलाप कर कहने लगीं:—

रावण की स्त्रियाँ—हे पति! अरुन्धती और रोहिणी से भी अधिक मान्या, पृथिवी से भी बढ़ कर क्षमा सम्पन्न, लक्ष्मी से भी अधिक सौभाग्यवती और अपने पति की प्यारी दुलारी सीता को कपट से हर लाने के पाप से तुम्हारी यह दशा हुई है।

इस प्रकार के अनेक विलाप सुन श्रीराम से न रहा गया। उन्होंने विभीषण से कहा कि जा कर इन स्त्रियों को समझा बुझा कर शान्त करो और रावण की प्रेतक्रिया सुसम्पन्न करो। इस पर विभीषण बोले:—

विभीषण—महाराज! यह धर्मव्रतों से रहित, क्रूर, घाती, मिथ्या बोलने वाला और परस्त्रीगामी था। अतएव मैं इसका अन्तिम संस्कार न करूँगा।

श्रीरामचन्द्र—तो भी इसका प्रेत संस्कार करना तुम्हारा कर्त्तव्य है, तुम डरो मत, इसके लिये तुमसे कोई कुछ न कहेगा और न कोई तुम्हारा नाम धरेगा।

श्रीराम की आज्ञानुसार भाई का अन्तिम संस्कार कर, विभीषण ने स्त्रियों को नगर के भीतर भेज दिया। फिर वे रामचन्द्र जी के पास गये।

उधर रावण के मारे जाने पर, आकाश में राम रावण का युद्ध देखने वाले देव गन्धर्व आदि जो थे, वे राम का पराक्रम, वानरों की वीरता, सुग्रीव के विचार और हनुमान की वीरता की बड़ाई करते हुए अपने अपने स्थानों को गये। तदनन्तर श्रीराम ने मातलि को रथ सहित विदा किया। वह प्रणाम कर वहाँ से चल दिया।

रामचन्द्र सुग्रीव से मिले और लक्ष्मण ने राम को प्रणाम किया। फिर राम ने लक्ष्मण को लङ्का में भेज कर विभीषण का तिलकोत्सव कराया। प्रजा ने नये राजा को प्रसन्नता पूर्वक भेंटें दीं। विभीषण ने उन भेंटों को रामचन्द्र के चरणों पर चढ़ा दिया। रामचन्द्र ने उन्हें ग्रहण किया। फिर हनुमान से कहा कि विभीषण की आज्ञा ले कर, मेरे विजय का संवाद मैथिली को सुनाओ और उत्तर में वे जो कुछ कहें—सो हमसे आ कर कहो।

हनुमान ने वैसा ही किया। पर विजय संवाद सुन कर सीता चुप हो रहीं। तब हनुमान ने इसका उनसे कारण पूँछा। तब सीता जी ने कहा—"मैं चुप इसलिये हूँ कि मैं इस आनन्द समाचार सुनाने के लिये तुम्हें कोई पुरस्कार देना चाहती हूँ और उस पुरस्कार को मन ही मन खोज रही हूँ, पर कोई भी उपयुक्त पुरस्कार ध्यान में नहीं आता।" इस पर हनुमान ने कहा—"आपका आशीर्वाद ही बड़ा भारी पारितोषिक है।" सीता ने कहा:—

सीता—हनुमान! तुम सचमुच बड़े बुद्धिमान् हो। तुम्हें छोड़ ऐसी समयोचित बात दूसरा कभी नहीं कह सकता।

हनुमान—यदि आप आज्ञा दें तो इन सब राक्षसियों को जो तुम्हें कष्ट दिया करती थीं ठिकाने लगा दूँ।

यह सुन क्षमाशीला सीता ने कहा:—

सीता—हनुमान! नहीं, कभी नहीं। इन बेचारियों का इसमें दोष ही क्या है? यह तो अन्नदाता अपने प्रभु की आज्ञानुसार काम करती थीं। अतः ये सब दण्ड देने योग्य नहीं हैं।

हनुमान—क्यों न हो! आप श्रीराम की पत्नी ही तो हैं। इतनी क्षमा और स्त्रियों में होनी दुर्लभ है।

सीता—मैं श्रीराम को उनके मित्रों सहित देखा चाहती हूँ।

यह सन्देशा हनुमान ने जा कर श्रीराम को सुनाया। इस पर राम ने विभीषण से कहा कि—"स्नान और वस्त्राभूषण धारण किये हुए सीता को मैं शीघ्र देखना चाहता हूँ।" सीता के पास जा कर विभीषण ने उन्हें स्नान आदि कराने का प्रबन्ध किया। किन्तु सीता ने कहा मैं बिना[1] स्नान किये ही राम को देखना चाहती हूँ।" इस पर विभीषण ने कहा—"आपको उचित है कि आप अपने भर्त्ता की आज्ञा मानें और वे जो कुछ कहें सो करें।[2]" सीता जी ने तदनुसार ही किया। तब विभीषण उनको बड़ी धूमधाम से पालकी में बिठा राम के पास ले गये। जब राम को सीता के आगमन की सूचना मिली, तब राम ने उन्हें अपने पास लाने की आज्ञा दी, पर जब देखा कि सीता को लाने वाले राक्षस बन्दरों को वहाँ से हटा रहे हैं और पर्दा कर रहे हैं, तब राम ने राक्षसों को वैसा करने से रोका और रोष में भर कहा:—

श्रीरामचन्द्र—विभीषण! मेरा अपमान कर तुम यह क्या करते हो? ये ऋक्ष वानर आदि

---

१ अस्नात्वा द्रष्टुमिच्छामि भर्त्तारं राक्षसेश्वर।
२ यथाह रामो भर्त्ता ते तत्तथा कर्तुमर्हसि।

हमारे स्वजन हैं। हमारे रहते इनसे पर्दा क्यों? फिर विपत्ति, स्वयम्बर, यज्ञ और विवाह में स्त्रियों का देखा जाना दोष नहीं। अतः सीता पालकी छोड़ कर, पैदल मेरे पास आवें, जिससे ये वानर और भालु सब उन्हें देख सकें।

विभीषण ने वैसा ही प्रबन्ध कर दिया।

सीता को अपने सामने देख, राम ने रोष में भर कर कहा :—

श्रीरामचन्द्र—हमने शत्रु को मार कर तुमको फिर से जीता है। जो कुछ पौरुष के द्वारा करना था वह हमने किया है। आज हमारा सारा परिश्रम सफल हुआ। आज हम अपनी प्रतिज्ञा को पूरी कर, स्वतन्त्र हुए। हनुमान का काम स्तुत्य है सुग्रीव और विभीषण का भी परिश्रम सफल हुआ। पर स्मरण रहे—ये सब हमने अपनी मान मर्य्यादा की रक्षा के लिये किया है, न कि तुम्हारे लिये। तुम इतने दिनों तक राक्षस के घर में रह चुकी हो, इससे हम तुम्हें अब अपनी पत्नी नहीं बना सकते। तुम्हारी अब जहाँ जाने की इच्छा हो, वहीं तुम जाओ। अथवा लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव या विभीषण में से—जिसको चाहो उसकी होकर रहो।

जो घटना कभी किसी ने स्वप्न में भी अनुमानित नहीं की थी—उसे प्रत्यक्ष देख सुन कर कुछ क्षणों तक सन्नाटा छा गया। फिर उस सन्नाटे को भङ्ग करके सीता ने कहा :—

सीता—जिस प्रकार कोई नीच पुरुष साधारण नीच स्त्रियों को रूखे और कठोर वाक्य कहा करते हैं। उसी प्रकार तुम भी मुझसे बड़े भद्दे और कठोर वचन कह रहे हो। तुम मुझको जैसी गई बीती समझ रहे हो—मैं वैसी नहीं हूँ। मैं साधारण स्त्रियों की तरह अपने धर्म को नहीं बिगाड़ सकती। तुम मेरा विश्वास करो। यदि मैं अपना पवित्रता का प्रत्यक्ष प्रमाण दे दूँ, तब तो तुम मेरे चरित्र को कलुषित न समझोगे? रावण के अङ्गस्पर्श की बात ठीक है, पर तुम ही कहो वैसी पराधीनावस्था में मैं कर ही क्या सकती थी। जिस समय मुझे खोजने के लिये तुमने हनुमान को यहाँ भेजा था—उसी समय उनके द्वारा मेरे परित्याग की बात क्यों न कहला दी। यदि मुझे यह उस समय विदित होता तो मैं हनुमान के सामने ही प्राण त्याग देती। इससे लाभ यह होता कि न तो तुमको अपने जीवन को कष्ट में डाल कर, दुःख उठाना पड़ता और न तुम्हारे मित्रों को युद्ध में फँस अपने हाथ पैर तुड़वाने और प्राण गँवाने पड़ते। राजन्! तुम विचारवान होकर भी मेरे चरित्र को सन्देह की दृष्टि से देखते हो। मुझे खेद है और बड़ा खेद है कि तुमने मुझे अभी तक नहीं पहचाना। हा! इस समय क्रोध के आवेश में आ, तुम मेरी सारी प्रीति और भक्ति भूल गये।

तदनन्तर रोती हुई सीता ने दुःखित लक्ष्मण से कहा :—

सीता—लक्ष्मण! तुम मेरे लिये एक चिता बना कर तैयार कर दो। अब मेरी इस व्याधि की एक मात्र औषधि यही है। मुझसे मिथ्यापवाद नहीं सहा जाता। मेरे स्वामी मुझसे रुष्ट हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि उन्होंने सब के सामने मुझे त्यागा है। अब मैं अग्नि में भस्म होकर प्राण त्याग करूँगी।

यह सुन लक्ष्मण ने टेढ़ी निगाह से रामचन्द्र जी की ओर देखा। रामचन्द्र जी ने सैन से उन्हें अपना अभिप्राय समझा दिया। तब लक्ष्मण ने चिता तैयार की। जब वह चिता धधकने लगी, तब सीता जी रामचन्द्र की परिक्रमा कर और यह कह कर कि "यदि मेरा मन राम से अन्यत्र न रहा हो तो अग्नि मेरी रक्षा करे।" उसमें घुस गयीं। उनको अग्नि में प्रविष्ट होते देख उपस्थित स्त्री-पुरुष—सभी दङ्ग रह गये। रामचन्द्र के नेत्रों से भी आँसू निकल पड़े। इतने में पितरों सहित कुवेर, यम, वरुण, इन्द्र, महादेव और ब्रह्मा वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने हाथ उठा उठा कर कहा :—

देवगण—आप सब लोकों के कर्त्ता धर्त्ता विधाता, परमेश्वर और सर्वोत्तम ज्ञानी हो कर सीता को क्यों परित्याग करते हो?

राम—मैं तो अपने को मनुष्य और दशरथ का पुत्र जानता हूँ। आप बतलावें कि मैं कौन हूँ।

ब्रह्मा—तुम ईश्वर हो, रावण का वध करने के लिये तुमने मनुष्य रूप धारण किया है।

इतने में सीता को गोद में लिये अग्निदेव आये और बोले:—

अग्नि—यह शुद्ध है, इसे ग्रहण करो।

तब रामचन्द्र जी ने सीता को ग्रहण किया।

तदनन्तर महादेव ने कहा:—

महादेव—तुमने यह बड़ा कार्य किया है। अब अयोध्या में जा कर, भरतादि को आश्वासन प्रदान करो। देखो, यह दशरथ खड़े हैं।

तब रामचन्द्र ने उनको प्रणाम किया। उन्हों ने असीस दी और कहा—"मैं भरत से मिलते तुम्हें देखना चाहता हूँ।" राम ने कहा—"आप भरत और कैकेयी पर प्रसन्न हूजिये। आपने कैकेयी से कहा था कि "मैं पुत्र सहित तुझे छोड़ता हूँ—सो यह बात आप अब लौटा लें।" दशरथ ने कहा—"अच्छा ऐसा ही हो" और यह कह कर वे चले गये।

दशरथ के जाने पर इन्द्र ने राम से कहा—"जो वर माँगना हो सो माँगो।" रामचन्द्र ने कहा—"यह माँगते हैं कि इस युद्ध में जितने वानर भालु काम आये हैं—वे सब जीवित हों, जो घायल और पीड़ित हैं वे चङ्गे हो जाँय और जहाँ ये वानर रहें उस स्थान में अकाल में भी फल फूल मूल आदि वानरी आहार की कमी कभी न हो और नदियों में स्वच्छ जल बहे।

श्रीराम के कथनानुसार इन्द्र ने मरे हुए सब वानरों को जीवित कर दिया और जो घायल थे वे भी अच्छे कर दिये।[१]

जब कुछ रात्रि व्यतीत हो गयी तब विभीषण ने राम से स्नान करने के लिये कहा। तब राम विभीषण से बोले:—

श्रीरामचन्द्र—मेरे बिना मेरे प्राणोपम भाई भरत बड़े कष्ट सह रहे हैं। अब तो मेरे अयोध्या

---

[१] तुलसीदास जी ने रावण-विजय के अनन्तर ब्रह्मा का आगमन तो दिखलाया ही है, पर उनके मुख से श्रीराम की जो स्तुति कराई है। उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं।

[१]

जय राम सदा सुख धाम हरे।
रघुनायक सायक चाप धरे॥
भववारन दारन सिंह प्रभो।
गुन-सागर नागर नाथ बिभो॥

[२]

तन काम अनेक अनूप छवी।
गुन गावत सिद्ध मुनीन्द्र कवी॥
जसु पावन रावण नाग महा।
खग नाथ जथा करि कोप गहा॥

[३]

जनरञ्जन भञ्जन सोक भयम्।
गत क्रोध सदा प्रभु बोध मयम्॥
अवतार उदार अपार गुनम्।
महि-भार-विभञ्जन ज्ञान-घनम्॥

[४]

अज व्यापक-मेक-मनादि-सदा।
करुना-कर राम नमामि मुदा॥
रघुवंश-विभूषन दूषन हा!
कृत भूप विभीषन दीन रहा॥

[५]

कृत कृत्य विभो सब बानर ये।
निरखन्त तवानन सादर जे॥
धिग जीवन देव सरीर धरे।
तव भक्ति बिना भव भूलि परे॥

[६]

अब दीन दयाल दया करिये।
मति मोर विभेद करी हरिये॥
जेहि ते विपरीत क्रिया करिये।
दुख सो सुख मानि सुखी चरिये॥

में शीघ्र पहुँचने का तुम प्रबन्ध करो। क्योंकि भाई भरत शपथ खा चुके हैं कि यदि चौदह वर्ष से एक दिन भी अधिक लगा और मैं अयोध्या में न लौट कर जा पाया, तो वे अपना शरीर त्याग देंगे।

इस पर विभीषण ने पुष्पक विमान को उपस्थित कर और हाथ जोड़ कर पूँछा।

विभीषण—महाराज की अब और आज्ञा इस दास के लिये क्या है?

श्रीराम—इन वानरों को धन और वस्त्रालङ्कार से सन्तुष्ट करो।

श्रीराम की आज्ञानुसार विभीषण ने धन खोल कर सब वानरों को धन वस्त्र आभूषण प्रदान द्वारा सन्तुष्ट किया। तदनन्तर श्रीराम ने सुग्रीव से कहा :—

श्रीराम—मित्र का जो कर्त्तव्य था वह तुमने पूरा पूरा निभाया। अब आप अपने वानरों को ले कर अपनी राजधानी को लौट जाँय। विभीषण लङ्का में राज्य करें। हम सब अयोध्या जाते हैं।

यह सुन सुग्रीव और विभीषण ने हाथ जोड़ कर कहा—"हमारी इच्छा है कि हम लोगों को भी आप अयोध्या ले चलें जिससे हम लोग भी आपके राज्यारोहण उत्सव को देख कर प्रसन्न हों।

श्रीराम ने इन दोनों की प्रार्थना स्वीकार कर, सब को विमान में बिठा लिया और उसको चलने की आज्ञा दी। वह विमान अयोध्या की ओर चला। रास्ते में श्रीरामचन्द्र जी—सीता को विशेष विशेष स्थानों के नाम और उनका संक्षिप्त वर्णन सुनाते जाते थे।

श्रीरामचन्द्र सीता को समरभूमि, शिव का स्थानआदि दिखाते जब किष्किन्धा के सामने पहुँचे तब सीता ने कहा—" तारा आदि वानरी भी यदि हमारे साथ चलतीं तो अच्छा था। यह सुन श्रीराम ने विमान को वहाँ रोका और सुग्रीव को तारा आदि के लाने के लिये भेजा। जब वे सब [illegible] तब उनको भी विमान में बिठा कर, विमान आगे बढ़ाया।

वनवास का चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होने पर, पञ्चमी के दिन श्रीराम भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे। मुनि को प्रणाम कर श्रीराम ने अयोध्या के कुशल समाचार पूँछे, उत्तर में मुनिवर ने कहा—सब कुशल है फिर उस दिन राम को अपने यहाँ रख उनकी पहुनाई की। अनन्तर राम ने उनसे कहा :—"महाराज! ऐसा कीजिये जिससे यहाँ से लेकर अयोध्या तक के वृक्ष फल से लद जाँय और वे फल खाने में बड़े मीठे और सुस्वादु हों।" मुनि ने कहा कि "ऐसा ही होगा।" मुनि के तपःप्रभाव से मार्ग के वृक्ष मधुर फलों से युक्त हो गये।

अगले दिन प्रातःकाल जब श्रीराम भरद्वाज-आश्रम से प्रस्थानित हुए; तब राम ने हनुमान को अपने आगे भेज अपने आने की सूचना अपने मित्र गुह और भरत को देने के लिये भेजा। साथ ही हनुमान को यह भी समझा दिया कि भरत को मेरे आगमन की सूचना देकर, उनकी चेष्टा को ध्यान पूर्वक देखना। यह इसलिये कि राम का लौटना भरत को रुचता है या उनका सारा अभी तक का व्यवहार केवल ऊपरी और ढकोसला मात्र है—राम के इस वाक्य से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भरत के ऊपर, राजनीति के अनुसार राम को अब भी सन्देह बना हुआ है।

उधर भरत जी सोच रहे थे कि आज वनवास के चौदह वर्ष की समाप्ति का दिन है। यदि राम आज न आये तो मैं अग्निकुण्ड में कूद कर अपने प्राण दे दूँगा। इतने में बूढ़े ब्राह्मण का रूप धर हनुमान जी ने उनसे कहा :—

हनुमान जी—राजन्! दण्डकारण्य में रहने वाले और चीरजटाधारी जिन भाई के लिये आप चिन्तित हैं, उन्होंने आपसे कुशल कही है। अब आप इस दुःख और शोक को त्यागिये। आप अब अविलम्ब ही अपने दोनों भाइयों और

भौजाई के दर्शन करोगे। रामचन्द्र जी, सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण तथा अन्य अनेक वानर और भालुओं के सहित यहाँ से समीप भरद्वाज के आश्रम में पहुँच चुके हैं। उनके यहाँ आने में अब देर नहीं है। इस सुखसंवाद को सुन भरत जी के मन में जो प्रसन्नता हुई उसको कौन वर्णन कर सकता है। उन्होंने तुरन्त हनुमान जी को अपनी छाती से लगा लिया और बारंबार वे रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण के कुशल समाचार पूँछने लगे और कहा मैं तुमको लाख गऊ, सौ ग्राम और सर्व आभूषणों से सजी सोलह कन्या देता हूँ। तुम रामचन्द्र का वृत्तान्त मुझे सुनाओ। तब हनुमान ने श्रीरामचन्द्र का सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

अनन्तर भरत जी ने नन्दिग्राम से अयोध्या को दूत दौड़ा कर वसिष्ठ और माताओं के पास श्रीराम के आने के समाचार भेजे। फिर भरत ने शत्रुघ्न से कहा :—

भरत—अयोध्यापति रघुनाथ जी आ रहे हैं। उनके वियोग में अयोध्या मलिन थी। आज तुम उसे तोरण, ध्वजा, पताका से भली भाँति सजाओ और श्रीरामचन्द्र की अगवानी की तुरन्त तैयारियाँ करो। तैयारियाँ कर सब लोगों को ले आओ। फिर हम सब रामचन्द्र से मिलने चलेंगे।

आगे का हाल लिखने के पहले अब हम शत्रुघ्न द्वारा राम के स्वागत की तैयारी का कुछ दिग्दर्शन करा देना भी आवश्यक समझते हैं।

पृथक पृथक विभाग के मंत्रियों को बुला कर शत्रुघ्न ने उनको अलग अलग काम सौंपे और कहा :—

शत्रुघ्न—अभी कुलियों को लगा कर ऊबड़ खाबड़ मार्ग को सम करवाओ। अयोध्या और नन्दिग्राम की बीच वाली सड़क जिस पर सरकार की सवारी निकलने वाली है, अच्छे प्रकार सजायी जाय। सड़क पर ठंडे जल से छिड़काव किया जाय। धान की खीलें, बताशे और सुगन्ध युक्त पुष्प उस सड़क पर बिखेर दिये जाँय। सड़क के दोनों ओर राजप्रसाद तक रङ्ग बिरङ्ग की झण्डियाँ लगाई जाँय। इस रास्ते पर जितने घर पड़ें, उनकी सफ़ाई पर विशेष ध्यान दिया जाय। बन्दनवारें और केले के पेड़ प्रत्येक घर के द्वार पर रहें। झण्डियों में परस्पर रस्सियाँ बाँध दी जाँय और उस रस्सी पर फूल की मालाएँ लटका दी जाँय। सड़क के अगल बगल सशस्त्र सैनिक नियुक्त किये जाँय जिससे सड़क पर भीड़ न हो और सवारी निकलने में अड़चन न होने पावे। चौराहों और नाकों पर घुड़चढ़ों का पहरा रहे और जहाँ आवश्यकता हो वहाँ वे दौड़ कर सहायता दें। ये सारे प्रबन्ध कल बड़े तड़के सूर्योदय के पूर्व हो जाने चाहिये। सड़क की सजावट का इस प्रकार प्रबन्ध करा कर शत्रुघ्न ने जलूस का जो क्रम रखा उसका भी उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है।

सब के आगे तो सजे सजाये अनेक हाथी थे, उन पर बैठने वाले भी आभूषणों और बहुमूल्य वस्त्रों से सजे हुए थे। हाथियों के पीछे घोड़ों की क़तारें थीं। घोड़ों के पीछे रथ और रथों के पीछे पैदल सैनिक थे। घुड़सवारों के हाथों में भाले थे और उन भालों पर निशान चढ़े थे। जलूस के सब से पीछे कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा आदि रानियों के रथ थे। इस प्रकार श्रीराम के नगर प्रवेश का जुलूस तैयार किया गया था। इस सारे प्रबन्ध की बड़ाई के शत्रुघ्न जी ही पात्र हैं।

अब हम फिर अपने पिछले प्रकरण को आरम्भ करते हैं। भरत को राम के आने का समाचार देकर हनुमान जी फिर राम के पास गये और उन्हें भरत का सन्देसा दे, फिर भरत के पास लौट आये। उधर राम पुष्पक में बैठ भरद्वाज के आश्रम से नन्दिग्राम की ओर प्रस्थानित हुए। भरत जी आकाश की ओर बड़ी उत्कण्ठा से टकटकी लगाये विमान के आने की राह देख रहे थे। उनके पीछे पुरवासी भी इसी प्रकार खड़े थे। जब उनके आने में देर हुई तब

अयोध्या में श्रीरामचन्द्र का प्रवेश

भरत जी ने व्यग्र हो हनुमान से पूछा—"हनुमान! विमान तो अब तक नहीं देख पड़ता है और न कोई वानर ही आता देख पड़ता है। हनुमान ने कहा—"इन्द्र और भरद्वाज के प्रसाद से मार्ग के सब वृक्ष मधुर सुस्वाद फलों से युक्त हो गये हैं। सो सब वानर फलों को खाते और शीतल जल पीते चले आते होंगे। कान लगाये—वानरों की किलकारी का शब्द सुन पड़ता है, इससे विदित होता है कि वे गोमती उतर रहे हैं। इतने में विमान भी आता दिखलाई पड़ा। अब भरत जी और अयोध्यावासियों के आनन्द का क्या पूछना था! श्रीराम के दर्शन करने के लिये जन समुदाय में हलचल मच गयी। देखते देखते विमान नीचे उतरा। श्रीराम को देखते ही भरत दौड़ कर उनके चरणों पर गिरे। राम ने तुरन्त उन्हें उठा अपनी छाती से लगा लिया। फिर भरत ने सीता को प्रणाम किया। लक्ष्मण ने भरत के दर्शन किये।

तदनन्तर भरत बड़े चाव से रामचन्द्र जी की लङ्का विजयिनी वानरी सेना के सेनापतियों (जनरलों) से मिले। उनमें से प्रधान प्रधान नाम ये हैं। कपिराज सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद, मयन्द, द्विविद, नील, ऋषभ, सुषेण, नल, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ, पनस आदि। भरत ने अपना पर जानते हुए सुग्रीव से कहा कि अभी तक हम चार भाई थे पर अब आपको पाकर हम पाँच हुए।

फिर शिष्टता पूर्वक लंकेश्वर विभीषण से भरत ने मिल कर कहा—"आप ही की सहायता से हमारे पूज्य भाई इतना कठिन काम पूरा करने में समर्थ हुए हैं।" यहाँ पर यह बतला देना भी आवश्यक है कि आज उन सब कामरूपी वानरों और भालुओं ने अपने प्रकृत रूप को छोड़ मनुष्य रूप धारण कर लिया था।

शत्रुघ्न ने राम लक्ष्मण और सीता को भक्ति पूर्वक प्रणाम किया।

फिर रामचन्द्र अपनी माता कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी को प्रणाम कर कुल पुरोहित वशिष्ठ को प्रणाम करने चले। चलने के पूर्व भरत ने उसी समय राम की पादुकाओं को उनके चरणों में पहना दिया और राज्य सौंप दिया और बड़ी नम्रता से कहा :—

भरत—भइया! आपने मेरी माता की बात रखने के लिये जो राज्य भार मुझे दिया था, मैं आज आपकी उस धरोहर को आपको लौटाता हूँ। जिस बोझ को बलवान बैल नहीं उठा सकता भला उसे एक छोटा बछड़ा क्यों कर उठा सकता है। न तो गधा घोड़ा हो सकता है और न कभी किसी काक का हंस होना सुना गया है। हे रघुकुल भूषण! अतः अब आप अपनी धरोहर को सम्हालिये। चौदह वर्ष के भीतर राजकोष में जो धन आया है, वह अब दस गुना अधिक है।

राम ने विमान से उतर कर, उससे कहा कि अब तुम कुबेर के पास जाओ और जब हम स्मरण करें तब आ जाना। जब विमान चला गया, सब पहले भरत फिर लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण और रामचन्द्र ने बाल कटवा स्नान किये और वस्त्र आभूषण पहने। तदनन्तर वानरों की स्त्रियों को भी कपड़े पहनाये गये। तदनन्तर सब लोग नगर देखने गये।

रामचन्द्र रथ पर सवार हुए। भरत ने घोड़ों की रास पकड़ी, शत्रुघ्न ने छत्र लिया, लक्ष्मण और विभीषण ने चँवर लिया, सुग्रीव शत्रुञ्जय नामक हाथी पर चढ़े और भरत ने नन्दिग्राम से अयोध्या में प्रवेश किया। राम अपने पिता के भवन में गये। फिर भरत से कहा कि हम जिस भवन में रहते थे, उसमें सुग्रीव को ठहराओ।

सुग्रीव से भरत ने कहा कि अब राम का अभिषेक होना चाहिये। यह सुन सुग्रीव ने अपने वानरों को देश देशान्तरों में भेज कर, समुद्र तथा नदियों के जल लाने को भेजा। पूर्व समुद्र से सुषेण, दक्षिण समुद्र से ऋषभ, पश्चिम समुद्र से गवय और उत्तर से हनुमान जल लाये। तदनन्तर भगवान् वशिष्ठ, विजय, जाबालि, काश्यप, कात्यायन; गौतम और वामदेव ने राम के राजतिलक किया।

अनन्तर सम्पूर्ण ओषधियों के रस से, आकाशचारी देवताओं ने, चारों लोकपालों ने और फिर सब देवताओं ने स्नान कराये। फिर भगवान् वशिष्ठ ने ब्रह्मा के बनाये उस मुकुट को राम के सिर पर रखा, जिससे महाराज मनु का अभिषेक किया गया था और इसीसे आज तक इस वंश के सब राजाओं का अभिषेक होता चला आता था। अनन्तर ऋत्विजों ने श्रीराम को सब आभूषण पहनाये। शत्रुघ्न ने छत्र ताना, सुग्रीव और विभीषण ने चँवर लिये। इन्द्र ने वायु के द्वारा माला और हार भेजा। फिर राम ने लाख घोड़े, लाख गौ, तीस करोड़ मोहर, अनेक प्रकार के आभूषण और बहुमूल्य वस्त्र ब्राह्मणों को दिये। श्रीराम ने ब्राह्मणों को दान देने के अनन्तर लङ्का के विजयी वीरों को पुरस्कार दिये। उनमें से सुग्रीव को माला और युवराज अङ्गद को बिजा-यठ दिया। सीता को एक हार दिया। तब सीता ने हनुमान को दो दिव्य वस्त्र दिये। फिर हार उतार कर, सब वानरों की ओर देख सीता राम की ओर देखने लगीं। रामचन्द्र जी सीता जी के मन का भाव जान गये और बोले—"जिसको चाहो देदो।" यह सुन उन्होंने वह हार हनुमान के गले में डाल दिया। फिर सब वानरों को सन्तुष्ट किया। सब वानर और राक्षस सम्मान पा अपने अपने घर चले गये। श्रीरामचन्द्र राज्य करने लगे। पौंडरीक, अश्वमेध, और अनेक प्रकार के यज्ञ राम ने अनेक बार किये। श्रीराम ने दस हज़ार वर्ष राज्य किया। अन्त में अश्वमेध यज्ञ किया।

श्रीरामचन्द्र की अमलदारी में प्रजा के सब लोग प्रसन्न थे। किसी को किसी बात की कमी न थी और न किसी को किसी प्रकार का कष्ट ही था। सब लोग यंत्रवत् अपने अपने निर्दिष्ट कार्यों को करते।

॥ इति युद्धकाण्ड ॥

जब श्रीरामचन्द्र जी राजगद्दी पर बैठ चुके, तब वे दण्डकारण्यवासी महर्षि जिन्होंने वनवास के समय श्रीराम से राक्षसों के अत्याचारों का वर्णन किया था, अगस्त्य को अगुआ बना और सब दिशाओं के प्रतिनिधियों को साथ ले नये राजराजेश्वर को बधाई देने के लिये अयोध्या में गये। इस ऋषि मण्डली में अनेक ऋषि महर्षि थे, किन्तु उनमें कुछ के नाम ये हैं। कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव, मेधातिथि के पुत्र कण्व[1], स्वस्त्यात्रेय, नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, अत्रि, सुमुख तथा विमुख[2] वृषङ्गु, कवषी, धौम्य और कौषेय[3], वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज।[4]

यह महर्षिमण्डली अयोध्या में पहुँच कर, राजराजेश्वर के सिंहद्वार पर जा उपस्थित हुई। भगवान् अगस्त्य ने द्वारपाल से कहा कि महाराज को हमारे आने की सूचना दो। द्वारपाल ने वैसा ही किया। महर्षियों के आगमन का संवाद पा, श्रीरामचन्द्र जी ने तुरन्त उन सब को भीतर बुलवा लिया और उनको सामने देख हाथ जोड़कर वे खड़े हो गये। अनन्तर श्रीराम ने यथाविधि उन सब का पूजन कर, अच्छे अच्छे आसनों पर उन सब को बिठाया। जब श्रीराम सहित सब ऋषिगण बैठ चुके, तब ऋषियों ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा :—

ऋषिगण—राजन्! यह बड़ी बात है जो आपने दुष्ट राक्षसों को मारा। विशेष कर मायावी मेघनाद का वध सब से बढ़ कर आश्चर्यजनक है।

श्रीरामचन्द्र—महर्षिगण! अन्य राक्षसों को छोड़, आप मेघनाद वध के बारे में इतनी बड़ाई करते हैं—इसका कारण क्या है? यदि वह कारण मेरे सुनने योग्य हो तो बतलाइये।

अगस्त्य—सत्ययुग में ब्रह्मा के एक पुत्र उत्पन्न हुए। उनका नाम था पुलस्त्य। वे मेरुपर्वत के निकट, तृणबिन्दु के आश्रम में तप करने को गये। उस वन में नाग, राजर्षि और ऋषिकन्याएँ क्रीड़ार्थ आया जाया करती थीं। उनके उस तपोवन में खेलने कूदने से वहाँ के तपस्वियों की तपस्या में बड़ा विघ्न पड़ने लगा। तब तो पुलस्त्य जी ने एक दिन क्रोध में भर उनको शाप दिया कि आज से जो कन्या मेरे सामने आवेगी, वह गर्भवती हो जायगी। यह सुन वहाँ सब कन्याओं ने आना बन्द कर दिया।

किन्तु तृणबिन्दु की कन्या पूर्ववत् वहाँ खेलने गयी। फल यह हुआ कि मुनि के शापानुसार उसके गर्भ रह गया। तब तो वह बहुत डरी और डरती डरती अपने घर गयी। उसकी दशा देख,

---

१ ये पूर्व दिशा के रहने वाले थे।

२ ये दक्षिण दिशा के रहने वाले थे।

३ ये पश्चिम दिशा के रहने वाले थे।

४ ये उत्तर दिशा के वासी थे।

उसके पिता ने उससे कारण पूँछा। उत्तर में उसने कहा—मैं इसका कारण स्वयं कुछ भी नहीं जानती। मैं तो पुलस्त्य जी के आश्रम में अपनी सखी को ढूँढ़ने गयी थी, वहाँ जाते ही मेरी यह दशा हो गयी है। तृणविन्दु ने यथार्थ बात जान ली और उन्होंने उस कन्या को ले जाकर पुलस्त्य को व्याह दिया। उस कन्या के गर्भ से विश्रवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। भरद्वाज मुनि ने अपनी कन्या देववर्णिनी का विवाह विश्रवा के साथ किया। देववर्णिनी के गर्भ से वैश्रवा की उत्पत्ति हुई। उसको प्रभावशाली देख ब्रह्माने उसे कोषाध्यक्ष बनाया। साथ ही वह इन्द्र, वरुण और यम के समकक्ष का चौथा लोकपाल हुआ ब्रह्मा ने उसे चढ़ने के लिये पुष्पक विमान भी दिया। ये सारी विभूति उसे तपस्या के प्रभाव से मिली। अनन्तर वह अपने पिता के पास गया और अपने रहने के लिये उनसे स्थान पूँछा। उत्तर में विश्रवा ने उससे कहा—दक्षिण दिशा में समुद्र के बीच त्रिकूट नाम का एक पर्वत है, उसके शिखर पर लङ्कापुरी नामक एक पुरी है, जिसे विश्वकर्मा ने स्वयं राक्षसों के रहने के लिये बनाया है, किन्तु राक्षस तो विष्णु के डर से भयभीत हो, उस पुरी को छोड़ रसातल को चले गये; तुम वहीं जा कर रहो। पिता की आज्ञा पा कर वैश्रवा अथवा कुबेर लङ्का में जा रहने लगे और यक्षों को वहाँ बसाया।

यह वृत्तान्त सुन कर राम ने अगस्त्य जी से कहा—"क्या रावण के पहले भी राक्षस थे?" इस के उत्तर में महर्षि अगस्त्य बोले—"पृथिवीनाथ! सुनिये काल से जब ब्रह्मा उत्पन्न हुए, तब उन्होंने जल बनाया और उस जल की रक्षा के लिये अनेक प्राणियों को उत्पन्न किया। उन सब ने ब्रह्मा के पास खड़े होकर नम्रतापूर्वक पूँछा—"हम करें क्या?" ब्रह्मा ने कहा—"इस जल की रक्षा करो।" उनमें से कुछ ने तो कहा—'रक्षस' अर्थात् हम जल की रक्षा करते हैं और कुछ ने कहा—"यक्षाम" अर्थात् हम उत्तरोत्तर वृद्धि करते हैं। अतएव ब्रह्मा ने पहलों का राक्षस और दूसरों का यक्ष नाम रख दिया। हेति और प्रहेति नाम के दो भाई राक्षसों के राजा हुए। प्रहेति तो तप करने चला गया, किन्तु हेति ने काल की भगिनी भया के साथ विवाह किया। भया के गर्भ से विद्युत्केश की उत्पत्ति हुई। विद्युत्केश ने सलङ्कटङ्कटा नाम्नी सन्ध्या की बेटी के गर्भ से मन्दराचल पर्वत पर, सुकेश नामक लड़का उत्पन्न किया। उस की माता उसको वहीं छोड़ कर, अपने पति के पास चली गयी। वह लड़का पड़ा पड़ा रोता था, उधर से पार्वती सहित महादेव चले आते थे। लड़के को पड़ा और रोते देख, उनके मन में दया उत्पन्न हुई। बड़ों की दया निष्फल नहीं होती। अतः महादेव जी ने उसी क्षण उस बालक को उसकी माता जितनी अवस्था का कर दिया। साथ ही उसे अमर कर, उसको आकाशगामी एक नगर दिया। तदनन्तर पार्वती ने राक्षसों को वर दिया कि जिस समय स्त्री गर्भवती हो, उसी क्षण बालक भी जने और वह बालक उसी क्षण माता के समान वय वाला हो जाय।

तदनन्तर उस सुकेश को, ग्रामणी नामक गन्धर्व ने अपनी कन्या व्याह दी। इस कन्या का नाम था देववती। इसके गर्भ से माल्यवान्, सुमालि और माली नामक तीन बालक उत्पन्न हुए। इन तीनों ने अपने तपोबल से ब्रह्मा को प्रसन्न किया। प्रसन्न हो ब्रह्मा ने इनको वर दिया कि तुम अजेय, शत्रु को मारने वाले, चिरजीवी, सामर्थ्यवान् और परस्पर मेली होगे। वे तीनों भाई वर पा, देव, दैत्य, महर्षि और चारणों को पीड़ित करने लगे। अनन्तर उन्होंने विश्वकर्मा से कहा कि हमारे रहने के लिये घर बनाओ। इस पर विश्वकर्मा ने कहा कि दक्षिण दिशा में, समुद्र के बीच त्रिकूट और सुवेल पर्वत हैं। उन दोनों के बीच वाले शिखर पर तीस योजन चौड़ी और सौ योजन लम्बी, लङ्का नामक एक पुरी है, जिसको मैंने इन्द्र की आज्ञा से बनाया था। अब वह सूनी पड़ी है। तुम लोग उसमें जा कर बसो। यह सुन वे सब लङ्का में गये और वहाँ रहने लगे।

नर्मदा नाम्नी एक गन्धर्वी थी। उसकी तीन लड़कियाँ थीं—जिनके नाम थे सुन्दरी, केतुमती और वसुदा। उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र आने पर नर्मदा ने अपनी तीनों लड़कियों का व्याह माल्यवान, सुमालि और माली के साथ कर दिया।

माल्यवान् के औरस से सुन्दरी के गर्भ में सात पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। उन सात पुत्रों के नाम थे—वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त तथा कन्या का नाम था अनला। सुमाली ने केतुमती के गर्भ से दस पुत्र और चार कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनके नाम थे—प्रहस्त, अकंपन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, सुपार्श्व, संह्राद, प्रघास और भासकर्ण। लड़कियों के नाम थे राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और कुम्भीनसी। माली ने वसुदा के गर्भ से—अनल, अनिल, हर और सम्पति नाम के चार पुत्रों को उत्पन्न किया। ये ही चारों विभीषण के मन्त्री थे। तीन भाई माल्यवान् और उनके इक्कीस लड़के और पाँच लड़कियों ने मिल कर देवता, ऋषि, नाग और यक्षों को पीड़ा देना आरम्भ किया। इनके अत्याचारों से त्रस्त देवता, अपनी दुःख कहानी सुनाने को शिव जी के पास गये। उनकी दुःख कथा सुन कर महादेव जी ने कहा—मैंने सुकेश को वर दिया है, अतः मैं उसके वाल बच्चों को अपने हाथ से न मारूँगा। जो बातें तुमने मुझ से कहीं—वे ही तुम जा कर श्रीविष्णु से कहो।" तदनुसार वे सब देवता विष्णु के पास गये और उनसे अपने कष्टों का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब विष्णु ने राक्षसों को मारने की प्रतिज्ञा की। तब प्रसन्न हो देवगण अपने अपने घर चले गये।

जब यह वृत्तान्त राक्षसों ने सुना, तब माल्यवान् ने अपने दोनों भाइयों से कहा :—

माल्यवान्—भाइयो! जिस विष्णु ने हिरण्यकशिपु, नमुचि, कालनेमि, संह्राद, राधेय, बहुमायी, लोकपाल दोनों यमलार्जुन, शुम्भ, निशुम्भ, आदि वीरों को मारा है, उसीने हम लोगों का वध करने की प्रतिज्ञा की है।

इस पर माल्यवान् के भाइयों ने कहा :—

सुमाली माली—भाई! हम लोगों ने तो विष्णु का कुछ बिगाड़ा नहीं है। हमने जो कुछ अपनी उन्नति की है और अपना ऐश्वर्य बढ़ाया है—सो अपने ही परिश्रम से। तिस पर देवताओं ने हमसे डाह कर के विष्णु को उभाड़ा है। अतः इस सारे बखेड़े की जड़ देवता हैं। अतएव चल कर हम लोग देवताओं ही को मारें।

इस प्रकार परस्पर ठहराव कर—वे अपनी सेना ले कर देवलोक पर चढ़ दौड़े। इस चढ़ाई का वृत्तान्त सुन भगवान् विष्णु स्वयं गरुड़ पर चढ़ और शस्त्र बाँध वहाँ पहुँचे और दोनों दलों में युद्ध होने लगा।

भला भगवान् विष्णु की मार के सामने राक्षस क्योंकर ठहर सकते थे, अतः वे सब रणक्षेत्र से भागे और लङ्का का मार्ग पकड़ा।

यह देख सुमाली ने विष्णु का सामना किया और उनको वाणों से व्यथित किया। सुमाली की जीत देख राक्षसों का पुनः उत्साह बढ़ा और वे लौटे। इतने में विष्णु ने सुमाली को पराजित किया। तब माली उनके सामने गया। विष्णु ने माली को मार डाला। तब उसके दोनों भाई युद्ध छोड़ कर भागे और विष्णु ने उनको खदेड़ा। तब माल्यवान् लौटा और विष्णु से बोला—तुम क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध काम करते हो और यह कह कर विष्णु की छाती में एक शक्ति मारी। पर विष्णु ने उसे विमुख कर दिया। दोनों भाई लङ्का में चले गये और वहाँ से अपनी स्त्रियों को ले पाताल में जा बसे। सालकटङ्कट वंश के सब राक्षस सुमाली के सहारे पाताल में रहने लगे।

जब राक्षसों ने लङ्का छोड़ दी, तब कुबेर वहाँ जाकर रहने लगे। कुछ दिनों बाद पाताल से निकल सुमाली मनुष्यलोक में विचरण करने आया। उसने वहाँ देखा कि कुबेर पुष्पकविमान में बैठ कर, लङ्का से पिता के दर्शन करने आ रहा

है। इस पर वह अनेक प्रकार के विचारों की उधेड़ बुन में पड़ गया, और बार बार उसे यही चिन्ता सताने लगी कि वह क्योंकार अपना खोया हुआ राज्य पावे और उसकी उन्नति करे। इस प्रकार सोचता विचारता वह पाताल को लौट गया।

घर लौट कर उसने अपनी कन्या केकसी को विश्रवा मुनि के साथ व्याह दिया। इन दोनों के सङ्गम से दशग्रीव, कुम्भकर्ण, और विभीषण नामक तीन लड़के और सूर्पणखा नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। ये सब वन में रहने लगे।

एक दिन कुवेर अपने पिता विश्रवा के पास आये। तब केकसी ने अपने पुत्र रावण को सम्बोधन कर के कहा—"देख यह (कुवेर) भी तेरा भाई है। तुझमें और इसमें कितना अन्तर है। तुझे उचित है कि तू भी इसके बराबर होने का यत्न कर।" इस पर रावण ने कहा—"मैं इसकी बराबर नहीं, बल्कि इससे भी बढ़ कर होने का यत्न करूँगा।" यह कह रावण अपने दोनों भाइयों को साथ ले वहाँ से चल दिया और तपस्या करने के लिये गोकर्ण के आश्रम में गया।

वहाँ जाकर तीनों भ्राताओं ने तप करना आरम्भ किया। यह तपस्या ऐसी कठोर थी कि उसका वर्णन करते नहीं बनता। तप करते करते जब एक हज़ार वर्ष हो जाते; तब रावण अपना एक सिर काट कर अग्नि में होम दिया करता था। इस प्रकार जब तप करते करते रावण को नौ हज़ार वर्ष व्यतीत हो चुके और उसकी गर्दन पर दस के बदले केवल एक सीस रह गया, तब ब्रह्मा प्रसन्न हुए और उसके सामने प्रत्यक्ष हो उससे कहा—"वर माँगो" रावण ने सब से पहले तो "अमर" होने का वर माँगा। पर ब्रह्मा ने उसे अमर करना अस्वीकृत कर के कहा—"अमरत्व तुझे नहीं मिल सकता। इस पर उसने कहा—"गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस, और देवताओं में से कोई भी मुझे न मार सके।" यह सुन ब्रह्मा ने कहा—"अच्छा यही हो।" इसके अतिरिक्त ब्रह्मा ने कहा—"तेरे कटे नौओ सीस फिर ज्यों के त्यों हो जाँय, जिससे जैसा तू रूप चाहे, वैसा ही तेरा हो जाय।

अनन्तर ब्रह्मा जी विभीषण के पास गये। तब विभीषण बोले—"मेरी बुद्धि विपत्ति के समय भी न डिगे और मैं अनसीखे ही ब्रह्मास्त्र को चला सकूँ।" ब्रह्मा ने कहा—"तथास्तु।"

जब विभीषण को उसका अभिलषित वर देकर, ब्रह्मा जी कुम्भकर्ण के पास गये; तब देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की—"महाराज! इसे समझ बूझ कर वर दीजियेगा। क्योंकि यह बड़ा उपद्रवी है। यदि इसको इच्छानुसार आपने इसे वर दिया तो यह तो संसार को उजाड़ डालेगा।" यह सुन ब्रह्मा ने सरस्वती को बुलाया और कुम्भकर्ण की मति पलट देने को कहा। सरस्वती देवी ने ब्रह्मा के कथनानुसार कुम्भकर्ण की मति वर माँगने के समय फेर दी। फल यह हुआ कि कुम्भकर्ण माँगना चाहता था कि मैं बहुत वर्षों तक जागूँ। पर उसके मुँह से निकल गया कि मैं बहुत वर्षों तक सोया करूँ। ब्रह्मा जी उसे बहुत वर्षों तक सोने का वर दे अपने लोक को चले गये।

वर पाकर ये तीनों भाई भी इस स्थान को परित्याग कर लिसोड़े के वन में चले गये और वहाँ रहे।

इन तीनों भाइयों का वर पाना सुन, सुमाली अपने अनुचरों सहित इनके पास गया। मरीच, प्रहस्त, विरूपाक्ष और महोदर उसके मंत्री थे। वह रावण के पास जाकर और उसे अपने गले लगा कर, उससे बोला:—

सुमाली—बेटा! तुमने डूबे हुए राक्षस-वंश को उबारा है। हम लोग विष्णु के डर से निज निवास-स्थान लङ्का को छोड़ रसातल में भाग गये थे। क्योंकि विष्णु ने कई बार हम सब राक्षसों को मार भगाया है। किन्तु आज हम सब तुम्हारे प्रताप से इस डर से छूटे। अब

उचित यही है कि जैसे हो वैसे, पहले कुबेर से लङ्का को लेलो।

रावण—आप कहते तो ठीक हैं; पर आप जानते हैं कि कुबेर मेरा ही बड़ा भाई है. और बड़ा भाई पिता के तुल्य होता है। ऐसे पूज्य के विषय में आप क्या कह रहे हैं?

यह युक्तियुक्त उत्तर सुन सुमाली से कुछ भी कहते न बन पड़ा, वह चुप हो गया। इसके कुछ दिनों बाद प्रहस्त ने एक दिन रावण से कहा :—

प्रहस्त—रावण, पहले यह पृथिवी दैत्यों की थी। किन्तु विष्णु ने उनको मार इसे देवों को दे डाली। इसका यही क्रम है। यह कभी न किसी एक के पास रही और न रह ही सकती है। अतः तुम भी अपनी लङ्कापुरी को हस्तगत कर लो।

यह सुन और कुछ सोच विचार कर रावण राक्षसों सहित लङ्कापुरी में गया और प्रहस्त को कुबेर के पास भेज उनसे यह कहलाया कि लङ्का पुरी तो राक्षसों की है। यहाँ आपका रहना उचित नहीं। यदि आप इसे छोड़ दें तो बड़ी कृपा हो और धर्म की लाज भी रह जाय।

प्रहस्त के मुख से रावण का संदेसा सुन, कुबेर ने कहा :—

कुबेर—मैंने इसे किसी से छीनी नहीं। यह तो उजाड़ पड़ी थी। मैंने इसे दान, मान से बसाया है। तुम जाकर भाई दशग्रीव से कह दो कि जो कुछ मेरा है, वह उसका भी है। भाइयों में कुछ अन्तर नहीं होता। मैं तो यहाँ पिता की आज्ञानुसार रह रहा हूँ।"

प्रहस्त को इस प्रकार उत्तर दे, कुबेर अपने पिता के पास गये और उन्होंने सारा हाल कहा। तब विश्रवा ने कहा :—

विश्रवा—बेटा! तुम लङ्का छोड़ दो और कैलास पर्वत पर जा बसो। दशग्रीव ने मुझसे भी कहा था, पर मैंने तो उसे झिड़क दिया। वह दुष्ट है, वह मानेगा नहीं। अतएव राक्षसों से वैर करना ठीक नहीं।

यह सुन पितृ-आज्ञा-कारी कुबेर ने लङ्का छोड़ दी और वे कैलास पर जा बसे। रावण ने लङ्का पर अपना अधिकार जमा लिया और वह उसमें रहने लगा। राक्षसों ने रावण का अभिषेक कर, उसे अपना अधीश्वर बनाया।

रावण ने अपनी बहिन सूर्पणखा का व्याह कालकेयवंशोद्भव विद्युजिह्व के साथ कर दिया।

मृगया के लिये वन में घूमते फिरते समय, रावण ने दिति के पुत्र मय नामक दैत्य को देखा। मय के साथ एक कन्या थी। रावण ने दिति से उसका हाल पूँछा। उत्तर में दिति ने कहा :—

दिति—मैं दिति का पुत्र हूँ। मय मेरा नाम है। देवों ने हेमा नाम की अप्सरा मुझे दी जो एक सहस्र वर्ष तक मेरे यहाँ रही। देवताओं के किसी कार्य के लिये वह तेरह वर्ष तक मेरे पास से कहीं चली गयी। जब वह लौटकर आयी तब मैंने एक नगर बसाया। मैं इस समय वहीं से आता हूँ। उसी हेमा की गर्भजात यह मेरी कन्या मन्दोदरी है। इसके दो सहोदर भाई हैं, जिनके नाम हैं दुन्दभी और मायावी। इस कन्या के योग्य मैं वर खोज रहा हूँ। अब तुम अपना वृत्तान्त कहो।

रावण के मुख से उसका और उसके वंश का परिचय पाकर, मय दैत्य ने मन्दोदरी का हाथ रावण को पकड़ा दिया। दोनों का परस्पर व्याह होगया। मय ने यौतुक में अन्य वस्तुओं के साथ रावण को एक शक्ति दी, जो उसने लक्ष्मण के मारी थी।

तदनन्तर मय ने बलि की पौत्री अर्थात् वैरोचन की पुत्री वज्रज्वाला कुम्भकर्ण को और गन्धर्वराज शैलूष की कन्या सरमा विभीषण को दी। इन दोनों ने उन दोनों कन्याओं को भार्य्या रूप से ग्रहण किया।

सरमा का जन्म मानसरोवर के तट पर हुआ था। जिस समय वर्षा काल उपस्थित होने पर मानसरोवर का जल बढ़ने लगा, उस समय

उसकी माता ने कहा—"सरो मा वर्द्धत" अर्थात् हे सर! तू मत बढ़, इसीसे उस कन्या का नाम सरमा पड़ा।

मन्दोदरी के गर्भ से मेघनाद का जन्म हुआ। पैदा होते ही वह मेघों की तरह गरजा, अतः उसका नाम मेघनाद रखा गया।

उधर जब कुम्भकर्ण निद्रालु हुआ; तब उसने रावण से अपने सोने के लिये घर बनवाने को कहा। भाई के कथनानुसार रावण ने एकान्त में एक घर बनवा दिया। उस घर में कुम्भकर्ण पैर पसार कर सो गया।

अब रावण निरङ्कुश हो देव, ऋषि, यक्ष और गन्धर्वों को मारता और अच्छे उद्यान और नन्दन आदि देवोद्यानों को नष्ट भ्रष्ट करता विचरने लगा। उसकी इस खोटी चाल को देख कुबेर ने उससे यह कहला भेजा तुम हमारे भाई हो। अतः तुम्हें हमारे वंश की चाल पर चलना चाहिये। मैं हिमालय पर तप कर रहा था। वहीं पर शिव और पार्वती का मुझे दर्शन मिला। अभाग्यवश, देवी ने मेरे सव्य नेत्र को नष्ट कर डाला। क्योंकि मैंने उनका अनुपम रूप देख कर कहा था कि—"यह कौन है। मैंने इस पर फिर वहीं बैठ कर तप किया। तब शिव जी ने प्रसन्न हो कर, मुझे अपना मित्र बनाया और मेरा नाम एकाक्ष, पिङ्गली रख छोड़ा है। शिव के साथ मैत्री स्थापित कर जब मैं घर लौट कर आया, तब सुना कि तुम्हारे बढ़ते हुए अपराधों के कारण, देवता और ऋषि तुम्हारे बध का उपाय सोच रहे हैं। अतएव तुम अधर्म छोड़, धर्म का अवलम्बन करो।"

मद से उन्मत्त रावण ने भाई के सत्परामर्श को तुच्छ और अपमान जनक समझ, अपने बड़े भाई कुबेर के दूत को मार डाला और कुबेर पर चढ़ाई की।

महोदर, प्रहस्त, मारीच, शुक, सारण और धूम्राक्ष को साथ लेकर वह गया। ये ही उसके मंत्री थे। राक्षसों को देख यक्षों ने उनके आगमन की सूचना अपने राजा कुबेर को दी। कुबेर ने उन राक्षसों के साथ युद्ध करने की अपने यक्षों को आज्ञा दी।

यक्ष और राक्षसों का युद्ध छिड़ गया। यक्षों का संहार होते देख, कुबेर ने संयोधकण्टक नामक यक्ष को एक बड़ी सेना के साथ रणभूमि में भेजा पर यह मारीच से पराजित होकर भागा, तब रावण भीतर जाने लगा। पर सूर्य्यभानु द्वारपाल ने उसे रोका! किन्तु वह न माना। इस पर उसने रावण के तोरण उखाड़ कर मारा। रावण ने उसी तोरण से सूर्य्यभानु को तुरन्त मार डाला। यह देख वहाँ जो जो यक्ष थे—वे सब वहाँ से भागे। तब कुबेर ने मणिभद्र नामक यक्ष को भेजा। उसका युद्ध देख, देव, गन्धर्व और ब्रह्मवादी ऋषि बड़े विस्मित हुए। मणिभद्र ने धूम्राक्ष को मूर्च्छित कर दिया, जिससे वह उसके मुकुट में जा प्रहार किया, जिससे वह बगल में आगया। इसी कारण वह पार्श्वमौलिक कहलाने लगा। चोट खाकर वह भगा इतने में शुक्र और प्रोष्ठ—दोनों मंत्रियों को लिये हुए स्वयं कुबेर हाथ में गदा लेकर दीख पड़े। पद्म और निधि-दोनों निधि-देवता भी उनके साथ थे। कुबेर ने रावण के मंत्रियों को धिक्कारने के अनन्तर उसके मंत्रियों को मार भगाया। तब कुबेर और रावण में लड़ाई होने लगी। कुबेर को रावण ने गदा के प्रहार से मूर्च्छित कर दिया। उसके मंत्री उसे उठा ले गये। रावण कुबेर और उनके यक्षों को पराजित कर और इस विजय का स्मारकचिन्ह रूपी पुष्पक विमान ले कैलास से नीचे उतरा।

कैलास से उतर रावण उस सरहरी के वन में घुसा जिसमें देवसेनापति स्वामिकार्तिक का जन्म हुआ था। वहाँ जाते ही उसके पुष्पक विमान की गति रुक गयी। तब उसने अपने मन्त्रियों से पूँछा कि विमान के रुक जाने का कारण क्या है? इतने ही में शिवजी के नन्दीश्वर ने उससे जाकर कहा:—

नन्दीश्वर—हे दशग्रीव! तू यहाँ से चला जा। यहाँ पर भगवान् शिवशङ्कर क्रीड़ा कर रहे हैं। इसलिये यहां पर किसी प्राणी की भी गति नहीं है।

यह सुन और वेगपूर्वक विमान से उतर रावण क्रोध में भर बोला:—"कौन शङ्कर और कहाँ का शङ्कर।" यह कह वह आगे बढ़ा।

किन्तु नन्दीश्वर को हाथ में त्रिशूल लिये शिवजी के समीप खड़ा देखा। नन्दीश्वर का मुख बन्दर जैसा देख रावण को हँसी छूटी। हँसने का कारण जानते नन्दीश्वर को देर न लगी। उसने रावण को यह शाप दिया।

नन्दीश्वर—मेरे ही मुख वाले वानर अपने नख और दाँतों से तेरे कुल का नाश करेंगे। मैं अभी तुझे मार सकता हूँ, पर क्या मारूँ। तू अपने कर्मों से अपनेको आप ही मार चुका है।

नन्दीश्वर का यह शाप सुन देवगण पुष्पों की वृष्टि कर अपनी प्रसन्नता जताने लगे। नन्दीश्वर के वचनों पर रावण ने जब ध्यान पूर्वक विचार किया तब तो उसके मन में बड़ा क्रोध उपजा। क्रोध में भर उसने कहा:—

रावण—हे रुद्र! तुम गंवार की तरह यहाँ क्रीड़ा कर रहे हो। वह नहीं जानते कि भय सा कर साक्षात् यहाँ उपस्थित हुआ है। स्मरण रखो यदि मेरे विमान की चाल में तृण भर भी अन्तर आया तो इस पर्वत ही को उखाड़ कर मैं फेंक दूँगा।

यह कह रावण ने कैलास को उठाया। यह देख महादेव के गण डर के मारे काँपने लगे और व्यथित एवं भयभीत पार्वती शिव जी के शरीर से लिपट गयीं। यह देख महादेव जी ने पैर के अँगूठे से उस पर्वत को दबा दिया। पर्वत के दबाते ही रावण के दोनों हाथ भी उस पर्वत के नीचे दब गये। तब तो रावण मारे पीड़ा के तोबा तिल्ला कर चिल्लाने और पुकारने लगा। यह कौतुक देख, यक्ष, विद्याधर और सिद्धों को बड़ा आश्चर्य हुआ। तब तो रावण के मन्त्रियों ने उसे परामर्श दिया कि स्तव कर के रुद्र भगवान् को प्रसन्न करो, नहीं तो तुम बच न सकोगे। तब १ सहस्र वर्ष तक उसी प्रकार हाथों को पर्वत के नीचे फँसा कर, रावण ने सामवेद के मन्त्रों से शिवजी की स्तुति की। इस स्तुति से प्रसन्न हो शिव जी ने उसके हाथ ही केवल न छोड़े; किन्तु उससे कहा:—

शिव—हम तुम्हारी सामर्थ्य और तुम्हारे साहस को देख तुम पर बहुत प्रसन्न हुए हैं। तुम अब जिधर से चाहो, उधर से जा सकते हो। हे दशग्रीव! आज से तेरा नाम रावण भी होगा। क्योंकि तुमने सब प्राणियों को रुलाया है और स्वयं भी रोये हो।

रावण—यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे कोई अस्त्र दीजिये।

यह सुन शिव जी ने उसके हाथ में चन्द्रहास नामक खड्ग दे कर कहा:—

शिव—इसका अनादर मत करना। यदि अनादर करोगे; तो यह मेरे पास चला आवेगा।

उस खड्ग को ले रावण पृथिवी पर आया और राजाओं को सताने लगा। जो राजा उससे हार मानते थे, उनको तो वह छोड़ देता था और जो लड़ते थे, उनको वह सपरिवार नष्ट कर डालता था।

एक बार रावण हिमालय के वन में घूम रहा था। वहाँ उसने एक कन्या को तप करते देखा। रावण ने उससे पूँछा कि तुम कौन हो और ऐसा भारी तप क्यों कर रही हो? वह रावण का अतिथि सत्कार कर बोली:—

वेदवती—ब्रह्मर्षि कुशध्वज की मैं लड़की हूँ और बृहस्पति मेरे पितामह हैं। नाम मेरा वेदवती है। मेरे साथ ब्याह करने के लिये देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नाग मेरे पिता के पास आये। पर उन्होंने किसी को मुझे न दिया।

क्योंकि उनकी इच्छा थी कि मेरा विवाह विष्णु से हो। यह देख दैत्यों के राजा शम्भु ने रात्रि को सोते समय मेरे पिता का सिर काट लिया। मेरी माता मेरे पिता के साथ भस्म हो गयी। मैं अपने पिता की प्रतिज्ञा पालन करने के लिये विष्णु की आराधना कर रही हूँ, जिससे मेरा विवाह उनके साथ हो।

मैं अपने तपोबल से जानती हूँ कि तुम पुलस्त्य के पौत्र रावण हो और तुम्हीं लङ्का के अधिपति हो।

रावण—तुमको तप में अपना शरीर जलाना उचित नहीं। विष्णु मेरे बराबर नहीं। तुम मुझ से व्याह कर मेरे साथ भोग करो।

वेदवती—तुमको छोड़ कर कौन ऐसा बुद्धिमान होगा, जो विष्णु की निन्दा करेगा।

यह सुन रावण ने झट वेदवती का झोंटा जा पकड़ा। वह केश छुड़ा कर, अग्नि में कूद कर भस्म हो गयी, पर यह कह गयी "तुमने मेरी जो अवमाना की है इसका बदला मैं तुमसे किसी धर्म्मात्मा के घर में अयोनिजा जन्म लेकर लूँगी मैं ही तुम्हारे नाश का कारण होऊँगी।"

जब वेदवती जल गयी; तब घूमता हुआ रावण उशीरबीज देश में पहुँचा, जहां पर मरुत राजा देवताओं के साथ यज्ञ कर रहे थे और बृहस्पति के भाई संवर्त्त यज्ञ कर रहे थे। देवताओं ने रावण को दुर्ज्जेय समझ, डर के मारे जानवरों का रूप धारण कर लिया। इन्द्र ने मयूर, यम ने कौआ, कुबेर ने गिरगिट, वरुण तथा अन्य देवताओं ने हंस आदि के रूप धारण कर लिये। रावण ने यज्ञ मण्डप में जा कर राजा से कहा कि या तो हम से युद्ध करो या "बोलो कि हम हार गये।" यह सुन राजा ने पूछा—

राजा—तुम कौन हो?

रावण—(हँस कर) मेरा नाम रावण है। मैं कुबेर का भाई हूँ। मैंने युद्ध में उसे परास्त कर, उसीसे यह पुष्पक विमान छीन लिया है। तुमको छोड़ कर ऐसा कौन है जो मेरे बल को नहीं जानता।

राजा—तुम्हारे समान प्रथित यशा कौन ऐसा होगा, जो गुरु तुल्य अपने बड़े भाई को जीते। ठहर, मैं तुझे अभी तेरे कर्म्म का फल देता हूँ।

यह कह राजा ने धनुष हाथ में उठाया। यह देख संवर्त्त ऋषि ने कहा—

संवर्त्त—दीक्षित को युद्ध करने का निषेध है। इसके अतिरिक्त यह राक्षस दुर्ज्जेय है। जय भी सन्दिग्ध है।

गुरु का वचन सुन राजा ने धनुष बाण रख दिया। यह देख शुक ने चारों ओर उड़ा दिया कि रावण की जीत हुई। रावण उस यज्ञ में आये हुए ऋषियों को भक्षण कर, वहाँ से चला गया। उसके चले जाने पर, देवता फिर अपने अपने रूप में आये।

इन्द्र ने मयूर से कहा "तुझको सर्प से भय न होगा। मेरे सहस्र नेत्र तेरे पुच्छ पर होंगे और जब मैं वृष्टि करूँगा तब तू प्रसन्न होगा।" यम ने काक से कहा—"तुझको कोई रोग न होगा और जब तक तुझको कोई मारेगा नहीं तब तक तू जीता रहेगा तथा जितने मनुष्य मेरे लोक में रहेंगे, सब तेरे भोजन करने से तृप्त हो जाँयगे। वरुण ने हंस से कहा—"तू बहुत सुन्दर होगा और जल से तेरी प्रीति होगी।" कुबेरने गिरगिट से कहा "तेरा वर्ण सोने की तरह हो जायगा।" देवता लोग ऐसा वर दे, यज्ञ समाप्त कर राजा सहित अपने अपने घरों को चले गये।

रावण मरुत को जीत आगे बढ़ा और जहाँ जाता था वहाँ के राजाओं से यही कहता था कि लड़ो या कहो कि हम हारे।" उसको दुर्जेय समझ, बड़े बड़े राजा जैसे दुष्यन्त, सुरथ, माधि और गय ने भी सम्मति कर, कहा कि हम लोग हार गये। तब वह अयोध्या में गया। वहाँ के राजा अरण्य से कहा—"या तो लड़ो या हार मानो।" अयोध्या नरेश ने अपनी सेना तैयार कर रावण का सामना किया। पर इन राजा की सेना

को राक्षसों ने नष्ट कर डाला। तब राजा स्वयं लड़ने लगा और उसने रावण के चारों मन्त्रियों को मार भगाया और रावण को भी मारा; किन्तु रावण के चोट न लगी। रावण ने राजा के एक थप्पड़ मारा, जिसकी चोट से वे अचेत हो कर गिर गये। जब वे सचेत हुए तब अयोध्या नरेश से बोले:—

रावण—"जान पड़ता है तुम सुखभोग में लिप्त रहने के कारण, लोगों को रुलाने वाले रावण का नाम नहीं सुन पाये थे। इसीसे तुमने मेरे साथ लड़ने का साहस किया। त्रिलोक में कौन है जो मेरा सामना कर सके"।

राजा—अरे जा! काल की महिमा है, नहीं तो आज तू यहाँ से जीता जागता न लौटता। तेरी क्या सामर्थ्य है, जो तू मुझे जीत सके—यह सब काल की करतूत है। आज तू ने मेरा घोर अपमान किया है। मेरा शाप है मेरे कुल में दशरथ नाम के एक राजा होंगे। उन्हीं के पुत्र रामचन्द्र तुझे सकुल, सवंश, सपुत्र मार, इस अपमान का बदला लेंगे।

यह कह राजा अरण्य स्वर्ग सिधारे और रावण भी वहाँ से आगे बढ़ा।

आगे बढ़ कर रावण की नारद जी से भेंट हुई। उन्होंने रावण से कहा:—

नारद—अरे रावण! इन मनुष्यों को तू क्यों मारता है? ये तो स्वयं अनेक प्रकार के दुःखों को भोगते हुए सर्वथा तेरे वश में हैं। तुझे तो इनकी रक्षा करने के लिये, इनके मारने वाले यम को जीतना चाहिये।

रावण—बहुत अच्छा, यही सही। मैं यम ही को जीतूँगा।

यह कह वह यमपुरी को गया। उसकी यमपुर की यात्रा देख, नारद युद्ध देखने की इच्छा से पहले ही वहाँ जा पहुँचे। यम ने उनका यथोचित आदर सत्कार किया। नारद ने उनसे कहा रावण युद्ध करने आ रहा है, तुम लड़ने की तैयारियाँ करो। इतने ही में रथ में बैठा रावण भी आता दीख पड़ा। यमपुरी में पहुँचते ही उसने उन जीवों को छोड़ दिया जो अनेक प्रकार की नारकीय यन्त्रणाएँ भोग रहे थे। यह देख यमपुरी में बड़ी गड़बड़ मची। यम के दूतों और रावण में युद्ध आरम्भ हुआ। रावण और उसकी सेना ने जी खोल कर युद्ध किया। पाशुपतास्त्र से रावण ने सब यमदूतों को नष्ट कर डाला। यह देख यमराज स्वयं रथ पर बैठ और हाथों में पाश और मुग्दर ले कर, रावण से युद्ध करने के लिये प्रस्थित हुए। उनके साथ मृत्यु तथा दण्ड भी रूप धारण कर गये। उन्हें देखते ही रावण के मन्त्रीगण भाग खड़े हुए। पर रावण रणभूमि में ज्यों का त्यों डटा रहा। सात दिन बराबर युद्ध हुआ। रावण को यम ने बाणों की मार से विमुख तो कर दिया, पर वह युद्ध छोड़ हटा नहीं। बड़ा विषम युद्ध हुआ। इस युद्ध का तमाशा देखने, ब्रह्मा को आगे कर ऋषि, गन्धर्व, सिद्ध और देवता वहाँ गये। रावण के बाणों की चोट से यम बहुत रिसियाने। उनको क्रुद्ध देख, मृत्यु और दण्ड, रावण से भिड़ गये। पर यम ने उन्हें रोका और स्वयं कालदण्ड उठाया। जिसको देख कर सब प्राणी डर गये। तब ब्रह्मा ने यम के निकट जाकर कहा:—

ब्रह्मा—हे धर्मराज! इस अस्त्र को काम में मत लाओ; क्योंकि यह जिस पर चलाया जाता है, वह बच नहीं सकता। मैंने इसे ऐसा ही बनाया है। साथ ही मैंने रावण को वर देकर देवताओं से अमर बनाया है। यदि तुमने यह अस्त्र चलाया और रावण न मरा तो मैं झूठा हुआ और वह मारा गया तो भी मुझे ही झूठा बनना पड़ेगा।

यम ने ब्रह्मा का कहना मान लिया। वे युद्ध छोड़ चले गये। रावण जीत का डङ्का बजाता यमपुरी से बाहिर निकला।

वह वहाँ से निकल और अपने मन्त्रियों को अपने रथ पर बिठा, समुद्र मार्ग से रसातल में

गया और नागों के उस देश में गया जहाँ की रक्षा स्वयं वरुण करते थे।

रावण ने भोगवती में वासुकी नाग को जीता। वहाँ से वह मणिमयी पुरी में गया। वहाँ निवात कवच नामक दैत्य रहते थे। उन लोगों से वर्ष भर तक लड़ाई होती रही। पर दोनों दलों में से हारा एक भी नहीं। तब वहाँ भी ब्रह्मा जी पहुँचे और दोनों में परस्पर मेल करवा दिया। यह मेल अग्नि की साक्षी में हुआ। अनन्तर एक वर्ष तक रावण वहाँ रहा। वहाँ उसने अनेक प्रकार की माया सीखी और फिर वह वरुण को ढूँढने लगा। खोजते खोजते वह अश्म नामक नगर में पहुँचा। यहीं पर कालकेय नामक असुर रहता था। रावण ने युद्ध में इसे मार डाला। इसी युद्ध में रावण ने स्वयं अपने बहनोई अर्थात् सूर्पणखा के पति विद्युज्जिह्व को भी मार डाला; क्योंकि वह रावण के सचिवों को खा डालना चाहता था।

वहाँ से चल कर रावण ने वरुण के भवन को देखा, जिसके द्वार पर उत्तम सुरभि गौ खड़ी थी उसकी प्रदक्षिणा कर वरुण के अनुचरों से रावण बोला—"जा कर अपने मालिक से कहो कि युद्ध के लिये रावण आया है, सो या तो तुम लड़ो या अपना पराजय स्वीकार कर लो।" यह सुन वरुण के पुत्र तथा पौत्र गौ और पुष्कर को साथ ले लड़ने को निकले। युद्ध आरम्भ हुआ। वरुण के पुत्रों ने रावण का मुख युद्ध से फेर हर्षनाद किया। यह देख महोदर ने उनको रथरहित कर दिया। पर वे लोग बराबर डटे रहे और महोदर को विमुख कर, रावण को मारने लगे। रावण ने क्रोध में भर उनको मूर्च्छित कर दिया। वरुण के अनुचर उन मूर्च्छित वरुणकुमारों को उठा कर ले गये, तब रावण ने उन लोगों से कहा कि वरुण को युद्ध के लिये भेज दो। यह सुन वरुण के मंत्री प्रहास ने कहा—"वरुण तो यहाँ हैं नहीं। उनके पुत्रों को तुम जीत ही चुके।" यह सुन रावण प्रसन्न होता हुआ वहाँ से चल दिया। युद्धार्थी रावण अश्म नगर में घूमने लगा और घूमते घूमते उसने एक विशाल भवन देख प्रहस्त से कहा—"देखो तो इस भवन में कौन रहता है?" प्रहस्त उस भवन की छः ड्योढ़ियाँ नाघ गया। पर वहाँ उसे कोई न मिला। पर जब वह सातवीं ड्योढ़ी पर पहुँचा, तब उसे एक ज्वाला देख पड़ी और उस ज्वाला के बीच ज्वाला ही के तुल्य एक पुरुष दीख पड़ा। वह प्रहस्त को देखते ही ठठा कर हँसा। उसको हँसते देख प्रहस्त मारे डर के वहाँ से डर कर भागा और रावण रथ से उतर ज्यों हीं घर में घुसा, त्यों ही एक भयङ्कर पुरुष हाथ में मूसल ले कर और द्वार रोक कर खड़ा हो गया। उसे देख रावण के रोएँ खड़े हो गये और डर कर कुछ सोचने लगा। इतने में उस पुरुष ने उससे कहा:—

पुरुष—अरे राक्षस! तू क्या सोच रहा है? तू चाहता क्या है?

रावण—हे वीर! मैं तेरे साथ युद्ध करना चाहता हूँ।

पुरुष—क्या तू बलि के साथ लड़ना चाहता है?

यह सुन रावण के होश उड़ गये। पर सम्हल कर उसने कहा:—

रावण—हे वीर! इस घर में रहता कौन है? मैं उसीसे लड़ूँगा।

पुरुष—इसमें तो दैत्यराज बलि रहते हैं। वे बड़े शूरवीर, पण्डित और धर्मात्मा हैं। यदि उन से लड़ना हो तो भीतर चले जाओ और लड़ लो।

रावण भीतर गया और सूर्य के समान देदीप्यमान राजा बलि को देखा। रावण को देख राजा बलि हँसे और उसे गोद में बिठा कर उस से बोले:—

बलि—हे रावण! तुम अपने यहाँ आने का कारण बतलाओ।

रावण—मैंने सुना है कि विष्णु ने तुमको बाँध रखा है। सो मैं तुमको छुड़ाने आया हूँ।

बलि—(हँस कर) मुझे बाँधने वाला वही पुरुष है जिसे तुमने द्वार पर खड़ा देखा था। वही सम्पूर्ण जीवों का नाशक और उत्पन्न करने वाला है। वृत्र, दनु, शुक्र, शुम्भ, निशम्भु, कालनेमि, धूलि, वैरोचन, मृदु, यमलार्जुन, कंस, कैटभ, मधु आदि बलियों का मारने वाला यही है। हे रावण! पहले उस चन्द्र को उठा लाओ तब मैं समझूँगा कि तुम मुझे बन्धन से छुटा सकोगे।

रावण हँस कर वहाँ गया और अहङ्कार में चूर हो, उसे उठाना चाहा पर वह टस से मस भी न हुआ। तब लज्जित हो उसने अपने शरीर का सारा बल लगा उसे उठा तो लिया, पर उस के मुख से रक्त की धार बहने लगी। उसका कलेजा फट गया और वह मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ा। उसकी ऐसी दशा देख उसके मन्त्री रोने लगे। कुछ देर बाद वह सचेत तो हुआ पर लज्जा कर उसने गरदन नीची कर ली। तब बलि ने कहा :—

बलि—यह मेरे प्रपितामह हिरण्यकशिपु के कान का कुण्डल है। उनके कान का दूसरा कुण्डल पर्वत पर और उनके सीस का मुकुट, युद्ध करते समय वेदिका के समीप गिरे थे। उनकी मौत किसी प्रकार न थी, पर उन्होंने अपने विष्णु-भक्त प्रह्लाद से झगड़ा किया था। अतएव अपने भक्त की रक्षा के लिये विष्णु ने नृसिंह रूप धर उसे मार डाला। वे ही वासुदेव द्वार पर खड़े हैं।

रावण—मैं तो यमराज को जीत कर आ रहा हूँ। यह कौन है सो तो बतलाइये।

बलि—यह विष्णु भगवान् हैं, जो ऋषियों के मित्र और दैत्य एवं राक्षसों के शत्रु हैं।

यह सुन रावण लाल लाल नेत्र कर अस्त्र शस्त्र सम्हालने लगा। तब विष्णु ब्रह्मा के वर का स्मरण कर वहाँ से टरक गये। उनको वहाँ न देख रावण प्रसन्न हो वहाँ से चल दिया।

वहाँ से चल कर रावण सूर्यलोक में गया। मार्ग में वह रात भर के लिये मेरु शृङ्ग पर टिका था, अगले दिन वह सूर्यलोक में पहुँचा और प्रहस्त से कहा:—"सूर्य से जा कर कहो कि रावण खड़ा है, या तो युद्ध करो या हार मान लो।"

प्रहस्त ने जा कर यह सन्देसा सूर्य के द्वार-पाल पिङ्गल और दण्डी द्वारा, सूर्य के पास भेजा। सूर्य ने उसे सुन कर द्वारपालों से कहा "जैसी तुम्हारी इच्छा हो करो। चाहे लड़ो चाहे जाने दो। यह थोड़े ही दिनों बाद मारा जायगा।" दण्डी ने जा कर कहा—"सूर्य न लड़ेंगे।" यह सुन रावण हर्षनाद करता हुआ वहाँ से चल दिया।

वहाँ से रावण चल कर मेरु पर्वत के शिखर पर एक रात्रि रहा। फिर अगले दिन चला चला वह चन्द्रलोक में उपस्थित हुआ। मार्ग में उसने अनेक राजाओं को जाते देख, पर्वत नाम के ऋषि से उसने पूँछा "महाराज! बतलाइये वह कौन सा राजा है, जो मेरे साथ युद्ध कर सके।" उत्तर में ऋषि ने कहा:—"इन राजाओं में से तो आप के साथ कोई लड़ेगा नहीं, तब हाँ आप अयोध्या नरेश के युवनाश्व के पुत्र मान्धाता से लड़ें। वे आपके जोड़ के हैं। आप यहीं ठहरिये। वे सप्त-द्वीप को अपने वश में कर, यहाँ आते ही होंगे।"

इतने में राजा मान्धाता भी दीख पड़े। रावण को तो लड़ने की झक सवार ही थी। उसने तुरन्त उनसे लड़ाई का प्रस्ताव किया। राजा मान्धाता ने कहा—"जान पड़ता है तुझे अपना जीवन भार-स्वरूप प्रतीत हो रहा है।" उत्तर में रावण ने कहा—"मैं तो लोकपालों को परास्त कर चुका हूँ। तू तो मनुष्य है, तुझसे मैं क्या डरूँ।"

अनन्तर रावण ने अपने मन्त्रियों को आज्ञा दी कि राजा पर बाण बरसाये जाँय। युद्ध होने लगा। राजा मान्धाता ने रावण के मंत्रियों अर्थात् शुक, सारन, महोदर, विरूपाक्ष, अकम्पन, को बाणों से व्यथित कर, रावण को मुद्गर की चोट से मूर्छित कर दिया। राक्षसी सेना को मूर्छित कर राजा प्रसन्न हुए।

थोड़ी देर बाद जब रावण को मूर्च्छा भङ्ग हुई; तब उसने भी मान्धाता को मूर्च्छित किया। मान्धाता ने सचेत होने पर, ब्रह्मास्त्र और रावण ने पाशुपतास्त्र चलाना चाहा। इन दोनों शस्त्रों के प्रयोग से जीवमात्र मारे डर के काँप उठे। अनर्थ होते देख पुलस्त्य और गालव ने आ कर मान्धाता और रावण का मेल करा दिया।

उन ऋषियों और राजा के चले जाने पर रावण आगे बढ़ा और हंस पक्षियों के देश में गया। वहाँ से वह उस देश में गया जहाँ तीन प्रकार के मेघ और तीन प्रकार के पक्षी रहते हैं। उनको ब्राह्मण आग्नेय कहते हैं। वहाँ से वह उस देश में गया जहाँ सिद्ध और चारण लोग रहते हैं। इसी प्रकार रावण अनेक देशों में गया। उन देशों में से कुछ के नाम नीचे लिखे जाते हैं :—

(१) भूत और विनायकों के देश में।

(२) गङ्गा नदी और कुमुद आदि नागों के देश में।

(३) गरुड़ के देश में।

(४) ऋषियों के देश में।

(५) आदित्य मार्ग में जहाँ आकाश गङ्गा के नाम से गङ्गा निवास करती हैं।

(६) चन्द्र लोक में। यहाँ रावण के मन्त्रियों को इतनी सर्दी लगी, जिसे वे न सह सके और रावण से बोले—"महाराज हम से तो यहाँ की सर्दी नहीं सही जाती।" यह सुन रावण क्रुद्ध हुआ और उसने चन्द्रमा पर बाणों की वर्षा करनी आरम्भ की। इतने में, वहाँ ब्रह्मा जी पहुँच गये और उसे ऐसा करने से रोका और एक मन्त्र ऐसा बतलाया जिसे जपने से जीव अजेय हो जाते हैं। यह मन्त्र सीख कर रावण लङ्का को लौट गया और ब्रह्मा ब्रह्मलोक को चले गये।

लङ्का में रह कर कुछ दिनों तक रावण ने अपनी सेना को विश्राम कराया। अनन्तर उसने फिर विजय यात्रा की। इस बार उसने पश्चिम समुद्र की यात्रा की। उसके साथ इस बार भी उसके मन्त्री थे। रावण ने पश्चिम समुद्र में एक द्वीप देखा, जहाँ एक पुरुष रहता था और उसका नाम कपिल था। रावण ने कपिल देव से भी युद्ध करना चाहा और प्रस्ताव स्वरूप उसने कपिल देव के ऊपर बाण भी चलाये। तब कपिल देव ने रावण को पकड़ कर दबा दिया जिससे वह अचेत हो गया। रावण को मूर्च्छित कर, कपिल ने उसके मन्त्रियों को मार कर भगा दिया। फिर वे स्वयं कन्दरा के मार्ग से पाताल में चले गये।

जब रावण की मूर्च्छा टूटी; तब उसने अपने मन्त्रियों से पूँछा कि वह पुरुष किधर गया।" इसके उत्तर में उसके मन्त्रियों ने कहा—"इसी मार्ग से वह भीतर चला गया है।" यह सुन रावण निर्भय हो उस मार्ग से भीतर घुसा। वहाँ पर उसने एक पुरुष को सोते हुए पाया। उसके पास एक स्त्री बैठी थी और बहुत सी स्त्रियाँ वहाँ नाच रही थीं और बहुत से पुरुष वहाँ बैठे थे। महात्मा के पास बैठी हुई स्त्री पर रावण ने अपना हाथ बढ़ाया। तब तो रावण की धृष्टता देख वह पुरुष उठा और उसके हँसते ही रावण फिर मूर्च्छित हो गिर गया।

कुछ देर बाद जब रावण सचेत हुआ; तब उस पुरुष ने उससे कहा :—

पुरुष—रावण! तू ब्रह्मा के वरदान से बच गया, अब यहाँ से तुरन्त तू चल दे।

रावण—आप हैं कौन?

पुरुष—तुझे इससे क्या प्रयोजन? तू अपनी राह ले।

रावण—बहुत अच्छा महाराज! मैं यह चाहता हूँ कि यदि मैं मरूँ तो आप ही के हाथ से और यह कह कर वहाँ से चल दिया।

रावण वहाँ से निकल कर आगे बढ़ा। रास्ते में राक्षस, दैत्य, मनुष्य, नाग, यक्ष और दानवों को मार कर, रावण ने उनकी स्त्रियों को अपने रथ में बिठा लिया। वे सब रोती चिल्लाती जाती थीं। उन सब ने मिल कर रावण को यह शाप दिया कि यह सोचे परस्त्री के साथ खोटा काम

करना चाहता है, अतएव परस्त्री के कारण ही तुम्हारी मौत होगी। उन स्त्रियों का यह शाप सुन देवों ने आनन्दित हो नगाड़े बजाये और फूलों की वर्षा की। उन सब स्त्रियों सहित रावण लङ्का में पहुँचा। इसको देख सूपनखा रोती विलाप करती इसके सामने आकर गिर पड़ी। रावण ने उससे रोने का कारण पूछा। तब वह बोली भाई कालकेय दैत्यों के साथ मेरे पति को मार आया। तूने यह अच्छा काम नहीं किया। यह सुन रावण ने कहा :—

रावण—मैंने जान बूझ कर तेरे पति को नहीं मारा। अब तू दुःखी मत हो। होना था सो हो गया। अब तू जो कहेगी मैं वही करूँगा। खर मेरी मौसी का पुत्र है। अब तू उसी के साथ रह। चौदह हजार सैनिकों सहित उसे मैं दण्डकारण्य की चौकी पर भेजता हूँ। इस सेना का दूषण सेनापति होगा। वह तेरा सब प्रकार से रक्षण करेगा।

शूर्पणखा को इस प्रकार समझा बुझा कर वह रावण अपने निकुम्भिला देवी के मन्दिर में गया। निकुम्भिला देवी का मन्दिर लङ्का के एक उपवन में था। वहाँ पर मेघनाद तप कर रहा था। उसे रावण ने गले लगा कर उससे पूछा। उसने तो कुछ उत्तर न दिया, पर उसके पुरोहित शुक्रजी ने कहा :—

शुक्र—तुम्हारे इस पुत्र ने अग्निहोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय, गोमेध, वैष्णव और माहेश्वर-सहित सातों यज्ञों को पूर्ण कर, महादेव से इच्छानुसार गमन करने वाला रथ, तामसी माया, अक्षय बाणों से भरे दो तरकस, दुर्जेय धनुष, और बड़ा बलवान् अस्त्र पाया है। आज यह यज्ञ पूरा कर चलेगा।

रावण—यह तो इसने अच्छा नहीं किया जो हमारे शत्रु देवताओं की इसने पूजा की। अच्छा जो हुआ सो हुआ। अब आओ चलो घर चलें।

ऐसा कह और विभीषण को साथ लिये हुए वह विमान के समीप गया। वहाँ स्त्रियों को रोती और विलाप करते देख विभीषण ने कहा :—

विभीषण—तुम तो पराई स्त्रियों को हर लाये, पर तुम्हें अपने घर की भी कुछ सुध है। तुम्हारी बहिन कुम्भीनसी को मधुदैत्य हर कर ले गया। कुम्भीनसी हमारे नाना के ज्येष्ठ भाई माल्यवान की लड़की अनला की बेटी है। मेघनाद और मैं दोनों तो तप कर रहे थे और कुम्भकर्ण पड़ा पड़ा सोता था। उसने मंत्रियों को मार अपना काम पूरा किया।

यह सुनते ही सेना सहित रावण ने मधुपुरी पर चढ़ाई की।

इस बार की चढ़ाई में रावण के साथ उसका भाई और उसका लड़का मेघनाद भी था। विभीषण लङ्का ही में रह गये थे। रावण मधुपुरी में पहुँचा, तब कुम्भीनसी मारे डर के बाहिर निकल आयी और रावण के पैरों पर गिर पड़ी, यह देख रावण ने उससे कहा :—

रावण—डरो मत और बतलाओ इस समय मैं तेरा क्या उपकार करूँ?

कुम्भीनसी—आपका यही बड़ा उपकार है कि आप मेरे पति को न मारें।

रावण—अच्छा उसे हम न मारेंगे। पर उसे बुला दो। वह हमारे साथ चले। हम स्वर्ग जीतने जा रहे हैं।

मधु सो रहा था सो कुम्भीनसी ने उसे जाकर जगाया और उससे कहा :—

कुम्भीनसी—मेरा भाई रावण स्वर्ग जीतने जा रहा है। तुम्हारी सहायता पाने के लिये वह द्वार पर खड़ा है।

यह सुनते ही मधु झट पट द्वार पर गया और रावण का बहुत कुछ सत्कार किया। रात्रि भर रावण ने मधु-दैत्य का सादर सत्कार ग्रहण किया। दूसरे दिन सवेरा होते ही वे दोनों अपनी सेना सहित वहाँ से चल दिये। दिन भर चल कर सन्ध्या होते होते वे कैलास पर पहुँचे और उस रात को सेना सहित वे वहीं रहे।

जब सैनिक लोग सो गये और रावण जागता हुआ वन की शोभा निरख रहा था—तब रम्भा नाम की अप्सरा उस ओर से निकली। वह उस समय सोलहों शृङ्गार कर के कुवेरपुत्र नलकूवर की सेवा करने जा रही थी। रावण ने उसे रास्ते ही में पकड़ लिया और उसके साथ खोटा काम करना चाहा—तब तो रम्भा ने कहा:—

रम्भा—अरे यह क्या करना है? मैं तो तेरी बहू (पुत्रवधू) होती हूँ। तुझको मेरे साथ खोटा काम न करना चाहिये।

रावण—अप्सरा किसी की स्त्री नहीं होतीं।

यह कह रावण ने उसके साथ खोटा काम कर, उसे छोड़ दिया। वह डरती हुई नलकूवर के पास गयी। उसकी ऐसी दशा देख नलकूवर ने उससे सारा हाल पूछा। रम्भा ने आदि से अन्त तक ज्यों का त्यों सारा हाल कह सुनाया। उसे सुन नलकूवर ने क्रोध में भर रावण को शाप दिया और कहा—"आज से यदि रावण पर-स्त्री के साथ बलपूर्वक भोग करेगा तो उसके सिर के सात टुकड़े हो जाँयगे। यह सुन वे सब स्त्रियाँ, जिन्हें रावण हर ले गया था प्रसन्न हुईं और देवों ने भी नगाड़े बजा कर फूलों की वर्षा की।

अगले दिन सबेरा होते ही रावण ने सेना सहित कैलास से कूँच किया और वह स्वर्ग में पहुँचा। उसको वहाँ आया जान देवता इन्द्र के पास गये। इन्द्र ने आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, और मरुद्गण को रावण के साथ युद्ध करने की आज्ञा दी और वे स्वयं भगवान् विष्णु के पास गये। उन्होंने कहा तुम निर्भय होकर लड़ो।

प्रातः काल दोनों ओर की सेनाओं ने लड़ने के लिये रणक्षेत्र में पयान किया। दोनों ओर के वीर लड़ने के लिये एक दूसरे के सामने जा डटे। रावण का नाना सुमाली, मारीच, प्रहस्त, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन, निकुम्भ, शुक, सारण, संह्राद, धूम्रकेतु, महादंष्ट्र, घटोदर, जम्बुमाली, महाह्रादी, विरूपाक्ष, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, दुर्मुख, दूषण, खर, त्रिशिरा, करवीराक्ष, सूर्यशत्रु, महाकाय, अतिकाय, देवान्तक और नरान्तक को लेकर युद्ध के लिये देवसेना में घुसा और देवताओं को मार कर भगा दिया। अष्टमवसु (जो सावित्र के नाम से प्रसिद्ध हैं।) त्वष्टा तथा पूषा—यह देख राक्षसों के साथ युद्ध करने लगे। सावित्र ने सुमाली को मार गिराया। सुमाली के मारे जाते ही राक्षसों के पैर उखड़े और वे लगे भागने। तब मेघनाद ने देवताओं के साथ युद्ध किया। इन्द्र ने अपने बेटे जयन्त को उसके साथ लड़ने के लिये भेजा। दोनों में घोर युद्ध हुआ। इतने में शची का पिता पुलोमा नामक दैत्य अपने दौहित्र जयन्त को लेकर समुद्र में जा घुसा। जयन्त को न देख देवता भाग चले। तब इन्द्र स्वयं रणक्षेत्र में उपस्थित हुए। वे रथ में सवार थे और उनके रथ के आगे गन्धर्व बाजे बजाते और अप्सराएँ नाचती थीं, रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनीकुमार और मरुद्गण अपने अपने आयुधों को लिये हुए, इन्द्र को घेरे हुए थे। इन्द्र को आते देख, रावण भी आगे बढ़ा। राक्षस और दैत्य उसके साथ थे। रावण ने मेघनाद को न लड़ने दिया। वह रणक्षेत्र से बाहिर चला गया। कुम्भकर्ण और रुद्रों की लड़ाई होने लगी। रुद्रों ने कुम्भकर्ण को भली भाँति विदीर्ण कर डाला। मरुद्गण ने राक्षसी सेना को मार गिराया। यह देख इन्द्र रावण के निकट गया। दोनों में युद्ध आरम्भ हुआ। जब रावण ने देखा कि राक्षसों की सेना मारी गयी; तब उसने अपने सारथी से कहा:—

रावण—हम नन्दन वन में हैं। तू सामने स्थित देव सेना में होकर मेरे रथ को उदय पर्वत तक, जो उस छोर पर है ले चल।

यह सुन सारथी उस ओर चला, किन्तु जब उसका रथ देवसेना के बीच से होकर निकलने लगा; तब इन्द्र ने देवताओं से कहा:—

इन्द्र—इसे वर का बल है। सो यह मारा तो नहीं जा सकेगा; अतएव इसे जीता ही पकड़ लो।

यह कह देवसेना सहित इन्द्र ने आगे बढ़ कर रावण को घेर लिया। यह देख राक्षस और दैत्यों ने हाहाकार मचाया। उसे सुन मेघनाद उस सेना में घुसा और माया से अदृश्य हो देवसेना पर अस्त्र शस्त्रों की वर्षा करने लगा। तब इन्द्र ने रथ छोड़ दिया और ऐरावत गज पर चढ़ मेघनाद को ढूँढ़ने लगे। किन्तु उसको वे न पा सके। तब मेघनाद ने उन्हें थका कर, उनकी मुश्कें बाँध लीं और उन्हें अपने शिविर में लेगया। स्वयं मेघनाद अदृश्य हो रहा है इन्द्र को बँधा देख अन्य देवता रावण को घेर कर मारने लगे। रावण आदित्य और वसुओं की चपेट में पड़ ऐसा ध्वस्त हुआ कि उसको अक्लोवक्ली भूल गयी। इतने में मेघनाद ने प्रकट हो रावण के पास जाकर कहा—मैंने इन्द्र को बाँध लिया, अब आप युद्ध से विरत हों।

यह सुन रावण इन्द्र को लेकर लङ्का में गया और देवता अपने अपने घर चले गये। जब यह संवाद ब्रह्मा ने सुना; तब वे इन्द्र को छुड़ाने के लिये लङ्का में गये और रावण को समझाते हुए उससे कहा—

ब्रह्मा—हे रावण! तूने तीनों लोकों को अपने वश में किया। तेरा पुत्र आज से इन्द्रजीत के नाम से प्रसिद्ध होगा। अब तू इन्द्र को छोड़ दे और इसके बदले में जो वर चाहे सो माँग ले।

मेघनाद—आप मुझे अमर कर दें।

ब्रह्मा—इस पृथ्वी पर कोई अमर नहीं हो सकता।

मेघनाद—अच्छा, तब यह वह मुझे आप दें कि जब मैं विजय के लिये चलूँ और अग्नि की पूजा करूँ तब अग्निदेव मुझे रथ दें। जब तक मैं उस रथ पर रहूँ तब तक मैं अमर रहूँ। मुझे कोई मार न सके। यदि उस हवन को पूरा किये बिना मैं जाऊँ तो मारा जाऊँ।

ब्रह्मा—ऐसा ही हो।

यह वर पा इन्द्र छोड़ दिये गये। उन्हें ले देवता स्वर्ग को गये।

जब ब्रह्मा ने कह सुन कर इन्द्र को छुड़वा दिया, तब इन्द्र बहुत उदास और चिन्तित हुए। यह देख ब्रह्मा ने इन्द्र से कहा :—

ब्रह्मा—तुम इतने उदास और चिन्तित क्यों होते हो। ज़रा अपने पाप को तो स्मरण करो। मैंने पहले जब प्रजा की सृष्टि की तब उसमें कुछ भी विशेषता न रखी। क्योंकि वे सब एक वर्ण के थे और उन सब की एक ही सी बोली थी। फिर कुछ सोच विचार कर मैंने एक उत्तम स्त्री बनाई। उसका नाम अहल्या अर्थात् सर्वाङ्ग सुन्दरी रखा और उसे धरोहर की तरह गौतम को सौंप दी, उन्होंने बहुत दिनों तक उसे रखा और फिर मुझे लौटा दी। पर मैंने उनका सन्तोष और मन की स्थिरता देख वह उन्हींको दे डाली। इससे सब देवता निराश हो गये। पर तुमने मुनि का वेष धारण किया और उसके साथ अनुचित कर्म कर डाला। मुनि को तुम्हारी करतूत जान पड़ी तब उन्होंने तुम्हें शाप दिया कि युद्ध में तुम पराजित होगे। ऐसा ही आचरण मनुष्य भी करेंगे। पर जो ऐसा करेंगे उनको तुम्हारे इस कुकृत्य का आधा पाप बटाना पड़ेगा। फिर गौतम ने अहल्या से कहा तू यहाँ से चली जा। तेरे समान और भी स्त्रियाँ होंगी। यह सुन अहल्या ने हाथ जोड़ कर मुनि से कहा—महाराज! मैं निर्दोष हूँ। क्योंकि आपका रूप धर इन्द्र ने मुझे धोखा दिया।" तब मुनि ने कहा—"अच्छा तू राम का दर्शन कर निष्पाप होगी।" यह कह मुनि तप करने वन में गये।

हे इन्द्र! उसी शाप से तुम्हारी यह दशा हुई। अब तुम वैष्णव यज्ञ कर और पाप रहित हो स्वर्ग को जाओ। तुम्हारा पुत्र मारा नहीं गया; किन्तु उसका नाना पुलोमा दैत्य उसे ले गया है।

यह सुन इन्द्र ने वैष्णव यज्ञ किया। यज्ञ के अनन्तर वे पाप रहित हो स्वर्ग को गये।

अगस्त्य जी के मुख से इस वृत्तान्त को सुन विभीषण को अतीतकाल की सारी घटनाएँ

स्मरण हो आयीं। रामलक्ष्मण तथा वहाँ उपस्थित वानर रीछ तथा अन्य लोग—सब विस्मित हुए। अगस्त्यजी ने कहा—"हे राम! वह मेघनाद सचमुच बड़ा प्रतापी था।"

अगस्त्य मुनि का वचन सुन, रामचन्द्र ने कहा :—

रामचन्द्र—हे मुनिसत्तम! क्या उस समय ऐसा कोई राजा न था जो रावण को पराजित करता?

इस प्रश्न के उत्तर में अगस्त्य जी ने कहा—हाँ था, सुनिये, मैं कहता हूँ।

लोगों को पीड़ा पहुँचाता हुआ और इधर उधर घूमता फिरता रावण अर्जुन की राजधानी माहिष्मती नगरी में पहुँचा। इस नगरी में राजा की सहायता के लिये अग्निदेव सदा उपस्थित रहते थे। जिस दिन रावण माहिष्मती में पहुँचा, उस दिन अर्जुन अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा करने नर्मदा पर गया था। रावण ने जाकर द्वारपाल से कहा कि अर्जुन से जाकर कहो कि लड़ने के लिये रावण द्वार पर खड़ा है।" द्वारपाल ने कहा—राजा तो यहाँ नहीं है। नर्मदा स्नान के लिये गये हुए हैं। यह सुन रावण विन्ध्य पर्वत की शोभा निहारता हुआ नर्मदा के तट पर पहुँचा। वहाँ पहुँच उसने अपने मंत्रियों से कहा तुम लोग स्नान कर पूजन के लिये फूल ले आओ। मंत्रियों ने तदनुसार स्नान कर फूल लाकर रख दिये। रावण नर्मदा में स्नान कर शिव का पूजन करने लगा। जिस स्थान पर रावण पूजा करने बैठा उस स्थान से दो कोस नदी के चढ़ाव की ओर अर्जुन स्त्रियों को लिये जलक्रीड़ा कर रहा था। क्रीड़ावश उसने अपनी सहस्र भुजाओं को फैला कर, नर्मदा के जल की धार को रोका। फिर कुछ देर बाद उसे छोड़ा। रुके हुए पानी के वेग से रावण की पूजा पत्री सब बह गयी।

इस पर रावण बहुत झल्लाया और अपने अनुचर शुक और सारण से बोला "देखो तो इसका क्या कारण है?" वे दोनों भाई पश्चिम में नदी के चढ़ाव की ओर गये और सहस्रार्जुन को क्रीड़ा करते देखा। यह हाल लौट कर उन दोनों ने रावण से कहा। रावण तो युद्ध करना ही चाहता था—सो वह उसी ओर चला। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच उसने सहस्रार्जुन के मंत्रियों द्वारा राजा को सूचना दी कि रावण युद्ध के लिये खड़ा है। इस पर मंत्रियों ने कहा कि तुम बड़ा अच्छा समय विचार कर युद्ध करने आये हो। इस समय हम तुम्हारे आने की सूचना महाराज को नहीं दे सकते या तो कल तक ठहरो या हमसे लड़ो।

यह सुन रावण के मंत्रियों से न सहा गया और वे अर्जुन के मंत्रियों से भिड़ गये। बड़ा विकट युद्ध हुआ। रावण के मंत्रियों की मार से विकल हो अर्जुन के पक्ष वाले अपने राजा के पास गये और सब वृत्तान्त कह सुनाया। सारा वृत्तान्त सुन अर्जुन लोगों को धीरज बँधा और जल से निकला फिर सूखे कपड़े पहन और स्त्रियों को जल से बाहिर निकाल तथा हाथ में गदा ले वह रावण पर झपटा। उसको आते देख प्रहस्त ने अर्जुन पर मूसल चलाया।

राजा उस मूसल को बचा गया पर उलट कर उसने उसके गदा मारी। गदा के लगते ही वह लोट पोट हो गया। उस एक ही की ऐसी दुर्दशा देख, रावण के अन्य साथी मारीच आदि भाग गये। तब रावण सामने आया। दोनों में लड़ाई होने लगी। अर्जुन ने रावण की छाती में गदा मारी। गदा की चोट से रावण मरा तो नहीं, पर धनुष भर पीछे हट गया और चोट की पीड़ा से रोने और चिल्लाने लगा। अर्जुन ने उसे पकड़ कर बाँध लिया।

इतने में प्रहस्त सचेत हुआ और रावण को बँधा देख, अपने साथी राक्षसों को ले अर्जुन पर झपटा। राजा ने उन सब को मार भगाया और रावण को ले अपनी राजधानी में चला गया। रावण के बाँधे जाने का संवाद सुन, पुलस्त्य मुनि अर्जुन के पास गए। उनकी सहस्रार्जुन ने पूजा

की। मुनि ने कुशल पूँछ रावण को छोड़ देने का अनुरोध किया। राजा ने रावण को छोड़ दिया और अग्नि को साक्षी कर उससे मित्रता की। फिर उसका सत्कार कर उसे विदा किया। फिर वह मुनि को प्रणाम कर, अपने नगर को चला। मुनि ब्रह्मलोक को गये और रावण लज्जित हो लङ्का में गया।

वहाँ से छुटकारा पा निर्लज्ज रावण फिर युद्ध के लिये घूमने लगा। घूमता फिरता वह किष्किन्धा में पहुँचा। वहाँ उसने वालि के साथ युद्ध करना चाहा। तारा के पिता तार ने कहा:—

तार—रावण! वालि यहाँ है नहीं, वह दक्षिण समुद्र के तट पर सन्ध्या करने गया। तुम कुछ काल उसकी प्रतीक्षा करो। वह आता ही होगा। जब वह आवे तब तुम उसके साथ लड़ना, पर याद रखो उसके साथ लड़ कर तुम्हें अपने जीवन से हाथ धोने पड़ेंगे।

तार की बातों को सुन, रावण ने उसे झिड़का और स्वयं दक्षिण समुद्र की ओर गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि वालि सन्ध्या कर रहा है। तब उसने रथ तो छोड़ दिया और पैदल धीरे धीरे वालि की ओर इस अभिप्राय से बढ़ा कि उसे पकड़ ले। वालि उसका दुष्ट अभिप्राय समझ गया। वह भी सतर्क हो उसके पकड़ने के लिये उद्यत हो बैठा। रावण जब निकट आ गया तब झपट कर वालि ने उसे पकड़ लिया और उसे कांख में दबाकर वह आकाश की ओर उड़ा। वालि को जाते देख, रावण के मंत्री अपने मालिक को छुड़ाने के लिये दौड़े। पर वालि उसी प्रकार रावण को काँख में दबाये पश्चिम, उत्तर और पूर्व समुद्रों के तटों पर बैठ और सन्ध्या कर अपनी राजधानी को लौट गया। वहाँ जा रावण को काँख से निकाल वालि ने उससे पूँछा "तू कौन है।" इसके उत्तर में रावण ने कहा:—

रावण—मैं लङ्का का राजा रावण हूँ। मैं तुमसे लड़ने आया था पर तुम धन्य हो। तुम्हारा जैसा बली मुझे दूसरा नहीं मिला। मैं अब तुम्हारे साथ मैत्री करना चाहता हूँ। दोनों ने अग्नि को साक्षी कर मैत्री कर ली। तदनन्तर वालि रावण को अपने नगर के भीतर लिवा ले गया। रावण वहाँ एक मास तक रहा। पीछे उसके मंत्री उसे वहाँ से लिवा ले गये।

यह वृत्तान्त सुन रामचन्द्र ने अगस्त्य जी से कहा।

श्रीरामचन्द्र—मुनिसत्तम! रावण और वालि दोनों से हनुमान बुद्धि और बल में बढ़ कर हैं। इनकी सहायता से मैंने रावण को मार सीता पायी है। जब सुग्रीव वालि के डर से भागे भागे फिरते थे, तब इन्होंने सुग्रीव की सहायता क्यों न की?

इसके उत्तर में अगस्त्य मुनि ने कहा—सुनिये, इसका कारण मैं बतलाता हूँ।

हनुमान के पिता का नाम केसरी है। वे सुमेरु पर्वत पर राज्य करते थे। उनकी स्त्री अञ्जना से वायु ने हनुमान को उत्पन्न किया। एक दिन अञ्जना वन में फल लेने गयी। हनुमान भूख के मारे रोने लगे। इतने में सूर्य्य देव उदय होते देख पड़े। हनुमान ने उनको फल समझा और उन्हें खाने के लिये वे उड़े। उनको सूर्य्य के पास जाते देख वायुदेव शीतलता पहुँचाते उनके पीछे पीछे हो लिये। बालक समझ सूर्य्य ने भी उनके ऊपर क्रोध न किया उस दिन सूर्य्यग्रहण था। हनुमान को देख, राहु बहुत डरा और जाकर इन्द्र से बोला—"आपने पर्व के दिन सूर्य्य और चन्द्रमा को मेरी क्षुधानिवृत्ति के लिये दिया था। किन्तु आज उनको कोई दूसरा निगल रहा है।"

यह सुन घबड़ाये हुए इन्द्र ऐरावत पर सवार हो उस ओर चले। उनके आगे आगे राहु चला जाता था। उसको देख हनुमान जी ने सूर्य्य की ओर जाना तो छोड़ दिया पर राहु की ओर वे लपके। तब तो राहु मारे डर के दौड़ा दौड़ा इन्द्र की शरण में गया। इन्द्र बोले—"डरो मत, हम इसे मारते हैं।"

तब हनुमान ऐरावत को देख उसे पकड़ने को लौटे। इतने में इन्द्र ने वज्र से उनको मारा। उनकी बाईं ओर की ठुड्डी टूट गयी और वे उसी पर्वत पर गिरे। उनको गोद में उठा वायु देवता बैठ गये। वायु के रुकते ही चारों ओर हाहाकार मच गया। देवता यह फरियाद ले ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ब्रह्मलोक छोड़ देवताओं को साथ ले वायु के पास गये। उनको आते देख, वायुदेव खड़े हो गये और उनके पैरों पर गिर पड़े।

ब्रह्मा ने उनको उठा लिया और हनुमान के ऊपर हाथ फेरा। हाथ फेरते ही हनुमान जी सचेत होग ये। तब ब्रह्मा ने देवताओं से कहा :—

ब्रह्मा—यह बालक तुम्हारा बड़ा काम करेगा। अतएव तुम सब इसको वर दो।

यह सुन इन्द्र ने हनुमान के गले में कमल की माला पहनायी और कहा :—

इन्द्र—मेरे वज्र से इसकी ठोढ़ी टेढ़ी हो गयी है। अतएव इसका नाम हनुमान हुआ। मैं इसे अपने वज्र से अभय करता हूँ।

सूर्य—मैं अपने तेज की शीतांश कला इसे देता हूँ और यह जब पढ़ने योग्य होगा; तब इसे पढ़ाऊँगा।

वरुण—मेरे पाश और जल से दस लाख वर्ष में भी इसकी मृत्यु न होगी।

यम—मेरे दण्ड से इसको मौत न होगी और न इसे कोई रोग होगा।

कुवेर—युद्ध में इसे कभी विषाद न होगा और मेरी गदा भी इसे किसी प्रकार का दुःख न पहुँचा सकेगी।

शिव—मेरे त्रिशूल और पाशुपतास्त्र से यह निर्भय रहेगा।

विश्वकर्मा—मेरे बनाये दिव्यास्त्र से यह अवध्य होगा और इसकी बहुत बड़ी उम्र होगी।

ब्रह्मा—यह दीर्घायु, महात्मा और सब ब्रह्मदण्डों से अवध्य होगा। (वायु से) तुम्हारा यह पुत्र अमित्रों को भय और मित्रों को अभय देने वाला होगा। यह अजेय, कामरूपी, कामचारी, कामगामी, अव्याहत गति वाला और वानरों में श्रेष्ठ और कीर्तिशाली होगा। यह युद्ध में रावण के नाश के लिये राम को प्रसन्न करने वाले कामों को करेगा।

इस प्रकार अनेक वर और आशीर्वाद देकर, ब्रह्मा देवताओं सहित ब्रह्मलोक को चले गये। वायु ने अपने पुत्र को अञ्जना को सौंप अपना मार्ग लिया। तब हनुमान वरों को पाकर, और वेग पूर्ण हो, ऋषियों की सामग्रियों को जिनको कि वे यज्ञादि के अर्थ एकत्र करते थे, बिगाड़ने लगे। वायु और केसरी ने मना भी किया, पर वे न माने। तब हार कर भृगु और अङ्गिरा के वंश वाले ऋषियों ने क्रोध कर शाप दिया—हे वानर! जिस बल के भरोसे तू हम लोगों को सताता है, उसे तू भूल जायगा और बहुत दिनों बाद तुझे उसकी याद आवेगी। सो भी तब, जब कोई तुझे याद दिलावेगा और तेरी कीर्ति को कहेगा। इसी शाप के कारण हनुमान के बल और तेज जाते रहे और वे सामान्य वानर की तरह वहाँ रहने लगे और बखेड़ा करना छोड़ दिया।

हनुमान और सुग्रीव में परस्पर मैत्री लड़कपन ही से थी। बालि और सुग्रीव के पिता का नाम ऋक्षराज था। वह वानरों का राजा था। उसके मरने के अनन्तर बालि को राजगद्दी मिली और सुग्रीव युवराज बनाये गये। जब दोनों में परस्पर अनबन हुई तो बालि ने सुग्रीव को खदेड़ते खदेड़ते निकाल कर दिया। पर बल की याद दिलाने वाले के अभाव से हनुमान अपने मित्र की कुछ भी सहायता न कर सके। किन्तु यथार्थ बात यह है कि जैसा पराक्रम, उत्साह, मति, प्रताप, सुशीलता, माधुर्य, नीति और अनीति का ज्ञान और गम्भीरता हनुमान में है, वैसा इस लोक में तो क्या और किसी भी जीवधारी में नहीं है। इन्होंने सारी विद्याएँ विधिपूर्वक सूर्य से अध्ययन की हैं। अतएव विद्या एवं बुद्धि में यह

देवगुरु बृहस्पति के समान हैं। आपके कार्य्य के लिये इन्हींके समान, सुग्रीव, मयन्द, द्विविद, नील, तार, तारेय, नल और रम्भ नामक वानरों को और गज, गवाक्ष, गवय, सुदंष्ट्र, कहन्द, ज्योतिर्मुख तथा अन्य अनेक प्रकार के भालुओं को देवताओं ने सृष्टि की है।

अगस्त्य के मुख से ऐसी बातें सुन राम लक्ष्मण सहित उपस्थित सारी श्रोता मण्डली को बड़ा आश्चर्य हुआ।

इतने में सन्ध्या हुई। ऋषिगण अपने अपने आश्रमों को गये। रामचन्द्र राजसभा विसर्जन कर, और सायंक्रिया सम्पन्न कर, रात्रि होने पर सोये। फिर सवेरा होने पर और आवश्यक कृत्यों से निश्चिन्त हो सभा भवन में पधारे। ऋषि लोग भी वहाँ फिर उपस्थित हुए। आज श्रीराम ने अगस्त्य जी से ऋक्षराज का वृत्तान्त सुनाने की प्रार्थना की।

अगस्त्य जी ने कहना आरम्भ किया। वे कहने लगे। एक दिन नारद मुनि मेरे यहाँ पधारे थे। उसी दिन मैंने यह वृत्तान्त उनसे पूँछा था। मेरे पूँछने पर उन्होंने जो कुछ मुझसे कहा था, वही मैं आपको सुनाता हूँ।

नारद जी ने कहा था, सुमेरु पर्वत के शिखर पर सौ योजन लम्बी ब्रह्मा की सभा का भवन बना है। उस भवन में एक दिन ब्रह्मा विराजमान थे। अचानक उनके नेत्र से जल बहा। उसे उन्होंने हाथ से पोंछ कर फेंक दिया। उस जल से एक वानर उत्पन्न हुआ। उसे देख ब्रह्मा ने उसे आज्ञा दी कि तुम इस पर्वत के फल फूल खाया करो और यहीं मेरे पास रहा करो। वह तदनुसार ही करने लगा। एक दिन उसे प्यास लगी। उसे बुझाने के लिये वह मेरु की उत्तर ओर की चोटी पर एक सरोवर को देख, उसके तट पर गया और जल में अपनी परछाहीं देख, और उसे अपना शत्रु समझ मारे क्रोध के वह उस में कूद पड़ा; किन्तु जल के भीतर जब उसे कोई न मिला; तब वह बाहिर निकल आया। पर सरोवर के बाहिर आते ही उसके शरीर का रूप रङ्ग और आकार स्त्री जैसा हो गया। इसी समय वहाँ पर, ब्रह्मा से मिल, इन्द्र लौट कर पहुँचे। उसी समय उधर से सूर्य्य भी निकले। उस सुन्दरी को देख, दोनों देवता अर्थात् इन्द्र और सूर्य्य, उस पर मोहित हो गये। दोनों ही का वीर्य्य, निकल पड़ा। इन्द्र का तो उस सुन्दरी के बालों पर गिरा और सूर्य्य का उसकी गर्दन पर। फल इसका यह हुआ कि दोनों स्थानों से दो पुत्र उत्पन्न हुए। इन्द्र के पुत्र का नाम वालि और सूर्य्य के पुत्र का नाम सुग्रीव पड़ा। वालि बड़ा था। इन्द्र अपने पुत्र को सुवर्णमयी एक माला दे कर स्वर्ग को सिधारे। वह माला अक्षय्य एवं अनेक गुणों से युक्त थी। सूर्य्य ने अपने पुत्र के साथ हनुमान को कर दिया। प्रातःकाल होते ही वह नारी पुनः पुरुष हो गयी। तब वे ऋक्षराज उन दोनों पुत्रों को साथ ले ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने दूत से कहा कि वालि को ले जा कर किष्किन्धा का राजा बनाओ। दूत ने वैसा ही किया। अगस्त्य जी बोले—"महाराज! इस प्रकार आप को विदित हुआ होगा कि वालि और सुग्रीव को माता एक ही थी।

ऋक्षराज की कथा कह चुकने पर, अगस्त्य जी अपने आप कहने लगे—"महाराज! सुनिये अब मैं आपके सामने उस कारण को निरूपण करता हूँ, जिससे रावण ने सीता को हरा।"

एक दिन रावण ने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार से पूँछा :—

रावण—महाराज! सब से बड़ा कौन है?

सनत्कुमार—ईश्वर।

रावण—उनके हाथ से यदि कोई मारा जाय तो उसकी क्या गति होती है?

सनत्कुमार—उसकी मुक्ति होती है।

रावण—ईश्वर का स्वरूप कैसा है? ईश्वर है, यह मैं कैसे जानूँ?

सनत्कुमार—त्रेता में वह ईश्वर, महाराज दशरथ के पुत्र होंगे और सीता उनकी सहधर्मिणी

होगा। सीता महाराज जनक के घर में जन्म ग्रहण करेगी।

यह कह सनत्कुमार तो चले गये और मुक्ति पाने की लालसा से, रावण उसी दिन से आपके साथ विरोध करने लगा।

अगस्त्य जी बोले—इस कथा के लिये नारद जी महाराज उत्तरदाता हैं।

सनत्कुमार के चले जाने पर रावण युद्धकरने के लिये फिर पृथिवी पर घूमने लगा। वह जहाँ कहीं किसी बलवान् का नाम सुन पाता उसीको युद्ध के लिये ललकारता था। एक दिन मार्ग में उसे नारद जी मिले। रावण ने उनसे हाथ जोड़ कर पूँछा :—

रावण—देवर्षि! आप तो सदा घूमा ही करते हैं। कृपया यह तो बतलाइये कि कहाँ के लोग बहुत बली होते हैं; जिससे मैं जाकर उनसे युद्ध करूँ।

नारद—हे रावण! श्वेतद्वीप नामक समुद्र में एक द्वीप है वहाँ के निवासी तुम्हारे बल के समान हैं और वे तुम्हारा सामना कर सकते हैं।

रावण—महाराज! उस द्वीप के निवासी इतने बली क्यों कर हुए?

नारद—रावण! जो ईश्वर के भक्त होते हैं अथवा जो उनके हाथ से मारे जाते हैं, वे ही उस लोक में बसने पाते हैं।

नारदजी के मुख से उस द्वीप की यह महिमा सुन रावण ने उसी समय अपने मन में यह सङ्कल्प कर लिया कि मैं ईश्वर से लड़ूँगा।

इसी अपने सङ्कल्पानुसार, नारद के जाने पर, रावण अपनी राक्षसी सेना ले कर, श्वेतद्वीप की ओर चला। नारद जी भी बड़े कौतूहलप्रिय थे। सो इस युद्ध को देखने के लिये राक्षसी सेना के पीछे वे भी हो लिये।

रावण जब उस द्वीप के निकट पहुँचा; तब पवन के वेग के मारे उसके विमान की गति में बाधा पड़ी और वह आगे न बढ़ सका। पवन का वेग वहाँ इतना प्रबल था कि रावण के मन्त्रियों की चौकड़ी भूल गयी। वे कहने लगे—"हम से तो यहाँ ठहरा ही नहीं जाता, युद्ध करना कैसा?" तब रावण ने विमान सहित उनको वहीं छोड़ा और आप अकेला ही उस द्वीप में गया। उस द्वीपमें बहुत सी नारियाँ थीं, एक ने रावण का हाथ पकड़ कर उससे पूँछा :—

एक नारी—अरे तू कौन है? और यहाँ क्यों आया है?

रावण—(क्रोध में भर कर) मैं विश्रवा का बेटा हूँ और मेरा नाम है रावण। मैं यहाँ के निवासियों से लड़ने के लिये आया हूँ। पर यहाँ तो मेरी टक्कर का कोई दिखलाई भी नहीं पड़ता।

रावण की बातें सुन सब स्त्रियाँ हँसने लगीं और कौतुकवश एक एक करके सब ने उसका हाथ पकड़ा उनको ऐसा ठट्ठा करते देख रावण खीज उठा और उसने एक स्त्री के हाथ में काट खाया, जिससे उसने रावण का हाथ छोड़ दिया। इतने में एक दूसरी स्त्री उसे कढ़ोरती आकाश में गयी। रावण ने उसे नोचा, तब उसने झटका दे रावण को फेंक दिया। रावण समुद्र में जा कर धड़ाम से गिरा। तब तो उसके मन में ऐसा डर और लज्जा पैठी कि उसने वहाँ वालों से लड़ने का विचार छोड़, अपने घर का रास्ता पकड़ा।

रावण की दशा देख, नारद जी से न रहा गया और वे मारे प्रसन्नता के हँसने और नाचने लगे।

अगस्त्य जी बोले :—

अगस्त्य—हे राम! रावण सीता को माता के समान रखता था। आप साक्षात् ईश्वर और सीता जी लक्ष्मी हैं। यह वृत्तान्त मैंने नारद जी से सुना है।

इसके अनन्तर अगस्त्य जी ने राम से विदा माँगी और वे अपने आश्रम को सिधारे।

अगस्त्य आदि महर्षियों के सिधारने पर श्री-राम ने जनक जी से कहा :—

श्रीरामचन्द्र—महाराज! अब आप अपने नगर को पधारिये। भरत आपके साथ जायँगे।

इस प्रकार जनक को विदा कर राम ने भरत के नाना युधाजित् को भी विदा किया। उन्हें पहुँचाने लक्ष्मण जी भेजे गये। तदनन्तर वे तीन सौ राजा, जो सीता का हरण सुन, भरत द्वारा बुलाये गये थे, विदा किये गये। वे लोग मन ही मन पछताते और यह कहते—"हाय हम रावण से न लड़ पाये"—अपने अपने घर गये।

तदनन्तर श्रीराम ने वानरों और राक्षसों को वस्त्र और गहने दिये। राम ने हनुमान और अङ्गद को अपनी गोद में बिठा कर, अपने हाथ से बिजायट तथा अन्य आभूषण पहनाये। फिर उन्होंने सुग्रीव से कहा :—

श्री रामचन्द्र—हे वानरराज! अङ्गद अब तुम्हारा पुत्र स्थानीय है और हनुमान तुम्हारे मन्त्री हैं। इन दोनों ने हमारा बड़ा भारी काम किया है। अतएव इनके ऊपर तुम्हारी सदा कृपा-दृष्टि बनी रहनी चाहिये।

इसके बाद श्रीरामचन्द्र ने नल, नील, केसरी, कुमुद, गन्धमादन, सुषेण, पनस, मयन्द, द्विविद, जाम्बवान्, गवाक्ष, विनत, धूम्र, वलीमुख, प्रजङ्घ, सन्नाद, दरीमुख, दधिमुख, इन्द्रजानु आदि यूथपतियों की ओर देखा और कृतज्ञता प्रकाश करते हुए उनसे कहा—"आप लोगों की सहायता से, मैं एक बड़े दुःख सागर के पार हुआ।" यह कह श्रीराम ने प्रत्येक यूथपति को आभूषण दिये और उनको छाती से लगाया।

अयोध्या में आये राक्षस और वानरों को जब दो मास हो चुके तब श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव और विभीषण को अपनी अपनी राजधानियों को भेज दिया। पर हनुमान ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की और राम से यह वर माँगा—"महाराज! जब तक आपकी कथा इस भूलोक में प्रचलित रहे, तब तक मैं जीता रहूँ।" राम ने कहा—"बहुत अच्छा ऐसा ही होगा।" जब तक इस संसार में मेरी कथा रहेगी; तब तक तुम जीवित रहोगे और जब तक इस संसार में एक भी मनुष्य रहेगा; तब तक मेरी कथा यहाँ रहेगी।"

यह कह राम ने अपने गले से उतार एक हार हनुमान को पहना दिया। राक्षस, वानर और भालु अयोध्या से चले तो गये, पर राम का वियोग उनको बहुत व्यापा। वानर भालुओं के चले जाने पर पुष्पक विमान आया। उसने हाथ जोड़ कर कहा :—

पुष्पक—महाराज! कुबेर ने प्रसन्न हो कर मुझे आपकी सेवा में भेजा है। उन्होंने मुझसे कहा है रामचन्द्र ने तुमको जीता है अतएव तुम उन्हींके पास रहो। मैं कुबेर की इस आज्ञा से बहुत प्रसन्न हूँ अतः आप मुझे ग्रहण कीजिये।

श्रीराम ने उसके कहने को अङ्गीकार कर, उसका पूजन किया और उससे कहा :—

श्रीरामचन्द्र—मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। अब तुम्हारी जहाँ जाने की इच्छा हो वहाँ चले जाओ। मैं जब तुम्हारा स्मरण करूँ, तब तुम आ जाना।

यह सुन और "बहुत अच्छा" कह पुष्पक वहाँ से चला गया।

अब रामचन्द्र बड़े न्यायपूर्वक राज्य करने लगे। एक दिन रामचन्द्र ने सीता के शरीर में गर्भवती स्त्री के लक्षण देख, उनसे पूँछा—

श्रीरामचन्द्र—तुम्हारी क्या इच्छा है। मुझे बतलाओ।

सीता—मैं गङ्गा तटवासी ऋषियों के दर्शन करना चाहती हूँ।

रामचन्द्र—बहुत अच्छा।

तदनन्तर वे अपनी सभा में गये। वहाँ विजय, मधुमत्त, काश्यप, मङ्गल, कुल, सुराजि, कालिय, भद्र, दन्तवक्र और सुमागध हास्यरस पूर्ण बात चीत करने लगे। बातों ही बातों में श्रीरामचन्द्र ने भद्र से पूँछा :—

श्रीरामचन्द्र—भद्र! निर्भय हो ठीक ठीक कहो, प्रजा का हमारे विषय में क्या मत है?

हाथ जोड़ कर, भद्र ने निवेदन किया :—

भद्र—महाराज! सब लोग कहते हैं रामचन्द्र ने समुद्र पर पुल बाँधा। रावण को ससैन्य और सकुल नष्ट किया। वानर, भालु और राक्षसों को अपने अधीन किया। ये सब काम श्रीमान् ने ऐसे किये, जिनका होना तो दूर रहे, किसी ने कानों कान कभी नहीं सुने थे। पर एक दो का यह कहना और है कि जिस सीता को रावण हर ले गया उसीको आपने ला कर अपने घर में पुनः रखा। श्रीमान् से यह काम नहीं बन पड़ा। आपके इस कार्य की निन्दा अवश्य होती है।

भद्र की बातें सुन इस विषय में श्रीराम ने अन्य उपस्थित लोगों से भी पूँछा। पर सब ने भद्र ही के कथन का समर्थन किया। तब श्रीराम ने उन सब को बुलाया। जब सब आ गये, तब श्रीराम ने लक्ष्मण को सम्बोधन कर कहा :—

श्रीरामचन्द्र—भाई लक्ष्मण! तुम हमारे साथ चौदह वर्ष तक निरन्तर वन में रहे हो। तुम सीता का सारा वृत्तान्त भली भाँति जानते हो। तुमको स्मरण होगा कि मैंने लङ्का में सीता को ग्रहण करना अस्वीकार किया था। पर जब सब देवताओं ने उसे निष्पाप ठहराया, तब मैंने उसे ग्रहण किया। इतनी सावधानी करने पर भी प्रजा के लोग इसके लिये हमारा नाम धरते हैं। अतएव इस कलङ्क को मिटाने का मैंने यह उपाय निश्चित किया है कि तुम सीता को ले जाओ और वाल्मीकि के आश्रम में उसे छोड़ आओ। तुमने कभी मेरा कहना नहीं टाला। सो इस बार भी आज्ञा के विरुद्ध तुम कुछ न कहो।

इस पर भी भाइयों ने श्रीराम को अनेक प्रकार से समझाया, पर उनकी बातों में से एक भी बात रामचन्द्र के गले के नीचे न उतरी। अन्त में झुँझला कर रामचन्द्र ने कहा :—

श्रीरामचन्द्र—यदि तुम लोग चाहते हो कि मैं निश्चिन्त हो कर कुछ दिनों जीवित रहूँ, तो मैंने जो निश्चय किया है उसमें अड़चनें न डालो। मैं जो कहता हूँ, उसे करो। क्या तुम नहीं जानते कि आकाश में उड़ते हुए बादलों की परछाहीं से निर्मल दर्पण में मलिनता दिखलाई पड़ने लगती है वैसे ही आज निर्मल रघुवंश में कलङ्क सा लगा दिखलाई पड़ता है। भाई! तेल की एक छोटी सी बून्द, कुछ न होने पर भी, जैसे पानी में पड़ने से क्षण भर में दूर तक फैल जाती है वैसे ही लोकापवाद भी चाहे सच्चा हो अथवा झूठा—धीरे धीरे बहुत दूर तक फैल जाता है। जैसे हाल का पकड़ा गया हाथी, खूँटे में बन्धना नहीं चाहता वैसे ही मैं भी इस लोकापवाद को नहीं रोक सकता। पिता की आज्ञा के लिये, जब मैंने ससागरा पृथिवी का राज्य तृणवत् परित्यक्त कर दिया तब इस लोकापवाद रूपी कलङ्क को धोने के लिये सीता का परित्याग मेरे लिये कौन सी बड़ी बात है। मैं सब कुछ सह सकता हूँ, पर लोकापवाद मैं नहीं सह सकता।

अतएव हे लक्ष्मण! तुम सीता को वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आओ और मेरी आज्ञा भङ्ग न करो।

रामचन्द्र जी की ये बातें सुन तीनों भाइयों ने समझ लिया कि बड़े भाई भौजाई को त्यागे बिना न मानेंगे। इसलिये तीनों भाई चुप हो गये। पर भीतर ही भीतर वे दुःख के मारे घुले जाते थे। फिर रामचन्द्र जी ने कहा :—

श्रीरामचन्द्र—लक्ष्मण! तुम्हारी भौजाई वन जाने की अभिलाषा प्रकट कर चुकी है। इस विषय में एक बार उसने कहा भी था। अतएव तुम कल सवेरे उसे रथ में बिठा कर, वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आओ।

लक्ष्मण दूसरे दिन प्रातःकाल सुमन्त से रथ जुतवा सीता को उस पर बिठा, वन की ओर चले। प्रथम टिकाव गोमती के तट पर हुआ। दूसरे दिन दो पहर के समय वे गङ्गा के तीर पर पहुंचे। सुमन्त को रथ सहित इस पार छोड़, सीता को साथ ले वे गङ्गा के उस पार गये। उस पार पहुँच कर लक्ष्मण ने अपनी भौजाई को श्रीराम की आज्ञा सुनाई। उसे सुनते ही कटे

वृक्ष की तरह सीता मूर्च्छित हो गिर गयीं। जब उनकी मूर्च्छा भङ्ग हुई, तब रामचन्द्र की तिलभर भी निन्दा न कर वे अपने भाग्य ही को कोसने लगीं। वे बोलीं —

सीता—लक्ष्मण! जान पड़ता है विधाता ने मुझे आजन्म दुःख भोगने के लिये ही बनाया है। नहीं जानती पूर्व जन्म में मैंने कौन सा ऐसा पाप किया है अथवा किसी का वियोग कराया है, जिसके फल से आज मुझे महाराज ने त्यागा है। उस बार वन में मेरे साथ महाराज स्वयं थे। मुझे किसी बात की चिन्ता न थी, पर अब मैं इस अकेले वन में क्योंकर रहूँगी और तो और ऋषि और ऋषिवधू जब मुझसे वन आने का कारण पूछेंगी; तब मैं उनको क्या उत्तर दूँगी। लक्ष्मण, तुम बहुत दिन सुख से जीओ। मैं तुम पर तनक भी अप्रसन्न नहीं हूँ क्योंकि इसमें तुम्हारा अपराध ही क्या है? तुम तो बड़े भाई की आज्ञा के वशवर्त्ती हो। मैं अपने भाग्य दोष से न जाने कब तक के लिये श्रीरामचन्द्र जी के अनुग्रह से वञ्चित हुई। जो कुछ होने वाला था सो हुआ सब सासों से मेरा प्रणाम कहना। मैं गर्भवती हूँ—यह बात उनको मालूम है। बड़े भाई से मेरी ओर से यह कह देना कि लङ्का जीतने के बाद मेरी निष्कलङ्कता की वे परीक्षा कर चुके हैं, तब निष्कारण मेरा परित्याग वे कैसे कर रहे हैं?

लक्ष्मण हृदय पर पत्थर रख बड़े भाई की आज्ञा का पालन कर रहे थे। चलते समय वे सीता से यह बोले—

वाल्मीकि का आश्रम समीप है। वे हमारे पिता के मित्र हैं, सो अब तुम इन्हीं मुनियों की सेवा करना और इन्हींके कहने में रहना।

यह कह और भौजाई की प्रदक्षिणा कर लक्ष्मण गङ्गा के उस पार आ गये।

सीता वहीं रोती और विलाप कर रही थीं। उनको विलाप करते देख मुनिबालकों ने जा कर यह हाल वाल्मीकि से कहा। मुनिवर्य्य सीता के समीप पहुँचे। सीता ने उनको देख, उनको प्रणाम किया। तब मुनिवर्य्य ने सीता से कहा—

वाल्मीकि—बेटी! तप के प्रभाव से मैंने सब हाल जान लिया है। कुछ चिन्ता नहीं। उठ और तू मेरे साथ आश्रम में चल कर रह। तू निष्कलङ्क है। यह बात मैं भली भांति जानता हूँ।

सीता हाथ जोड़े उनके पीछे पीछे हो ली, कुछ देर बाद सीता को लिये वाल्मीकि जी अपने आश्रम में पहुँचे। वहां ऋषिपत्नियों ने सीता का प्रणाम ग्रहण कर कहा—कहो हम लोग तुम्हारा क्या काम करें। इतने में महर्षि वाल्मीकि ने कहा :—

महर्षि—यह सीता, श्रीरामचन्द्र की पत्नी और दशरथ की बहू है। जनकराज इसके पिता है। यह अपापा होने पर भी पति द्वारा त्यागी गयी है। अतएव यह सर्वथा हम लोगों द्वारा पालने योग्य है। इसके साथ तुम बड़े स्नेह से बर्ताव करना।

उस पार से लक्ष्मण ने जब देख लिया कि महर्षि सीता को अपने आश्रम में ले गये, तब लक्ष्मण के धैर्य्य का बांध टूट गया उनको सन्तापित देख सुमंत्र ने उनसे कहा :—

सुमंत्र—रामचन्द्र के भाग्य में दुःख ही दुःख बदा है। सीता ही को क्यों, थोड़े दिनों में वे तुम सब को छोड़ देंगे। यह भविष्यद्वाणी ब्राह्मणों ने कह रखी है। दुर्वासा ने भी राजा से, मेरे और वशिष्ठ जी के सामने ऐसा ही कहा था। पर महाराज ने किसी से यह कहने का हमसे निषेध कर दिया है। इसलिये मैंने यह बात किसी से नहीं कही। अतः आप भी भरत एवं शत्रुघ्न से न कहना।

यह सुन लक्ष्मण ने सुमन्त से कहा तुम्हारी यह गोल मोल बात मेरी समझ में नहीं आयी। अतः तुम विस्तार पूर्वक मुझसे सारा हाल कहो। तब सुमन्त ने कहा—पूर्वकाल में अत्रि के पुत्र ऋषि दुर्वासा वर्षा काल में वशिष्ठ जी के आश्रम में आकर ठहरे। एक दिन महाराज भी ऋषि के

दर्शन करने को गये। बात चीत होते होते, महाराज ने अपने वंश के विषय का प्रश्न उनसे कि[illegible]य के उत्तर में दुर्वासा कहने लगे—हे[illegible]कु[illegible]ग्राम में जब दैत्य लोग पराजित हुए तब [illegible] भृगुपत्नी की शरण में गये। भृगुपत्नी ने उनको अभय प्रदान किया, तो विष्णु ने उनका सिर काट डाला। यह बात भृगु को बहुत बुरी लगी। उन्होंने विष्णु को शाप दिया कि तुम मनुष्य होगे और स्त्री वियोग तुमको सहना पड़ेगा। वे ही विष्णु आपके पुत्र हुए हैं। वे अवश्य शाप का फल भोगेंगे। ग्यारह सहस्र वर्ष वे राज्य करेंगे। अनेक राजवंशों को स्थापित करेंगे और तब अपने धाम को सिधारेंगे। सीता के दो पुत्र होंगे। वे अयोध्या में राज्य न करेंगे। सो आप राम और सीता के विषय में सन्तप्त और चिन्तित न हों। यह वृत्तान्त सुन लक्ष्मण स्वस्थ हुए। फिर रात को केशिनी नगर में टिक कर, अगले दिन दोपहर के समय वे अयोध्या पहुँचे वहाँ जाकर श्रीरामचन्द्र से सीता का संदेसा कहा और बोले—"आपने सीता को त्याग दिया पर अब आप उनके लिये शोक सन्तप्त न हों नहीं तो अब आपकी बहुत बड़ी बदनामी होगी।"

भाई की युक्तियुक्त बात सुन रामचन्द्र ने शोक छोड़ दिया और राजकाज में मन लगाया। अनन्तर राम ने लक्ष्मण से कहा—"चार दिन से मैंने राजकाज कुछ भी नहीं किया, अतः जो न्यायप्रार्थी हों उनको मेरे पास लाओ। क्योंकि जो राजा राजकाज नहीं करता वह नरक में गिरता है। लोग कहते हैं कि प्राचीन काल में सत्यवादी, ब्राह्मण भक्त और महायशस्वी राजा नृग थे। उन्होंने पुष्कर क्षेत्र में एक करोड़ गौ दान की थीं। उनमें एक गौ एक अग्निहोत्री, दरिद्र और उञ्छजीवी ब्राह्मण को दी। वह गौ अन्य गौओं की हेड़ में पड़ कहीं अन्यत्र चली गयी। उस ब्राह्मण ने ढूँढ़ते ढूँढ़ते कई वर्षों बाद उसे हरिद्वार के समीप कनखल देश में एक ब्राह्मण के घर में पाया। उस गौ का नाम था शबला। सो उसने शबला कह कर उसे पुकारा। वह अपने पहले मालिक का शब्द पहचान उसके पीछे पीछे चली। तब कनखल वाले ब्राह्मण ने कहा—"वह तो मेरी है। मैंने उसे राजा नृग से पाया है। दोनों ब्राह्मणों में झगड़ा हुआ। वे दोनों उसे लिये हुए राजा नृग के पास गये और कई दिन तक वहाँ पड़े रहे। पर राजा से भेंट न हुई। तब दोनों ने राजा को शाप दिया कि जब तू कार्यार्थी लोगों को राजा हो कर दर्शन नहीं देता, तब तू गिरगिट होकर हजारों वर्ष गढ़े में पड़ा रह। यह कह वे दोनों उस गाय को, एक ब्राह्मण को दे अपने अपने घरों को चले गये। यह हाल नृग से, नारद और पर्वत ने जाकर कहा।

राजा ने अपने मंत्री, पुरोहित और महाजन को बुला कर, कहा—वसु नामक कुमार को राज्य दो और ब्राह्मण का शाप भुगतने के लिये एक गढ़ा तैयार करो। स्थान बन जाने पर, राजा ने लड़के को राज्य और शिक्षा देकर स्वयं उस गर्त में वास किया।

श्रीरामचन्द्र ने कहा—हे लक्ष्मण, इक्ष्वाकु के बारहवें पुत्र राजा निमि थे। उन्होंने गौतम मुनि के आश्रम के निकट, वैजयन्त नामक एक नगर बसाया। तदनन्तर दीर्घसत्र खोलने की इच्छा से अपने पिता इक्ष्वाकु से आज्ञा ली। फिर उन्होंने पहले तो वशिष्ठ को वरण किया और फिर अत्रि, अङ्गिरा और भृगु को। पर वशिष्ठ ने कहा—इन्द्र मुझे पहले वरण कर चुके हैं। जब तक मैं उनका यज्ञ पूरा करवा कर न लौट आऊँ, तब तक तुम ठहरना। यह कह वे इन्द्रलोक को गये। इधर उतावले राजा ने गौतम द्वारा यज्ञ करना आरम्भ किया।

इन्द्र का यज्ञ पूरा करा वशिष्ठ जब लौटे तब उन्होंने अपनी जगह गौतम को देख, वे बहुत क्रुद्ध हुए। पर उस समय राजा वहाँ न थे। इस लिये वे चुपचाप रहे। तिस पर भी जब राजा न आये तब उन्होंने उन्हें शाप दिया कि तूने मेरी राह न देख, दूसरे को वरण किया, इसलिये तू चेतनहीन हो जायगा।

इतने में राजा सो कर उठे और शाप को सुन बड़े कुपित हुए और बोले—"तुमने मुझ सोते हुए अनजान को शाप दिया है इसलिये तुम भी विदेह हो जाओगे।" वे दोनों शापवश वायु रूप होगये। वशिष्ठ ने अपने पिता ब्रह्मा के पास जा कर अपना दुःख कह सुनाया। तब ब्रह्मा ने कहा—तुम मित्रावरुण के वीर्य्य में प्रवेश करो। तुम अयोनि ही उत्पन्न होगे, किन्तु देहधारी हो जाओगे।

वशिष्ठ जी वरुण के घर गये। उसी समय मित्र देवता ने भी क्षीर सागर के साथ देवेश्वरों से श्लाघा पा कर वरुण धर्म का सम्पादन किया। इतने में सखियों सहित उर्वशी अप्सरा वहाँ पहुँची। उसको क्रीड़ा करते देख वरुण उस पर मोहित हुए और उसके साथ उन्होंने भोग करना चाहा। पर उसने कहा—"महाराज! मेरा वाग्दान मित्र देवता के साथ हो चुका है।" यह सुन वरुण ने अपना वीर्य्य घड़े में डाल दिया। उर्वसी मित्र देवता के पास गयी। उन्हों ने क्रोध कर शाप दिया, कि मुझको त्याग कर तू ने दूसरा पति किया, तू मृत्युलोक में जा कर, बुध के पुत्र राजर्षि काशिराज पुरुरवा की स्त्री होगी।

तब वह प्रतिष्ठानपुर में पुरुरवा के पास गई। उसका बेटा आयु और आयु का नहुष हुआ। उसने उस समय लाख वर्ष तक इन्द्र का काम किया था, जब इन्द्र को वृत्रासुर को मारने के कारण ब्रह्महत्या लगी थी। उस घड़े से दो ब्राह्मण निकले। पहले तो अगस्त्य जी निकले। निकलते ही पहली बात उन्होंने यह कही कि मैं तेरा पुत्र नहीं हूँ और यह कह कर वे चले गये। यह वही तेज था जो उर्वसी के लिये स्थापित किया गया था। किन्तु जो वरुण सम्बन्धी था उससे वशिष्ठ की उत्पत्ति हुई और वे वरुण के पुत्र कहलाये। जिस समय वे घर से निकले उसी समय इक्ष्वाकु ने उन्हें अपना पुरोहित बना लिया।

तदनन्तर ऋषि निमि को विदेह देख कर, उसी देह से उनकी इच्छा पूरी करवाने लगे और उसकी रक्षा करने में प्रवृत्त हुए। यज्ञ समाप्त होने पर देवता लोग प्रसन्न हो बोले कि हे राजन्! हम लोग प्रसन्न हैं, वर मांगो। राजा ने कहा—हम सब प्राणियों के नेत्रों पर रहना चाहते हैं। देवों ने बहुत अच्छा कह कर अपने लोक का रास्ता पकड़ा।

उनके जाने पर ऋषियोंने पुत्रार्थ राजा की देह को मथना आरम्भ किया। अन्त में एक पुरुष पैदा किया। मथने से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम मिथि कहलाया। ऋषियों द्वारा जनन अर्थात् उत्पन्न किये जाने के कारण उसका दूसरा नाम जनक और मृतशरीर से उत्पन्न होने के कारण वह वैदेह नाम से पुकारा गया।

यह सुन लक्ष्मण ने पूँछा—"महाराज यह तो कहिये कि राजा ने मुनि को क्षमा क्यों न किया।" राम बोले—क्षमा करना हरेक का काम नहीं है, क्षमा तो केवल ययाति ने किया था। नहुष का बेटा ययाति था, उसके दो स्त्री थीं। पहले शुक्र की पुत्री देवयानी थी और दूसरी वृषपर्वा नामक दैत्य की पुत्री शर्मिष्ठा थी। यह राजा की बड़ी प्यारी थी। देवयानी का लड़का यदु और शर्मिष्ठा का पुरु हुआ। राजा पुरु को बहुत चाहते थे। क्योंकि वह बड़ी गुणवती स्त्री थी। यह यदु से न सहा गया। अतः उसने अपनी माता देवयानी से कहा। उसने शुक्र को बुला कर सारा हाल कहा। शुक्र ने क्रोध कर शाप दिया। तू ने मेरा अनादर किया है तू बूढ़ा हो जायगा। राजा को आकर अब बुढ़ापे ने घेर लिया तब राजा ने यदु से कहा—"बेटा! अपनी युवावस्था के साथ मेरी वृद्धावस्था बदल लो।" इस पर उसने कहा—"अपने प्यारे पुत्र पुरु से बदल लो।" तब राजा ने पुरु से कहा। पुरु ने बिना सङ्कोच राजा का कहा किया। राजा ने उसकी युवावस्था लेकर सुख भोगा और जब उनका मन भर गया, तब राजा ने उसको उसकी युवावस्था लौटा दी और राज्य भी उसीको दे डाला। साथ ही यदु को शाप दिया। तू प्रजा के विषय में निष्फल होगा। राक्षस और

यातुधानों को उत्पन्न करेगा। तू इस सोमवंश में न रह सकेगा और तेरे जैसा ही दुश्चरित्र होगा। ऐसा कह वे राजा स्वर्ग को गये और पुरु प्रतिष्ठानपुर में राज्य करने लगे। यदु से क्रौंच, वन, महादुर्ग, आदि सहस्त्रों यातुधान उत्पन्न हुए और वहाँ से निकाल दिये गये।

एक दिन सभा में बैठे हुए राम ने लक्ष्मण से कहा कि जाकर जो कोई कामार्थी हो उसे बुला-लाओ। लक्ष्मण ने बाहर जाकर देखा कि एक कुत्ता रोता हुआ खड़ा है। लक्ष्मण ने उससे पूँछा कि तुमको क्या दुःख है? इस पर उसने कहा, मैं अपना सारा दुःख राम के सामने कहूँगा। लक्ष्मण उसे राम के सामने लिवा ले गये। वहाँ जाकर उस कुत्ते ने कहा :—

कुत्ता—राजन्! देवमन्दिर, राजमन्दिर और ब्राह्मणमन्दिर में अग्नि, इन्द्र, सूर्य और वायु रहते हैं, अतएव बिना राम की आज्ञा मैं राम-मन्दिर में जाने का साहस नहीं करता। क्योंकि मैं अधम और नीच हूँ।

लक्ष्मण—चलो, महाराज बुलाते हैं।

तब वह कुत्ता श्रीरामचन्द्र जी के सामने जा कर खड़ा हुआ, रामचन्द्र जी द्वारा उसके आने का कारण पूँछे जाने पर, वह फिर कहने लगा :—

कुत्ता—राजन्! ब्राह्मणशाला के रहने वाले सर्वार्थ सिद्धि नामक एक भिखारी ने मुझे निर-पराध मारा है।

यह सुन श्रीराम ने उक्त भिक्षुक को बुलाकर पूँछा।

राम—तुमने इस कुत्ते को बिना अपराध क्यों मारा?

भिक्षुक—महाराज! मैं भिक्षा के लिये जा रहा था। भिक्षा पाने का समय व्यतीत हो चुका था। यह रास्ते में बैठा था। मैंने इससे कहा हट जा। उठ कर गली के नुक्कड़ पर जा खड़ा हुआ। मैं भूखा था, अतएव क्रोध में आ, मैंने इसे मार दिया। अब इस अपराध के लिये जो दण्ड आप समुचित समझें मुझे दें।

उस सभा में भृगु, अङ्गिरा, कुत्स आदि बड़े बड़े ऋषि, भगवान् वशिष्ठ, कश्यप, आदि प्रधान धर्मवेत्ता, तथा मंत्रिगण, बड़े बड़े सेठ साहूकार और अनेक पण्डित बैठे थे। उन सब ने पूँछने पर यही कहा—"ब्राह्मण अवध्य है।" इतने में कुत्ता बोला :—

कुत्ता—महाराज! मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कीजिये कि इस ब्राह्मण को कालञ्जर देश का कुलपति अर्थात् महन्त बना दीजिये।

महाराज ने उसे वहाँ का महन्त बना दिया। ब्राह्मण इसका भेद तो समझा नहीं, उलटा इससे बहुत प्रसन्न हुआ। इस पर मंत्रियों ने पूँछा—

मंत्रि—महाराज! इसे तो दण्ड के बदले पारितोषिक मिला।

रामचन्द्र—सुनो इसका रहस्य कुत्ता ही खोलेगा।

कुत्ता—महाराज! पूर्वजन्म में मैं भी वहीं का महन्त था और अपने धर्म्म में तत्पर रहता था। तिस पर भी मुझे कुत्ते की योनि में जन्म लेना पड़ा है। मनुष्य भले ही बड़ी बड़ी विप-त्तियों में फँस जाय पर महन्ती न करे। देवता, गौ और ब्राह्मण के धन का अधिष्ठाता, सपुत्र, सबांधव और पशु सहित नरक में जाता है। विप्रधन, देवधन, स्त्रीधन, और बालधन, और अपने दिये हुए धन को जो हरण करता है वह नष्ट होता है।

किसी देश में एक गीध, और एक उलूक रहता था। गीध एक दिन उलू के घर गया और बोला यह घर मेरा है। इस पर दोनों में बड़ा झगड़ा हुआ। अपना झगड़ा निपटवाने के लिये वे राम के पास गये और दोनों ने कहा—"घर हमारा है।" राम ने धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, राष्ट्र वर्द्धन, अशोक, धर्मपाल और सुमन्त नामक आठों मंत्रियों को बुला कर, उन दोनों से पुँछ-वाया कि "यह घर तुम्हारा कितने दिनों का है।" उत्तर में गीध ने कहा :—

गीध—सृष्टि की आदि में जब यह पृथिवी चारों ओर मनुष्यों से भर गयी थी, तब से मैं इस घर में रहता हूँ।

उल्लू—जब यह पृथिवी वृक्षों से हरी भरी हुई, तब से मैं इस घर का मालिक हूँ।

राम—(मंत्रियों से) तो यह घर अब किसका है?

मंत्रिगण—इन दोनों का कथन सुनने से तो घर उल्लू ही का जान पड़ता है।

राम—मेरी भी समझ में यही आता है। अतः इस अन्यायी गीध को दण्ड देना चाहिये।

इतने में आकाशवाणी हुई :—

आकाशवाणी—इसे न मारिये। यह शापवश पहले ही मर चुका है। यह उस जन्म में ब्रह्मदत्त नामक राजा था। कालगौतम नामक ऋषि ने सौ वर्ष तक भोजन माँगा। राजा ने स्वीकार कर भोजन बनवाया पर उसमें माँस भी था। माँस देख मुनि ने राजा को शाप दिया कि तू गिद्ध होगा। इस पर राजा ने अनुनय विनय कर उस शाप से उद्धार चाहा। तब मुनि ने कहा—जब रामचन्द्र तुझको स्पर्श करेंगे तब तू पाप से छूटेगा।

यह सुन राम ने गीध को स्पर्श किया। वह शाप से छूट गया।

एक दिन सुमन्त्र ने सभा में बैठे श्रीरामचन्द्र जी से आकर कहा कि—"यमुनातीरवासी ब्राह्मण जिनकी संख्या सौ से अधिक है, भार्गव और च्यवन को आगे कर, द्वार पर खड़े हैं और आपके दर्शन करना चाहते हैं।" राम ने तुरन्त उन सब को बुला लिया। उन लोगों ने राम को फल मूलों की भेंट दी। राम ने उनकी यथाविधि पूजा कर उनको आसन दिये और उनसे उनके आगमन का कारण पूँछा और कहा।

श्रीरामचन्द्र—मैं आपसे यह सत्य कहता हूँ कि मेरा यह सम्पूर्ण राज्य और सारा जीवन ब्राह्मणों ही के लिये है।

यह सुन ऋषियों ने साधु साधु कहा और वे बहुत प्रसन्न हुए। तदनन्तर भार्गव मुनि बोले :—

भार्गव मुनि—सत्ययुग में लोला नामी दैत्य-पत्नी का जेठा पुत्र मधु नामक दैत्य बड़ा धर्मात्मा था। वह बुद्धिमान, ब्राह्मण्य और शरणागतवत्सल था। देवताओं के साथ उसकी प्रीति थी। भगवान् रुद्र ने अपने शूल में से एक दूसरा शूल उत्पन्न कर उसको दिया था और कहा—जब तक तुम देवों और विप्रों से वैर न करोगे; तब तक यह तुम्हारे पास रहेगा। तुमसे जो युद्ध करना चाहेगा, उसको यह शूल भस्म कर, फिर तुम्हारे पास चला आवेगा।"

यह सुन मधु ने महादेव जी की बहुत सी स्तुति कर चाहा कि उक्त वरदान उसके वंश के लिये रहे, किन्तु शिव जी ने कहा कि यह नहीं हो सकता। हाँ तुम्हारे वंश में एक तुम्हारे पुत्र के लिये यह शूल रहेगा। जब तक यह उसके हाथ में रहेगा, तब तक वह सब प्राणियों से अवध्य रहेगा।

इस प्रकार मधु ने अद्भुत वर पाकर एक बहुत सुन्दर अपना भवन बनवाया। उसकी कुम्भीनसी भार्य्या के गर्भ से लवण का जन्म हुआ। यह लवण लड़कपन ही से महाबली और दुराचारी था। मधु अपने दुर्विनीत पुत्र को देख, दुःखी हो उससे कुछ न बोला। बल्कि इस लोक को छोड़ वह समुद्र में घुस गया; पर जाने के पहले अपने पुत्र को शूल देकर उसका सारा रहस्य उसे बतलाया गया।

हे रामचन्द्र! अब लवण अपने दुराचार से तीनों लोकों को विशेषतः तपस्वियों को सता रहा है।

हे राम! भय पीड़ित ऋषियों ने अभय के लिये पहिले बहुत से नरेशों को जाकर घेरा; पर किसी को रक्षक न पाया। हे तात! हम सकुटुम्ब रावण को आपके द्वारा मरा सुन, आपके पास आये हैं। पृथिवी पर तुम्हें छोड़ अन्य किसी राजा को अपना रक्षक नहीं पा सकते।

यह कह कर ही उन यमुना-तीरवासी तपस्वियों को सन्तोष न हुआ, अपनी दुःख भरी

कहानी को उन लोगों ने फिर कहा और बोले :—

सब तपस्वी—महाराज! उसका आहार तो प्राणिमात्र—विशेष कर तपस्वी जन हैं। उसका आचार बड़ा भयङ्कर है और वह नित्य मधुवन में रहता है।

रामचन्द्र जी ने उन तपस्वियों के मुख से लवण के उपद्रवों का वृत्तान्त सुन उसे मारने की प्रतिज्ञा की और भाइयों से पूँछा—"यह काम किसके बाँट पड़ेगा? लवण के मारने का बीड़ा कौन उठावेगा?"

भरत जी ने कहा :—

अहमेनं वधिष्यामि मर्मांश से विधीयताम्।

अर्थात् इसको मैं मारूँगा, इसे आप मेरे ही हिस्से में डाल दीजिये। किन्तु ज्येष्ठ भ्राता के अनुरक्त और लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न ने विनय पूर्वक कहा :—

शत्रुघ्न—आर्य भ्रातृवियोग में बहुत दुःख उठा चुके हैं। इस अधीन के रहते, फिर आप कष्ट न उठावें।

शत्रुघ्न को युद्धयात्रा के लिये तत्पर देख, राम ने कहा—"मैं मधु के नगर का तुमको राजा बनाऊँगा। तुम वहाँ जा कर यमुना के तीर, नगर और सुन्दर देशों को बसाओ।"

रामचन्द्र की आज्ञा से शत्रुघ्न का अभिषेक हुआ और राम ने उन्हें एक दिव्य शर तथा समयोचित उपदेश दिया।

शत्रुघ्न सेना को मधुपुरी भेज कर, आप एक मास तक अयोध्या में रहे। तदनन्तर अकेले चले। मार्ग में दो रात बिता कर, तीसरे दिन वे वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचे और वहाँ रहे।

जिस रात शत्रुघ्न पर्णशाला में पहुँचे, उसी रात में सीता जी के दो पुत्र उत्पन्न हुए। प्रातःकाल शत्रुघ्न पश्चिमाभिमुख चल निकले और सप्तरात्रि मार्ग में रह कर, यमुना के तीर पहुँच, मुनियों के आश्रम में रहे।

तदनन्तर प्रभात काल में वह लवण राक्षस आहार के लिये अपने नगर से बाहिर निकला। इतने में शत्रुघ्न ने यमुना के पार हो और हाथ में धनुष ले, मधुपुर के तोरण द्वार पर अधिकार कर लिया।

दोपहर होने पर वह क्रूरकर्मा राक्षस बहुत से पशुओं को मार और सिर पर बोझ रखे आ पहुँचा। वहाँ शत्रुघ्न को देख, वह उनसे बोला:—

लवण—तुम मुहूर्त्त भर ठहरो। मैं अपना शस्त्र ले कर अभी आता हूँ।

शत्रुघ्न—जो शत्रु को अवकाश देते हैं, वे मन्द बुद्धि हैं।

तब लवण क्रोध में भर शत्रुघ्न से लड़ने लगा और अन्त में शत्रुघ्न जी के बाण से मारा गया। उसी समय लवण का शूल शिव जी के पास चला गया।

लवण के मारे जाने पर इन्द्रादिक देवता आये और उन्होंने शत्रुघ्न को आशीर्वाद दिया कि तुम रम्य मधुपुरी के बसाने में सफल काम हो। शत्रुघ्न अपनी उस सेना को, जिसे वे दूर छोड़ आये थे, वहाँ ले आये और उन्होंने श्रावण मास में उस पुरी के बसाने का काम आरम्भ किया। बारहवें वर्ष में अच्छे प्रकार यमुना के तट पर अर्द्धचन्द्राकार पुरी बस गयी। किसी बात का वहाँ किसी को खटका न था। सब खेत शस्ययुक्त थे और समय पर इन्द्र वर्षा करते थे। शत्रुघ्न की भुजाओं से सुरक्षित इस पुरी में सब नीरोगी और वीर पुरुष थे। बड़े बड़े भुवन, दूकानें, गली और चौकों से यह नगरी सुशोभित थी। चारों वर्ण के लोग इसमें थे और अनेक प्रकार का वाणिज्य होता था। जिस भवन को लवण ने श्वेत रङ्ग से रङ्गा था, उसको शत्रुघ्न ने अनेक रङ्गों से रङ्गवा दिया।

यह तो क्रमागत कथा लवण वध की हुई। अब हम शत्रुघ्न की युद्धयात्रा के बीच का छूटा हुआ वृत्तान्त संक्षेप से यहाँ लिखते हैं।

कहा जा चुका है कि अयोध्या से चल तीसरे दिन शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचे

थे। महर्षि ने आपका राजोचित सत्कार कर उन्हें वहीं ठहराया। उस आश्रम के निकट पूर्व की ओर एक यज्ञसूचक स्तम्भ देख उन्होंने पूँछा:—

शत्रुघ्न—महाराज! वहाँ पर किसने यज्ञ किया था?

वाल्मीकि—हे शत्रुघ्न। तुम्हारे पूर्वपुरुषों में सौदास नाम के एक राजा हो गये हैं। उनकी स्त्री का नाम मदयन्ती था और पुत्र का वीर्यसह। राजा ने आखेट खेलते खेलते वन में दो राक्षसों को देखा। वे दोनों व्याघ्र का रूप धर मृगों को खाया करते थे। राजा उनकी खोज में थे। अन्त में उन्होंने उनमें से एक को मार डाला। तब तो उसके साथी ने कहा—'हे राजन्! तुमने बिना अपराध मेरे सखा को मारा है। अतएव इसका बदला मैं आपसे कभी न कभी अवश्य लूँगा।' यह कह वह अन्तर्धान होगया।

कुछ दिनों के बाद राजा ने वीर्यसह को राज्य दे दिया और इसी स्थान पर अश्वमेध करना आरम्भ किया। भगवान् वशिष्ठ उसके रक्षक थे। जब यज्ञ समाप्त होने को हुआ, तब उसी राक्षस ने वशिष्ठ का रूप धारण कर राजा से माँस माँगा। राजा ने माँस राँधने को रसोइयों को आज्ञा दी। तब उसी राक्षस ने रसोइये का रूप धर, मनुष्य का माँस राँध कर राजा से कहा—भोजन तैयार है। राजा ने मुनि को स्त्री सहित भोजन के लिये बुलाया। खाते समय मुनि को जान पड़ा कि रसोई में तो मनुष्य का माँस बनाया गया है। तब तो वशिष्ठ जी ने क्रोध में भर राजा को शाप दिया कि तू इसी माँस का खाने वाला राक्षस हो। राजा ने भी मुनि को शाप देने के लिये जल उठाया, पर रानी ने रोका। तब राजा ने उस जल को अपने पैरों पर गिराया, जिससे वे काले हो गये। इसीसे उस राजा का नाम, कल्माषपाद पड़ा। तदनन्तर राजा और रानी ने मुनि से क्षमा माँगी, उस कर्म को राक्षस का कर्म जान कर वशिष्ठ जी ने कहा—मैंने जो कहा है वह मिथ्या नहीं हो सकता, पर हाँ इस शाप से तुम बारह वर्ष बाद छूट जाओगे। हे शत्रुघ्न यह यज्ञ-स्थान उसी राजा का है।

वाल्मीकि के आश्रम से विदा हो सात दिन बाद शत्रुघ्न यमुना के तट पर पहुँचे और रात को च्यवन मुनि के आश्रम में रह कर, उनसे लवण का वृत्तान्त पूँछा।

च्यवन ने कहा:—

च्यवन—पूर्वकाल में युवनाश्व का पुत्र मान्धाता हुआ। उसने सम्पूर्ण पृथिवी को जीत कर स्वर्ग जीतने का विचार किया। तब देवताओं ने उसे स्वर्ग का आधा राज्य दे डाला। जब राजा स्वर्ग में गये, तब इन्द्र ने कहा कि पहले आप पृथिवी के सब राजाओं को अपने वश में कर लो तब स्वर्ग में राज्य करना। राजा ने कहा पृथिवी पर ऐसा कौन है जो मेरी अधीनता को न माने। इन्द्र ने कहा—लवण ही को ले लो। वह कब आपके वश में है? यह सुन राजा स्वर्ग से लौटे और उसके पास पहले दूत भेजा। लवण ने उन्हें यह उत्तर दिया कि उसने उनके दूत ही को खा डाला। तब तो राजा ने मारे बाणों के उसे मम्महति कर डाला। लवण ने शिव के त्रिशूल से ससैन्य राजा को भस्म कर दिया।

शत्रुघ्न बारह वर्ष तक यमुना के तीर पर शूरसेन नामक नगरी को बसा कर, अयोध्या में रामचन्द्र से मिलने को गये। सात आठ पड़ाव के बाद वे फिर वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचे।

वाल्मीकि ने लवण के वध की चर्चा चलाते हुए, उनकी बड़ाई की और उनका सत्कार कर, रात भर उन्हें अपने आश्रम में टिकाया। वहाँ शत्रुघ्न ने रामचन्द्र के पुत्रों के मुख से सारा राम चरित सुना। फिर प्रातःकाल वहाँ से विदा होकर श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन के लिये वे अयोध्या पहुँचे। अयोध्या में सात दिन रह कर, शत्रुघ्न फिर मधुपुरी को लौट गये।

एक दिन एक विलक्षण घटना हुई। रामचन्द्र जी की ड्योढ़ी पर एक ब्राह्मण अपने पुत्र की मृत

देह को लेकर आ बैठा और विलाप कर करके कहने लगा—"मैंने पूर्वजन्म में ऐसा कौन सा पाप किया है जिसके फल से मुझे आज अपने मरे हुए पुत्र का मुख देखना पड़ता है। मुझे स्मरण नहीं कि मैंने कभी कोई हिंसा की है। अथवा कभी झूठ बोला है न इसकी जननी ही ने कोई ऐसा पाप किया है, जिसके फल से यह मेरा पुत्र, मेरा मृतकर्म करने के पहले ही यमालय को चला जाय। ऐसी घटना तो मैंने न कभी सुनी थी और न कभी देखी। इसमें संशय नहीं कि रामचन्द्र ने कोई बड़ा भारी पाप किया है, जिससे उनकी प्रजा को दुःख भोगना पड़ रहा है। अतः मैं अब अपनी स्त्री सहित, रामचन्द्र की ड्योढ़ी पर अपने प्राण दे दूँगा। हे राम! तुम ब्रह्महत्या का बोझ सिर पर रख कर सुखी हो। राजा के पापी हुए बिना प्रजा कभी क्लेश नहीं पाती। राजा के असद्वृत्ति अवलम्बन करने पर प्रजा मरती है। अथवा जिन राजकर्मचारियों को नगर अथवा देहात की रक्षा का भार सौंपा जाता है, यदि वे प्रमादवश अपने कर्त्तव्य का पालन न करें, तोभी प्रजा को मृत्यु का भय उपस्थित होता है। इस प्रकार वह ब्राह्मण अनेक प्रकार से विलाप कर राम को उलटी सीधी बातें सुनाने लगा। रामचन्द्र को बड़ी चिन्ता हुई और इस घटना का तथ्य निर्णय कराने के लिये उन्होंने विद्वान् और अनुभवी ब्राह्मणों को बुलाया। भगवान् वशिष्ठ के साथ आठ ब्राह्मण गये। मार्कण्डेय, मौद्गल, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम और नारद भी उपस्थित हुए।

जब सब लोग अपनी अपनी जगह बैठ गये तब रामचन्द्र ने ब्राह्मणकुमार के मरने का कारण पूँछा। उपस्थित मण्डली में से सर्वत्र विचरने वाले नारद जी ने चातुर्वर्ण्य का युग के अनुसार संक्षिप्त रूप से इतिहास वर्णन करते हुए कहा:—

नारद—कोई शूद्र अनधिकार तप कर रहा है। इसीसे इस ब्राह्मण का बालक अकाल में मरा है। आप उस शूद्र को खोज कर, उसे मारिये यह लड़का जीवित हो जायगा।

यह सुन श्रीराम ने लक्ष्मण को सम्बोधन कर कहा:—

लक्ष्मण इस ब्राह्मण-कुमार के मृत शरीर को सावधानता पूर्वक तेल और औषधियों में रखवा दो, जिससे यह बिगड़ने न पावे।

फिर श्रीरामचन्द्र ने पुष्पक विमान को स्मरण किया। स्मरण करते ही वह झट आकाश में आ उपस्थित हुआ। तब श्रीरामचन्द्र ने राज्य का भार अपने भाइयों को सौंपा और स्वयं उस विमान में बैठ वे उस शूद्र तपस्वी को खोजने के लिये निकले। पहले वे पश्चिम दिशा में गये। वहाँ उन्हें कोई ऐसा शूद्र न मिला। उत्तर और पूर्व दिशाओं में भी उन्हें कोई ऐसा शूद्र न मिला तब वे दक्षिण दिशा में गये। वहाँ विन्ध्य पर्वत के शैल शृङ्ग पर, उन्हें एक मनुष्य देख पड़ा। उसके पैर ऊपर की ओर थे और सिर नीचे की ओर था। वह इस प्रकार घोर तप कर रहा था। श्रीरामचन्द्र द्वारा परिचय पूँछे जाने पर उसने कहा:—

शूद्र—मैं जाति का शूद्र हूँ और मेरा नाम शम्बूक है। मेरी इच्छा है कि मैं संदेह स्वर्ग जाऊँ। इसी उद्देश्य से मैं यह घोर तप कर रहा हूँ।

यह सुनते ही श्रीरामचन्द्र ने झट खड्ग निकाल उसका मूँड़ काट डाला।

यह देख देवताओं ने फूलों की वर्षा की और राम को वर देना चाहा। तब रामचन्द्र ने कहा—आप लोगों का बड़ा भारी वर यही है कि किसी प्रकार उस ब्राह्मण-कुमार को आप पुनर्जीवित कर दें। देवता बोले वह तो जीवित हो गया। चलिये हम लोग अगस्त्य मुनि के आश्रम में चलें। आगे आगे इन्द्र चलते थे। उनके पीछे सब देवता थे और देवताओं के पीछे श्रीरामचन्द्र जी थे। देवता तो अपनी अपनी पूजा पत्री पाकर अपने अपने लोक को गये, पर श्रीरामचन्द्र जी को अगस्त्य जी ने रात भर वहीं रखा। फिर विश्वकर्मा के बनाये हुए आभरण उनको देना चाहा। रामचन्द्र ने उसे ले तो लिया पर अगस्त्य

जी से यह पूँछा कि आपको यह आभूषण क्यों कर मिला ? इस प्रश्न के उत्तर में अगस्त्य जी कहने लगे :—

अगस्त्य—हे राम! एक वन था जिसकी लम्बाई सौ योजन की थी। उसमें मैं तप करने को गया। वहाँ एक तालाव था जो चार कोस में फैला हुआ था। उस तालाव के पास ही एक मन्दिर था पर उसमें कोई नहीं रहता था। मैं रात भर वहीं रहा। भोर होते ही मैं उस तालाव पर गया तो उसके तट पर एक मुरदा पड़ा देखा। इतने में एक विमान भी दीख पड़ा जिस पर एक मनुष्य बैठा हुआ था और उसके साथ बहुत सी अप्सराएँ थीं। वह मनुष्य विमान से उतरा और उस मुर्दे को खा गया। यह देख मैंने उससे इसका कारण पूँछा। उत्तर में उस स्वर्गीय पुरुष ने कहा :—

स्वर्गीय पुरुष—पूर्वकाल में विदर्भ देश का राजा सुदेव हुआ। उसके दो स्त्रियाँ थीं और दो स्त्रियों से दो ही पुत्र थे। पहला मैं हूं और मेरा नाम श्वेत है। दूसरा मुझसे छोटा था, उसका नाम सुरथ था। सुदेव के मरने पर मैं राजा हुआ। कुछ दिनों के बाद, सुरथ को राज्य देकर मैं इसी वन में तप करने आया और बहुत वर्ष पर्य्यन्त तप करके स्वर्ग गया। पर वहाँ क्षुधा मुझे सताने लगी। इसका कारण मैंने ब्रह्मा जी से पूँछा। उन्होंने कहा, तुमने दान नहीं किया केवल अपना ही पेट पाला है—इसीसे तुम्हें क्षुधा सताती है। अब तुम अपने शरीर ही को खाया करो। जब तुमसे अगस्त्य मुनि से भेंट होगी ; तब तुम तरोगे। आप अगस्त्य हैं मुझे तारिये और इस वस्त्र और आभूषण को लीजिये।

अगस्त्य—हे रामचन्द्र! मैंने उसे तारने के लिये वस्त्र और आभूषण ले लिये। उनके लेते ही वह मृतक शरीर नष्ट हो गया और उस स्वर्गीय पुरुष को तृप्ति हुई।

श्रीरामचन्द्र—महाराज ! विदर्भराज श्वेत जिस वन में तप करता था, वह निर्जन क्यों था ?

अगस्त्य—पृथिवी के प्रथम राजा मनु हुए। उनके पुत्र इक्ष्वाकु हुए। इन्हींको राज्य दे वे स्वर्ग सिधारे। इक्ष्वाकु के सौ पुत्र हुए। उनका सब से छोटा पुत्र बड़ा अभिमानी और मूर्ख निकला नाम भी उसका दण्ड था। उसके पिता ने उसे विंध्याचल और शैवल के बीच का देश सौंपा। वह वहाँ का राजा हुआ। उसने वहाँ मधुमन्तपुरी बसाई और भार्गव मुनि को पुरोहित बना कर, वह राज्य करने लगा। चैत्र मास में एक दिन दण्ड भार्गव मुनि के आश्रम में गया। वहाँ भार्गव की लड़की अरजा अकेली थी। दुष्ट दण्ड ने उसके साथ बल पूर्वक खोटा काम किया और लौट गया। यह सुन मुनि ने, जो अत्यन्त क्षुभित थे राजा को शाप दिया कि यह हरा भरा राज, सात दिन के भीतर धूल की वर्षा से नष्ट हो जायगा। इस शाप का संवाद सुन सब मुनि उस स्थान को छोड़ कर चल दिये। पर भार्गव के कहने से उनकी लड़की अरजा वहीं रही। मुनि का शाप पूरा हुआ और वह स्थान वन हो गया। इसीको जनस्थान अथवा दण्डक वन कहते हैं।

श्रीरामचन्द्र रात भर अगस्त्य के आश्रम में रह कर, सवेरा होते ही वहाँ से विदा हुए।

अयोध्या पहुँच कर श्रीराम ने भरत और लक्ष्मण को बुलाया और उनसे कहा कि मेरी इच्छा है कि मैं राजसूय यज्ञ करूँ। इस यज्ञ के प्रभाव से मित्र देवता ने वरुणत्व पाया था और सोम ने कीर्त्तिस्थान। इस पर भरत ने कहा :—

भरत—महाराज! सब राजा तो वैसे ही आपके अधीन हैं। फिर राजसूय यज्ञ करने से लाभ ही क्या होगा ? मेरी समझ में इससे परस्पर वैमनस्य बढ़ेगा और संसार का नाश होगा।

भरत के युक्तियुक्त वचन सुन महाराज रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। अनन्तर लक्ष्मण ने कहा :—

लक्ष्मण—महाराज की इच्छा यदि कोई यज्ञ ही करने की हो तो अश्वमेध यज्ञ किया जाय। इसके करने से इन्द्र ब्रह्महत्या से मुक्त हुए थे।

श्रीरामचन्द्र—भाई लक्ष्मण! मुझे विस्तार पूर्वक इन्द्र की ब्रह्महत्या के छूटने का वृत्तान्त सुनाओ।

लक्ष्मण—पूर्वकाल में वृत्रासुर नाम का एक असुर हुआ जो बड़ा धर्मज्ञ और बुद्धिमान था। वह तीन सौ योजन ऊँचा और एक सौ योजन चौड़ा था। वह धर्मपूर्वक प्रजा का पालन किया करता था। थोड़े दिनों बाद ही उसे वैराग्य हुआ और राजपाट अपने पुत्र मधुरेश्वर को दे, वह तप करने गया उसे तप करते देख इन्द्र इतने भयभीत हुए कि वे विष्णु के पास जा कर रोने लगे। विष्णु ने कहा—वह मेरा मित्र है मैं उसे नहीं मारूँगा। पर मैं अपने रूप को तीन भागों में बाँटूँगा। एक तो तुममें रहेगा, दूसरा तुम्हारे वज्र में और तीसरा भूमि में तब वह मारा जायगा। विष्णु के ऐसा करने पर, तप करते हुए वृत्र को इन्द्र ने मारा। इसकी हत्या इन्द्र को लगी। तब देवताओं के रोने पर विष्णु ने कहा कि जा कर इन्द्र से यज्ञ कराओ। अश्वमेध करने से उसकी हत्या छूट जायगी, जब इन्द्र ने यज्ञ किया तब ब्राह्महत्या तो छूट गयी, पर उसने रहने के लिये उनसे स्थान पूँछा। देवताओं ने उससे कहा तू चार भागों में बँट जा। तब से उसका एक भाग तो चार मास पूर्ण जल वाली नदियों में रहता है, दूसरा सदैव भूतल में, तीसरा तीन रात तक स्त्रियों में और चौथा उनमें जो निरपराध ब्राह्मण को मारते हैं।

यह सुन श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—पूर्वकाल में कर्दम नामक प्रजापति के पुत्र इल वाल्ही देश के राजा हुए। वे एक बार शिकार खेलते उस वन में गये जहाँ पर स्कन्द उत्पन्न हुए थे। वहाँ पर महादेव और पार्वती विहार कर रहे थे। महादेव ने पार्वती की प्रीति के लिये स्त्री रूप धारण किया था। अतएव वहाँ के सब पदार्थ स्त्री बन गये थे। राजा भी सेना सहित स्त्री रूपधारी हो गया। तब उसने पार्वती की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया और उनसे यह वर पाया कि वह एक महीने स्त्री रहेगा और एक महीने पुरुष। जब स्त्री होगा तब उसे पुरुषत्व का ज्ञान न रहेगा और जब पुरुष होगा तब स्त्रित्व का ज्ञान न रहेगा। इल राजा इला नाम्नी स्त्री हो वहीं घूमने लगे। अपनी सखियों के साथ इला एक दिन एक सरोवर पर पहुँची। वहाँ चन्द्रपुत्र बुध तप कर रहे थे। सखियों सहित इला को बुला बुध ने उनका वृत्तान्त पूँछा। फिर सारा वृत्तान्त सुन उन्होंने उनसे कहा कि तुम यहीं रहो। तुम किंपुरुषी कहलाओगी और किंपुरुष तुम्हारे पति होंगे वे सब वहीं बस गयीं। बुध ने इला के साथ भोग किया। जब एक महीना पूरा हुआ तब इला पुरुष हुई और सोते सोते जाग कर बुध से अपने सैनिकों का हाल पूँछा। मुनि बोले—तुम्हारी सेना के सैनिक तो मारे गये। इस वृत्तान्त को सुन राजा बहुत पछताया। तब मुनि ने कहा—तुम यहाँ एक वर्ष रहो तो मैं तुम्हारा भला करूँगा। राजा वहीं रहने लगा।

एक मास बाद वह फिर स्त्री हुआ। यों नौ मास बीतने पर उसने एक पुत्र जना, जिसका नाम पुरुरवा हुआ। उस पुत्र को उसने बुध को सौंप दिया। एक वर्ष पूरा होने पर बुध ने ऐवर्त, च्यवन, भार्गव, अरिष्टनेमी, प्रमोदन, मोदकर और दुर्वासा को बुलाकर, कहा कि आप लोग कोई ऐसा उपाय बतावें जिससे राजा का कल्याण हो। इतने में अनेक ब्राह्मणों सहित कर्दम प्रजापति वहाँ पहुँचे और पुलस्त्य, क्रतु, वषट्कार और औंकार आदि एकत्र हो विचार करने लगे। कर्दम ने कहा—यदि अश्वमेध किया जाय तो शिव प्रसन्न हो इसका कल्याण करेंगे। इस प्रस्ताव का सब ने अनुमोदन एवं समर्थन किया। संवर्त ऋषि के शिष्य राजर्षि मरुत ने यज्ञ का भार लिया। यज्ञ पूरा होने पर शिव ने प्रसन्न हो राजा को पुरुष कर दिया। इल राजा ने अपने पहले लड़के शशबिन्दु को बाल्ही देश का राजा बनाया और स्वयं वह मध्य देश में प्रतिष्ठानपुर प्रतिष्ठित कर राज्य करने लगा। उनके मरने के बाद वहाँ के पुरुरवा राजा हुए।

यह कह राम ने लक्ष्मण से कहा :—

राम—वशिष्ठ वामदेव, जावालि और कश्यप को बुलाओ। जब वे लोग आकर उपस्थित हुए तब उनके सामने यज्ञ का प्रस्ताव किया गया। सबने अनुमति दी। अनन्तर रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कह कर सुग्रीव सहित वानर और भालुओं को और विभीषण सहित राक्षसों को बुलवाया। फिर गोमती के तट पर नैमिष वन में यज्ञमण्डप बनवाया गया। मण्डप के तैयार होते ही यज्ञ आरम्भ किया गया। इस यज्ञ में वाल्मीकि भी सशिष्य आये। वाल्मीकि ने कुश और लव से कहा कि हमने तुम्हें जो काव्य सिखाया है उसे तुम बीन बजाकर समागत ऋषियों को सुनाया करो। गुरु की आज्ञानुसार वे दोनों बालक घूम फिर कर महाकाव्य गाते और बीन बजाया करते थे। यह समाचार राम तक पहुँचा। राम ने उन दोनों कुमारों को बुलाकर उनसे गाना गवाया। जब वे जाने लगे तब उन्होंने उन दोनों को पुरस्कार स्वरूप कुछ धन देना चाहा। पर उन दोनों ने वह न लिया। पर राम नित्य उनका गाना सुनते रहे। सुनते सुनते रामचन्द्र जान गये कि ये दोनों बालक सीता के गर्भजात सन्तान हैं।

रामचन्द्र जी को जब यह पूर्ण निश्चय हो गया कि दोनों बालक मेरे ही हैं, तब उन्होंने वाल्मीकि मुनि को बुलवा कर उनसे निवेदन किया :—

रामचन्द्र—भगवन्! यदि जानकी निष्कलङ्का और सच्चरित्रा हैं, तो आप उनसे कहिये कि वे अपने निष्कलङ्क होने और अपनी सच्चरित्रता का सब को प्रत्यक्ष परिचय दें। हमारे विषय में लोगों की जो कलङ्कभावना हो रही है, उसे वे कल यहाँ आकर दूर करें।

वाल्मीकि—इसमें क्या, कल सीता शपथ करेंगी।

दूसरे दिन फिर सभा लगी। वशिष्ठ, वामदेव, जावालि, काश्यप, विश्वामित्र, दुर्वासा, पुलस्त्य, शक्ति, भार्गव, वामन, दीर्घायु, मार्कण्डेय, मौद्गल्य, गर्ग, च्यवन, शतानन्द, भरद्वाज, अग्निपुत्र, सुप्रभ, नारद, पर्वत, गौतम आदि महर्षि, सब वानर, भालु, राक्षस और रामचन्द्र की प्रजा के लोग, सीता की शपथ सुनने की इच्छा से एकत्र हुए। सभा में बैठ कर, लोग मनमानी तर्क वितर्क करने लगे। इतने ही में सीता को लिये वाल्मीकि जी आये। आगे आगे मुनि और उनके पीछे पीछे जानकी जी थीं। उस समय जानकी के शरीर पर कषाय वस्त्र थे, यद्यपि वे स्वामि-विरह एवं तपश्चर्या के कारण बहुत लट गयी थीं, तथापि उनके मुखमण्डल पर पतिव्रतधर्म का तेज चमक रहा था। सीता जी की ऐसी दशा देख सारी सभा सजलनयन होकर हाहाकार करने लगी।

सभा में पहुँच कर और श्रीरामचन्द्र जी को सम्बोधन कर महर्षि वाल्मीकि ने बड़े गम्भीर स्वर में कहा :—

वाल्मीकि—राजन्! यही आपकी पतिव्रता धर्मपत्नी सीता हैं। हम वरुण के दसवें पुत्र हैं। हम आज तक कभी झूठ नहीं बोले। हम शपथ पूर्वक कहते हैं कि सीता पाप-रहिता हैं। आपने अपवाद के डर से इन्हें छोड़ दिया। अतएव ये आपको विश्वास करावेंगी। ये दोनों लड़के आप ही के पुत्र हैं और साथ ही उत्पन्न हुए हैं। मेरे ही आश्रम में इनके जातकर्मादि सब संस्कार हुए हैं। ये सब विद्यानिधान और धनुर्विद्या में भी पूरे पूरे पहुँचे हुए हैं।

श्रीरामचन्द्र—भगवन्! आपका कहना ठीक है। आप जैसा कहते हैं, जानकी वैसी ही हैं। लङ्का विजय करने के बाद भी हमने सब के सामने इनकी सच्चरित्रता का परिचय सब को दिलवा दिया था। परन्तु भगवन्! लोकनिन्दा बड़ी प्रबल होती है। हमने केवल लोकापवाद के भय ही से इनका त्याग किया है। अन्य किसी कारण से नहीं। मैं इनको केवल निष्पाप जान कर भी केवल निन्दा के भय से ग्रहण नहीं कर सकता।

इतने में वहाँ सब देवता भी आकर उपस्थित हुए। सब को उपस्थित देख सीता हाथ जोड़ कर और पृथिवी की ओर मुख और दृष्टि कर के कहने लगीं :—

सीता—हे भगवती माधवी देवि! हे सत्य-प्रिये! यदि मैंने शरीर, मन और वचन से सदा अपने पति के इच्छानुकूल आचरण किया हो, यदि मैंने पतिव्रतधर्म का पूरा पूरा पालन किया हो, तो हे माधवी देवि! मुझे अपने पेट में ठौर दो।

पतिव्रत-शिरोमणि जानकी जी के मुख से यह बात निकलते ही उनके सामने की पृथिवी फट गयी और वहाँ एक दरार हो गयी। उस दरार से अचानक बिजली जैसा प्रकाश निकला और एक सर्प दीख पड़ा। उस सर्प के अनेक फन थे और वे फन फैले हुए थे। फनों के ऊपर एक सोने का सिंहासन था। उस सिंहासन पर साक्षात् वसुन्धरा बैठी थीं। देवी ने सीता का हाथ पकड़ कर, उन्हें अपनी गोद में बिठा लिया। गोद में बैठ कर सीता जी ने सतृष्ण नयनों से एक बार श्रीरामचन्द्र जी की ओर देखा। इतने में वसुन्धरा देवी जानकी जी को लिये हुए रसा-तल को चली गयीं। यह देख चारों ओर साधु साधु का चीत्कार हुआ और देवताओं ने आकाश से पुष्पों की वर्षा की।

यह अपूर्व दृश्य देख सभा में सन्नाटा छा गया। देखने वालों के रोंगटे खड़े हो गये। उन को यहाँ तक सुध न रही कि वे कौन हैं और कहाँ हैं? रामचन्द्र ने बहुत देर तक आँसू बहाये फिर शोक और क्रोध में भरे वचन कहे।

रामचन्द्र—मेरे पीछे जब रावण सीता को लङ्का में ले गया था; तब तो मैं उसे मार कर सीता ले ही आया था! अरे वसुधा, तेरा इतना बड़ा साहस कि तू मेरे सामने सीता को हर ले गयी! इस तेरे दुस्साहस का फल, ठहर, तुझे अभी चखाता हूँ। पाताल, स्वर्ग में जहाँ सीता होंगी—मैं उन्हें लाये बिना न रहूँगा। यदि तू मुझे मेरी सीता को ज्यों की त्यों न फेर देगी, तो याद रख वन पर्वत समेत सारी भूमि को व्यथित कर नष्ट कर डालूँगा।

रामचन्द्र जी के क्रोध भरे वाक्य सुन, ब्रह्मा जी ने उन्हें बहुत समझाया फिर सब के सामने भविष्य काव्य को सुना और यज्ञ समाप्त कर, राम ने सब को विदा किया।

इसके कुछ दिनों बाद पहले कौशल्या, फिर सुमित्रा और अन्त में कैकेयी का शरीरान्त हुआ।

इस घटना के कुछ दिनों बाद, भरत के मामा युधाजित ने अपने कुलगुरु अङ्गिरा के पुत्र को दस हजार घोड़े और बहुत सी अन्य भेंट की वस्तुएँ देकर श्रीरामचन्द्र के पास भेजा। मुनि की पूजा कर रामचन्द्र ने उनके आने का कारण पूँछा। मुनि कहने लगे :—

मुनि—सिन्धु नदी के दोनों तटों पर शैलूष नामक गन्धर्व के वंशधरों की बस्ती है। यह देश हमारे राज्य के सीमाप्रान्त पर है और बहुत रमणीय है। अतएव आप उसको अपने अधिकार में कीजिये।

श्रीरामचन्द्र—बहुत अच्छी बात है।

यह कह भरत को ससैन्य वहाँ भेजा। भरत के साथ उनके दोनों लड़के थे। जब वे केकय देश को जाने लगे, तब उनके मामा भी अपनी सेना सहित भरत जी के साथ हो लिये। सात दिन और रात युद्ध होता रहा। अन्त में भरत ने उस प्रान्तवासी तीन करोड़ गन्धर्वों को मार भगाया। फिर वहाँ पर उन्होंने दो नगर बसाये। उनके नाम रखे गये, तक्षशिला और पुष्कलावत। ये दोनों गान्धार देश में हैं। भरत ने अपने पुत्र तक्ष को तक्षशिला का और पुष्कलावत का राज्य पुष्कल को दिया। भरत वहाँ पाँच वर्ष तक रहे, फिर अयोध्या लौट आये।

तदनन्तर राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने अपने बड़े पुत्र अङ्गद को कारूपथ देश का राजा बनाया और उस देश में अङ्गदपुरी बसाई, लक्ष्मण के छोटे लड़के का नाम चन्द्रकेतु था। भरत ने चन्द्रकेतु को मल्लभूमि का राज्य दिया और उस देश की राजधानी चन्द्रकान्ता पुरी हुई। इस प्रकार अङ्गद पश्चिम भूमि के और चन्द्रकेतु उत्तर भूमि के अधिपति हुए। वे दोनों भाई अर्थात् भरत और लक्ष्मण वर्ष वर्ष भर दोनों लड़कों के साथ रह कर, अयोध्या में चले आये। इस प्रकार राज्य करते करते राम को दस हजार वर्ष हो गये।

एक दिन काल ने तपस्वी का भेष धर, ड्योढ़ी पर स्थित लक्ष्मण से कहा :—

तपस्वी—मैं ऋषि अतिबल का दूत हूँ। एक आवश्यक कार्य्य के लिये आया हूँ। राम से मिलना चाहता हूँ। आप उनसे जाकर कह दीजिये। लक्ष्मण ने उनके आने की सूचना राम को जब दी; तब उन्हें—तुरन्त बुला लिया। साधारण शिष्टाचार के अनन्तर राम ने उनसे उनके आने का कारण पूँछा।

तब उन्होंने कहा—"मैं आपसे कुछ गुप्त बात कहना चाहता हूँ। अतः मेरे और आपके सिवाय, जब तक हम आप बात करें, तब तक तीसरा जन यहाँ न आने पावे। इसका प्रबन्ध आप कर दें। यदि कोई तीसरा बीच में आजाय तो उसे प्राणदण्ड दिया जाय।

इस पर राम ने कहा—"बहुत अच्छा।" और द्वार पर अपने विश्वस्त लक्ष्मण को नियुक्त किया। साथ ही उनसे यह भी कह दिया कि कोई भी भीतर न आने पावे। यदि कोई आया तो मेरे हाथ से मारा जायगा, लक्ष्मण जब चले गये; तब काल ने कहा :—

काल—महाराज! ब्रह्मा ने कहा है कि आपकी मानवीलीला का समय अब पूरा हो गया। अतएव अब आप चाहें रहें या चले चलें।

राम—मैं तुम्हारी बाट जोह रहा था। इतने में द्वार पर दुर्वासा ऋषि आये और लक्ष्मण से बोले :—

दुर्वासा—मेरे आने का संवाद राम को दो।

लक्ष्मण—रामचन्द्र किसी कार्य में हैं, आप एक मुहूर्त भर ठहर जाइये अथवा जो कार्य हो मुझसे कहिये।

बस यह सुनते ही दुर्वासा आग बबूला हो गये और बोले—"मेरा सन्देसा शीघ्र राम को दो, नहीं तो मैं शाप देता हूँ। तुम्हारा नाश हो जायगा।" लक्ष्मण बड़े झगड़े में पड़े; क्योंकि यदि ऋषि के आगमन की सूचना राम को दी जाती है तो प्राणदण्ड मिलता है और नहीं देता तो वंशक्षय होता है। अन्त में यह विचार कर कि मेरे मरने से वंश तो बच जायगा, वे भीतर गये और दुर्वासा के आगमन की सूचना दी।

राम ने काल को विदा कर दिया और वे दुर्वासा से मिले। दुर्वासा ने केवल भोजन माँगा। रामचन्द्र ने उन्हें भोजन कराये। मुनि भोजन करके चले गये। मुनि के चले जाने पर राम शोकग्रस्त हुए। उनको शोकग्रस्त देख लक्ष्मण ने प्रसन्नमुख हो कहा :—

लक्ष्मण—महाराज! काल की ऐसी ही गति है। आप अपनी प्रतिज्ञा का पालन कीजिये और मुझे प्राणदण्ड की आज्ञा दीजिये।

तब चिन्ताग्रस्त राम ने अपने सब मंत्रियों को बुलाया और विचारणीय विषय को उपस्थित करते हुए उसका पूर्वापर सब हाल कहा। पर उन मंत्रियों से भी कुछ कहते न बन पड़ा। वे चुपचाप रहे। तब वशिष्ठ बोले :—

वशिष्ठ—महाराज! आपका विछोहकाल उपस्थित है। अतएव लक्ष्मण को त्याग कर, अपनी प्रतिज्ञा को पालिये।

यह सुन राम ने दुःख सन्तप्त हृदय से लक्ष्मण से कहा :—

श्रीराम—भाई लक्ष्मण! अब मैं तुमको विदा करता हूँ। जिससे मेरा धर्म न जाय; क्योंकि त्याग भी वध ही के समान है। अतएव तुम अब हमारे सामने से चले जाओ।

यह सुन लक्ष्मण अपने घर तक न गये और आँखों में आँसू भरे वे सभा से बाहिर निकले। वे वहां से सीधे सरयू के तट पर गये और वहाँ बैठ योगाभ्यास में निरत हुए।

यह देख देवताओं ने पुष्पवृष्टि की और इन्द्र स्वयं आ कर उन्हें सदेह स्वर्ग ले गये।

तदनन्तर राम ने शोकग्रस्त हो कहा—"भरत को राज्य दे कर हम भी वहीं जांयगे, जहाँ हमारे भाई लक्ष्मण गये हैं।" यह सुन भरत ने राज्य लेना अस्वीकृत करते हुए कहा—मैं भी आप ही के साथ चलूँगा। क्योंकि आपके बिना मैं स्वर्ग का राज्य भी नहीं चाहता। इन दोनों लड़कों को राज्य दीजिये और शत्रुघ्न को महाप्रस्थान का समाचार भिजवाइये।"

इतने में वशिष्ठ जी बोले :—

वशिष्ठ—महाराज! आप प्रजा की ओर तो देखिये; क्योंकि प्रजा के विरुद्ध आपको कुछ भी करना उचित नहीं है।

वशिष्ठ जी का सहारा पा कर, उपस्थित सब अयोध्यावासी उठ खड़े हुए और उद्विग्न हो कहने लगे—"भगवन्! हम अब क्या करें?" तब रामचन्द्र जी ने पूँछा—तुम लोग क्या चाहते हो इसके उत्तर में उन लोगों ने कहा :—

प्रजा—राम! यदि आपका सचमुच हम पर पुत्रवत् स्नेह है तो जहाँ आप जावें, वहां हमको भी अपने साथ ही लेते चलें।

रामचन्द्र ने कहा बहुत अच्छी बात है।

फिर राम ने विन्ध्याचल के पास कुशावती नगरी में कुश को और श्रावस्ती में लव को शिक्षा देकर स्थापित किया।

तदनन्तर शत्रुघ्न के पास दूत भेजा। दूत राह में कहीं नहीं ठहरा। अतएव तीन दिन तीन रात में दूत मथुरा पहुँचा और शत्रुघ्न से उसने रामका संदेसा कहा। साथ ही यह भी कहा कि आप शीघ्र चलिये।

यह सुन शत्रुघ्न ने अपनी प्रजा के लोगों को और काञ्चन नामक पुरोहित को बुला कर सारा हाल कहा। फिर मथुरा में सुबाहु और वैदिश नगर में शत्रुघाती को स्थापित कर, अयोध्या की यात्रा की और राम का दर्शन कर, राम के साथ जाने की प्रार्थना की। राम ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की।

इतने में सुग्रीव और विभीषण भी आ पहुँचे। सुग्रीव ने कहा :—

सुग्रीव—महाराज! अङ्गद को राजपाट सौंप कर, मैं आपके साथ चलने को उपस्थित हुआ।

राम ने कहा "बहुत अच्छा।" फिर राम ने विभीषण से कहा :—

राम—राक्षसराज! तुम प्रजा का पालन करो। जब तक मेरी कथा इस धराधाम पर रहेगी, तब तक तुम बने रहोगे।

राम की इस आज्ञा को विभीषण ने शिरोधार्य्य किया। राम ने यही बात हनुमान से कही और उन्होंने भी राम का कहना मान लिया।

तदनन्तर जाम्बवान्, द्विविद और मयन्द से कहा—"तुम कलियुग तक जीवित रहो।" राम की यह आज्ञा उन्होंने भी स्वीकृत की।

वशिष्ठ ने प्रस्थान की विधिवत् सारी तैयारी की। महीन वस्त्र पहन और हाथ में कुश ले, राम सब के आगे चले। उनके पीछे सब लोग थे। सरयू के तट पर पहुँच और सरयू में प्रवेश कर सब लोग स्वर्ग को गये। दोनों भाइयों सहित राम विष्णु तेज में मिले और बानर भालु जिस जिस देव के अंश से उत्पन्न हुए थे, वे उसी उसी अंश में जा मिले।

इस प्रकार राम की महाप्रस्थान-यात्रा पूरी हुई।

॥ इति ॥

Printed by RAMZAN ALI SHAH at the National Press, Allahabad.